# आँख और कविगण



सम्पादक

पं० जवाहरलाल चतुर्वेदी

प्रकाशक
साहित्य-सेवा-सदन, काशी

प्रथम संस्करण } यमुना षष्ठी, संवत् १९८९ { मूल्य सजि

प्रकाशक
गोपालदास गुजराती 'सेवक'
मैनेजिंग प्रोप्राइटर
साहित्य-सेवा-सदन, काशी

मुद्रक
विजयबहादुर सिंह बी० ए०
महाशक्ति-प्रेस
लुलानाला, काशी

माहप म० ________



श्री

# प्रेमोपहार

श्रीयुत ________

________

________

# 'सदन' की विशेषताएँ

( १ ) हिन्दीके प्राचीन कवियोंकी रचनाओंका शुद्ध संस्करण निकालनेके साथ ही उन विषयोंके ग्रन्थोंका प्रकाशन भी होता है जिनका हिन्दीमें अभाव है।

( २ ) 'सदन' की सभी पुस्तकें ख्यातिलब्ध विद्वानों द्वारा ही लिखाई और सम्पादित कराई जाती हैं। इस कारण भाषा, भावगभींरता, लेखन तथा प्रतिपादनशैली के लिहाजसे वे अनुपमहोती हैं।

( ३ ) इसमें अस्थायी, अनुपयोगी तथा सार शून्य ग्रन्थोंका प्रकाशन नहीं किया जाता। ग्रन्थों के चुनाव के समय इन बातों पर पूरा ध्यान रक्खा जाता है कि 'सदन' की सभी पुस्तकें हिन्दी-साहित्य की स्थायी सम्पत्ति हों।

( ४ ) 'सदन' की पुस्तकें प्रत्येक शिष्ट-समाज, लाइब्रेरी, स्कूल, कालेज आदि में संग्रह करने तथा विद्यार्थियों को उपहार में देने योग्य होती हैं।

( ५ ) स्थायी ग्राहकों को अन्य पुस्तकमालाओं की तरह सभी प्रकाशित पुस्तकें लेनी पड़ेंगी, ऐसा कोई बन्धन नहीं है।

( ६ ) प्राचीन-कवियोंकी अलभ्य रचनाओंको प्राप्त करने तथा विद्वानों द्वारा उनका संशोधन और सम्पादन आदि करानेमें अत्यधिक व्यय पड़ जाता है, फिर भी सदन की पुस्तकें अन्य प्रकाशकों की पुस्तकों की अपेक्षा बहुत सस्ती होती हैं।

( ७ ) सदन की पुस्तकों का लोकप्रिय होना ही उसकी सबसे बड़ी विशेषता है। इसकी पुस्तकोंकी प० महावीरप्रसाद द्विवेदी, वियोगी हरि, श्यामसुन्दर दास, रामचन्द्र शुक्ल, मैथिलीशरण गुप्त, सत्यदेव परिव्राजक जैसे विद्वानों ने तथा सरस्वती, प्रभा, लक्ष्मी, माधुरी, सौरभ, शारदा, सम्मेलन, पत्रिका, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, चित्रमय-जगत्, मतवाला आदि पत्र-पत्रिकाओं ने मुक्तकंठ से प्रशंसा की है।

( ८ ) बारह आने देकर स्थायी ग्राहक बननेसे प्रत्येक पुस्तककी एक-एक प्रति पौने मूल्य में मिलती है।

# प्रकाशक का वक्तव्य




कानपुर की कांग्रेस के समय श्रीमान् वियोगी हरिजी की कृपा से 'सदन' को यह पुस्तक प्राप्त हुई थी। किन्तु उस समय यह प्रकाशित न हो सकी। कारण, मनमोहन-पुस्तकालय (काशी) के अध्यक्ष श्रीपन्नालालजी बड़े उत्साह से सस्ती-साहित्य-पुस्तक-माला प्रकाशित कर रहे थे, और कई कारणों से उन्होंने उस कार्य में हमारा सहयोग प्राप्त करना चाहा, इसलिये हमने उनसे सहयोग करके, जनता में राष्ट्रभाषा का अधिकाधिक प्रचार करने के विचार से प्रेरित होकर, "सस्ती-साहित्य-पुस्तक-माला" और "अखिल-भारतवर्षीय हिन्दी-रेलवे-टाइम-टेबुल" का प्रकाशन आरम्भ कर दिया, क्योंकि ये दोनों काम बड़े महत्त्वपूर्ण समझे गये और अनेक प्रकाशक हतोत्साह हो इनका प्रकाशन स्थगित

कर चुके थे। इसलिये इन महत्वपूर्ण कार्यों को सम्पन्न करने में व्यस्त रहने के कारण यह पुस्तक पड़ी रह गई। आज, इतने दिनों के बाद, नूतन वर्ष के दिन, सहृदय साहित्य-प्रेमियों की सेवा में, यह नूतन उपहार लेकर उपस्थित होते हुए हमें अपार आनन्द हो रहा है।

× × × ×

कहने की आवश्यकता नहीं कि यह पुस्तक हिन्दी-साहित्य-भण्डार की शोभा बढ़ाने वाली एक उज्ज्वल मणि है और इसके संग्रहकर्त्ता तथा सम्पादक श्रीमान "चतुर्वेदीजी" ने इसका संकलन करके हिन्दी-साहित्य की बड़ी सराहनीय सेवा की है। निस्सन्देह उन्होंने इस पुस्तक द्वारा हिन्दी-साहित्य के एक महान आवश्यक कार्य की पूर्ति की है। हमें विश्वास है कि श्रीमान् चतुर्वेदीजी के इस सत्कार्य से साहित्यानुरागियों को यथोचित सन्तोष होगा।

× × × ×

इस वृहत् संग्रह में संस्कृत, हिन्दी और उर्दू के प्राचीन तथा प्रसिद्ध कवियों की नेत्र-सम्बन्धी कविताओं का संग्रह बड़े ही परिश्रम, भावुकता और सहृदयता से किया गया है। कविताओं के चुनाव में रसज्ञ संग्रहकर्ता ने जिस सहृदयता का परिचय दिया है, वह सर्वथा अभिनन्दनीय है। नेत्र-सम्बन्धी उत्तमोत्तम सूक्तियों के संकलन में मननशील संग्रहकर्ता ने जो परिश्रम किया है, साहित्य-सागर का मन्थन करके जो नयन-नवनीत निकालने का सदुद्योग

किया है, उसकी सफलता को सिद्ध करने के लिये यह पुस्तक पर्याप्त है। हिन्दी में एक ऐसे ग्रन्थ का सर्वथा अभाव देखकर और इस पुस्तक की अपूर्वता पर रीझकर ही हमने इसे प्रकाशित करने का साहस किया है। आशा है, हिन्दी-प्रेमी हमारे इस शुभ उद्योग को सफल करके हमें उपकृत करेंगे।

× × × ×

यदि पुस्तक में प्रूफ की गलतियाँ रह गई हों, तो उदार पाठकों से नम्र निवेदन है कि आगामी संस्करण में उन्हें सुधार देने के उद्देश्य से हमें सूचना देने की कृपा करें, जिसके लिये हम उनके विशेष कृतज्ञ होंगे।

× × × ×

बड़े हर्ष की बात है कि कई विश्वविद्यालयों तथा साहित्य-सम्मेलन ने हमारे 'सदन' से प्रकाशित कुछ ग्रन्थों को उच्च कक्षा के पाठ्यक्रम में सम्मिलित करके तथा यू० पी० और सी० पी० के शिक्षा-विभाग ने स्कूल-कालेज की लाइब्रेरियों के लिये स्वीकृत करके हमें विशेष प्रोत्साहन प्रदान किया है। अतएव हम इन संस्थाओं के गुणग्राही संचालकों के प्रति अपनी आन्तरिक कृतज्ञता प्रकट करते हुए आशा करते हैं कि वे हमारे अन्य उत्तम ग्रन्थों को भी अपना कर हमें हिन्दी साहित्य की सेवा करने का सुअवसर देंगे।

अन्त में काव्य-ग्रन्थ-रत्नमाला के उदार ग्राहकों से भी हमारी विनय है कि वे भी इस काव्य-रत्न-मञ्जूषा से अपने नयन-मन प्राण को तृप्त करके हमारे साथ-साथ संग्रहकर्त्ता को भी सफल-श्रम करें।

गोपाल-मन्दिर
काशी
नूतन वर्ष, १९८९ वि०

साहित्यानुरागियों का कृपाकांक्षी
'सेवक'

# भूमिका

शरीर में पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ—त्वचा, रसना, नासिका, कर्ण, और नेत्र—हैं। ये पाँचों इन्द्रियाँ शरीर-देश के राजा 'मन' की दूती हैं। ये अपने कार्यों की रिपोर्ट मन को देती हैं। वह जैसी आज्ञा इन्हें देता है, वैसा ही कार्य ये करती हैं। इनमें से प्रत्येक का कार्य एक दूसरे से भिन्न है। जैसे—दुर्गंध का ज्ञान नासिका को है, जिह्वा षटरसों के स्वाद जानने में, कर्ण शब्द सुनने में, त्वचा स्पर्श करने में और नेत्र देखने में समर्थ है।

नेत्र के अतिरिक्त अन्य इन्द्रियों की सामर्थ्य केवल अपने निश्चित कार्य करने की ही है। किन्तु नेत्र मन के भाव प्रगट करने में पूर्ण समर्थ होते हैं। उन्हें किसी अन्य इन्द्रिय के साहाय्य की आवश्यकता नहीं होती। जैसे—त्वचा अपने-आपमें तो स्पर्श-ज्ञान कर सकती है, लेकिन दूसरे में ऐसा नहीं कर पाती। नाक स्वय सूँघ सकती है, पर सम्मुख आये हुए पदार्थ की दुर्गंध से बचा नहीं सकती। कान अपनी और दूसरे की भी बात सुनने में समर्थ हैं, पर अपनी श्रवण-सीमा के भीतर ही, उसके परे की शब्द-क्रिया के विषय में वे नितांत अनभिज्ञ हैं। जिह्वा रस चखने में तेज है, लेकिन सड़े-गले का ज्ञान खाने के पहिले नहीं कर पाती। परन्तु नेत्र देखते, हँसते, रोते, क्रोध प्रगट करते, डाँटते, मारते, वेधते, मोह लेते, संकेत करते, लज्जा करते, मान करते, गंभीर बनते और चंचलता व्यक्त करते हैं—इनके अतिरिक्त अन्य इन्द्रियों की सहायता भी करते हैं।

'नेत्र' वाह्य इन्द्रियों में से एक है। किन्तु नेत्र का प्रभाव अधिकर अन्त करण में पडता है। यहाँ तक कि जब मनुष्य नेत्र मूँद लेता है, तब मन उन पदार्थों पर घूमता है, जिनको नेत्र पूर्व देख चुके हैं। एक प्रकार से हृदय में नेत्रों ही के द्वारा विविध वासनाओं की सृष्टि होती है।

प्रश्न उठ सकता है कि क्या जन्मान्ध अपने मन मे किसी विषय पर विचार नहीं कर सकता? यदि विचार कर सकता है, तो क्या नेत्रो की विशेषता मन के साथ नहीं रह जाती?

उत्तर में निवेदन है कि अधा मनुष्य कर्ण और त्वचा द्वारा अपना निश्चय निर्धारित करता है, और वह पदार्थो के आकार तथा गुण के आधार पर अवलंबित है। उसमे उनके भिन्न-भिन्न रूपों के जानने की सामर्थ्य नही है। वह यह नहीं जान सकता कि हरा, पीला एव लाल रग किस रूप के हैं। अस्तु, अंधे में रूप सम्बन्धी ज्ञान की न्यूनता है। वह दूसरों के कहने से जान सकेगा कि जल का श्वेत वर्ण है, पर श्वेतता के रूप को नहीं जान सकता। उसी के साथ वह भी हृदय-चक्षुओं द्वारा निज-निश्चयानुसार पदार्थों का अनुभव करता है। यदि उनका अनुभव न करता, तो उनपर विचार भी न कर पाता, क्योंकि जो पदार्थ देखे और सुने नहीं गये, उनपर विचार भी नहीं किया जा सकता।

वेदात-शास्त्र मे पच-तत्वों के सम्पर्क से निम्न लिखित रूप मे इन्द्रियों की उत्पत्ति बताई गई है—

सत्वांशे पञ्चभिस्तेषां क्रमाद्धिन्द्रियपञ्चकम् ।
श्रोत्रत्वगक्षरसन घ्राणाख्यमुपजायते ॥
तैरन्त करण सर्वैर्वृत्तिभेदेन तद्विधा ।
मनो विमर्शरूप स्याद्बुद्धि स्यान्निश्चयात्मिका ॥

आकाशादि पच सूक्ष्म भूतों के पृथक्-पृथक् सत्वांश से पच ज्ञानेन्द्रियों की उत्पत्ति होती है । जैसे—आकाश के सत्वांश से श्रवणेन्द्रिय, वायु के सत्वांश से त्वगिन्द्रिय, अग्नि के सत्वांश से चक्षुरिन्द्रिय, जल के सत्वांश से रसनेन्द्रिय और पृथ्वी के सत्वांश से घ्राणेन्द्रिय और पच-सूक्ष्म-सत्वों के मिश्रित सत्वांश से अन्त-करण की उत्पत्ति होती है॥ उसमें 'मन' सकल्प-विकल्पात्मक और 'बुद्धि' निश्चयात्मिका है ।

इन पच बाह्य इन्द्रियों मे से 'नेत्र' सर्वोपरि है । जो कोई अन्य इन्द्रिय अपने गुणानुसार क्रिया करती है, उसके निश्चय करने मे 'नेत्र' प्रधान कारण है । उदाहरणार्थ—कानों ने घरघर शब्द सुना, मन के पास सूचना पहुँची, जिह्वा बोल उठी कि हवाई-जहाज का शब्द है, पर 'मन' ने सकल्प-विकल्प किया कि ऐसा शब्द तो मोटर के चलने में भी होता है । ऐसा संदेह होने पर जब नेत्रों ने स्वयं वायु-यान को देखा, तब ही बुद्धि ने निश्चय किया कि वह शब्द गगनचारी विमान का है । अत 'नेत्र' ही ज्ञानेन्द्रियों मे प्रधान है ।

हठ-योग में तो "मन" को, एक प्रकार से, नेत्रों का अनुगामी माना है—

"यत्र-यत्र गता दृष्टिर्मनस्तत्र प्रगच्छति"

जहाँ जहाँ दृष्टि जाती है, वहाँ-वहाँ मन भी जाता है।

योगी लोगों के लिये नेत्र बड़े-उपादेय हैं। महाभारत के अनुशासन पर्व में लिखा है—

> नेत्राभ्यां नेत्रयोरस्य रश्मिं संयोज्य रश्मिभिः।
> विवेश विपुलः कायामाकाशं पवनो यथा॥

गुरु-पत्नी के सतीत्व-रक्षार्थ 'विपुल' नामक ऋषि ने अपनी नेत्र-रश्मि द्वारा गुरु-पत्नी की नेत्र-रश्मि को संयुक्त किया और जैसे पवन आकाश में प्रवेश करता है उसी प्रकार गुरु-पत्नी के शरीर में उसने प्रवेश किया।

हठ योग के षट-कर्मान्तर्गत पञ्चम कर्म का नाम 'त्राटक' है उसमें भी योगी को 'नेत्रों' का ही सहारा लेना पड़ता है—

> निमेषोन्मेषकौ त्यक्त्वा सूक्ष्म लक्ष्य निरीक्षयेत्।
> यावदश्रूणि मुञ्चन्ति त्राटकं प्रोच्यते बुधैः॥
> एवं मात्रा संयोगेन शाम्भवी जायते ध्रुवम्।
> नेत्ररोगा विनश्यन्ति दिव्य दृष्टिः प्रजायते॥

जब तक दोनों नेत्रों से अश्रुपात न हो, तब तक निमेष-उन्मेष-त्याग-पूर्वक किसी सूक्ष्म वस्तु पर दृष्टि स्थिर रखने का नाम 'त्राटक' है। त्राटक-योग के अभ्यास द्वारा शाम्भवी-मुद्रा को सहायता मिलती है, उससे 'नेत्र-रोग' नष्ट होते और 'दिव्य-दृष्टि' उत्पन्न होती है।

यह सब तो बाह्य चक्षुओं का प्रभाव है। अन्तर में हृदय-चक्षुओं के बिना बुद्धि एक पग भी आगे नहीं बढ़ सकती। योगी

अधिकतर अन्तर्चक्षु से काम लेते हैं। उनके ध्यान का अवलम्ब केवल एक प्रकार की ज्योति होती है, जिसे वे नितात ध्यानस्थ हो देखते हैं। ज्योति देखी जाती है और देखना सम्भव है केवल नेत्रों से। अस्तु, पारमार्थिकता के पथ में भी नेत्र सहायक हैं। वेदात-दर्शन में स्वय ब्रह्म का वर्णन ज्योति स्वरूप किया है—

"ज्योतिश्चरणाभिधानात्"

इसके अतिरिक्त छान्दोग्य-उपनिषद में ब्रह्म का वर्णन 'ज्योतिर्दीप्यते' के समान किया है। अस्तु, स्थूल रूप से लेकर सूक्ष्मातिसूक्ष्म दशा तक नेत्र की प्रधानता है। यही कारण है कि कवियो ने जितना नेत्र का वर्णन किया है, उतना शरीर के किसी अग का नहीं।

पण्डितराज जगन्नाथ ने अपने 'भामिनी विलास' नामक ग्रथ में लिखा है—

श्याम सित सुदृशो न दृशो स्वरूप।
किन्तु स्फुट गरलमेतदथामृतञ्च॥
नोचेत्कथ निपतनादनयोस्तदैव।
मोह मुदञ्च नितरा दधते युवान॥

नायिका के नेत्रों का रूप श्याम और श्वेत नहीं, किन्तु यह स्फुट अमृत तथा विष है। यदि ऐसा न होता, तो इनके दृष्टिपात-मात्र से कैसे युवा पुरुष अत्यन्त मोह अथवा आनन्द को प्राप्त होते?

श्यामता से विष और श्वेतता से अमृत का तात्पर्य है। जिस पुरुष की ओर स्नेह-स्निग्ध दृष्टि से नायिका ने देखा, उसे आनद

प्राप्त होता है और जिसकी ओर क्रुद्ध होकर देखा, वह निराश होकर दुखी हो जाता है।

देखिये, पदार्थ एक और गुण दो—वे भी एक दूसरे के विरुद्ध! कैसी विचित्रता है! आँखें जिसे जिलाना चाहती हैं, जिलाती हैं और जिसे मारना चाहती हैं, मारती हैं। किसी पदार्थ मे, एक दूसरे के विरुद्ध—एक साथ और एक ही काल में, दोनो गुण नहीं मिलते। पर यह नेत्रों ही की सामर्थ्य है कि वे उल्लिखित विरुद्ध क्रियाओं के करने में समर्थ हैं।

यदि हृदय के भावो को कोई इन्द्रिय समुचित रूप से प्रगट करने में समर्थ है, तो केवल नेत्र ही।

एक चिडचिडे स्वभाव के सज्जन थे। जो कुछ मुँह मे आता, बक डालते थे। भाग्य से उन्हें उत्तम स्त्री मिली थी। पर उसे भी वाग्प्रहार से झकझोर डालते थे। एक दिन, जब वह शात चित्त थे, एक मित्र से अपनी स्त्री की प्रशसा करने लगे—

न ब्रूते परुषा गिर वितनुते न भ्रूयुग भड्गुर।
नोत्तस क्षिपति क्षितौ श्रवणत सा मे स्फुटेऽप्यागसि॥
कान्ता गर्भगृहे गवाक्षविवरव्यापारिताक्ष्या बहि।
सख्या वक्त्रमभिप्रयच्छति पर पर्यश्रुणी लोचने॥

मेरा अपराध प्रगट होने पर मेरी स्त्री परुष वचन नहीं कहती, न भृकुटी टेढी करती है, और न कानों के भूषणों को उतार कर पृथ्वी पर फेंकती है। केवल भीतर के घर में झरोखे से बाहर की ओर झाँकती हुई सखी के मुँह की ओर वह आँसू-भरी दृष्टि डालती है।

इसमें उसके दुःखित हृदय के भावों को आँसू भरी दृष्टि द्वारा ही दिखलाया है। अतः यह स्वयसिद्ध है कि नेत्रों द्वारा हृद्गत भाव सहज ही जाने जा सकते हैं।

काम-कला-कुशल कामिनी-कुल का काम नयन-कमल से बहुत निकलता है। किसी नायिका का पति विदेश से लौट कर घर आ रहा था। उसकी सखी ने उसके पास उस समय समाचार पहुँचाया, जब उसका प्रियतम उसके द्वार से थोड़ी ही दूर पर था। अब वह बिचारी क्या करे? इतना समय नहीं कि पति के स्वागतार्थ मङ्गल-सूचक वदनवारादि की सामग्री प्रस्तुत कर सके। पर उसी समय उसका वाम नेत्र फड़का, मानों उसने सकेत किया कि इसी से सब कार्यों की पूर्ति हो जायगी। चतुर नायिका ने प्रसन्नतापूर्वक पतिदेव का स्वागत जिन सरस घटों और उत्तम वदनवारों से किया था, उसका वर्णन एक कवि ने यों किया है—

अत्युन्नतस्तनयुगा तरलायताक्षी।
द्वारिस्थिता तदुपयानमहोत्सवाय॥
सा पूर्णकुम्भनवनीरजतोरणस्रक्—
सम्भार मङ्गलमयत्नकृत विधत्ते॥

पीन स्तनों से सुशोभित, सुदीर्घ एवं चञ्चल नेत्रों वाली, वह कामिनी, अपने प्रियतम के उपयान-महोत्सव (परदेस से आने की खुशी) में, द्वार पर खड़ी होकर, माङ्गलिक पूर्ण कलश और नवीन कमलों के वन्दनवार का कार्य, बिना यत्न के ही सम्पन्न कर रही है।

कैसे? अपने उन्नत स्तनों को कलश और सुदीर्घ कमल-नेत्रों की दृष्टि-परम्परा को वन्दनवार बना कर प्रियतम का स्वागत किया।

नेत्र का दृष्टि-दान हृदय मे एक दूसरे के लिये प्रेम उत्पन्न करता है। यह आँखों ही का काम है कि कठोर चित्त को, मधुर चितवन ही से, मृदुल बना देती है। साथ ही, इनकी दृष्टि में इतनी ज्वाला है कि बड़े-बड़े जितेन्द्रिय और मनस्वी तथा त्यागी पुरुष भी व्याकुल हो जाते हैं।

क्यों न हो! नव रसों के रूप को प्रगट करने की सामर्थ्य जो इनमे है! ये नेत्र शृंगार-रस का प्रदर्शन मधुर तिरछी चितवन से करते हैं, हास्य-रस का परिपाक गोलक के निचले भाग को कुछ ऊपर उठा कर किनारे की ओर आकर्षित करके करते हैं, करुण रस का प्रकाश अश्रु से करते हैं, वीर-रस का प्रादुर्भाव पलक न मार कर तीव्रतापूर्वक दृष्टिपात द्वारा करते हैं, अद्भुत् रस की सृष्टि काली पुतलियों को ऊपर चढ़ाकर देखने से करते हैं, भय का रूप काली पुतलियों को गोलक के बीच में स्थिर रखने और पलक न मारने से प्रगट करते हैं, बीभत्स-रस एक कोने को कुछ सिकोड़ कर दूसरी ओर देखते हुए व्यक्त करते हैं, रौद्र-रस का विकास अरुण होकर पूर्ण शक्ति से सीधे देखते हुए करते हैं।

क्या ऐसी शक्ति किसी अन्य इन्द्रिय में भी है कि विभाव, अनुभाव और सचारी भावों का संयोजन कर रस उत्पन्न करे? फिर कवियों ने यदि नेत्रों का विशद एव विस्तीर्ण वर्णन किया, तो आश्चर्य ही क्या?

घड़े में घड़े के परिमाणानुसार ही जल समा सकता है। उसमें और अधिक नहीं अँट सकता। पर टकी में सैकड़ों घड़े जल

भर जाता है। जिसकी जितनी सामर्थ्य है, उसमे उतनी ही वस्तु समा सकती है। किन्तु, नेत्रों के पास प्रशसा रखने का इतना बड़ा पात्र है कि प्राचीन काल से लेकर आज तक के कवियों ने इनके इतने गुण गाये हैं कि कोई ऐसा ग्रथ नहीं, जिसमे इनका जिक्र किसी-न-किसी रूप मे न हो। फिर भी वह प्रशसा-पात्र भरा नहीं। और, कवियो ने भी प्रशसा करना छोड़ा नहीं।

आँखो की प्रशसा मे क्या-क्या कहा गया है, वही इस पुस्तक में दिखाया गया है। पडित जवाहरलालजी चतुर्वेदी ने हिन्दी, सस्कृत, उर्दू तथा फारसी के प्रसिद्ध कवियों की नेत्र-सम्बन्धी उक्तियों को एकत्र कर—तथा अनेक अज्ञात कवियो की सूक्तियों का भी सकलन कर—उन्हे क्रमानुसार भिन्न-भिन्न शीर्षकों में सजाया है। जैसे—दीर्घ नयन, कटाक्ष, कटाक्ष-शर, मदभरी आँखें, कुटिल कटाक्ष-शर—तलवार, बेगा, छुरी, कटारी, बन्दूक—सेत, स्याम, रतनार—तिल, कोये, पलक, बरुनी इत्यादि। और, उसीके साथ, कुरग, तुरग, मतग, मीन, कमल, खजन, चकोर, काग और मधुमक्खी की उपमाएँ भी पृथक्-पृथक् शीर्षक-कुञ्जो मे रक्खी गई हैं।

इतना ही नहीं, कहीं आँखो को नवाब, कहीं बादशाह, कहीं सिपाही और कहीं बजाज भी बनाया है। पर किसी किसी कवि ने—न मालूम क्यों—दिवालिया, दरजी, फिरगी और मजदूर तक बना डाला है। किसी ने उन्हें नाट्यशाला और किसी ने कामदेव की नौका तक कह डाला है। मालूम होता है, अधम पात्र बनाने

वाले कवियों को नेत्र द्वारा कष्ट मिला है अथवा उनके कारण ऐसे कार्यों का उन्हें व्यावहारिक अनुभव करना पड़ा है।

रत्न-लोभी कवियों को नेत्रों मे चौदहों रत्न ही देख पड़े। उन्होंने नेत्रों को रत्न ही कह डाला है।

कवियों ने नेत्रों की प्रत्येक दशा का भी वर्णन किया है। जैसे अलसौंहीं आँखें, अधखुली आँखें, लड़ैते लोचन, लगौहें लोचन। क्या-क्या कहा जाय ? जिसे जो रुचा, उसने वही कहा। विचारी आँखें कहीं योगिनी बनाई गईं और कहीं इनमें दशावतार दिखाये गये। कहीं अश्रुवर्षा और कहीं आनन्दाम्बु-वर्षा। भला कवियों की लगाम पर कौन काबू करे ?

कथय किमजल्पन्ति !

—कवि लोग क्या नहीं कहते, पर कवियों का कहना है कि जो कुछ हम कहते हैं, सप्रमाण कहते हैं, मजाल क्या कि पढ़ने-वाला उसे स्वीकार न कर ले।

चतुर्वेदीजी ने सर्वप्रथम 'आलम' कवि से जो कहलाया है, उसे हम, इसी पुस्तक से, नीचे उद्धृत करते हैं—

आँखिन में प्रीति रस रीति सब आँखिन में
आँखिन में अच्छर लिखे हैं सुघराई के॥
आँखिन में काम औ दिठाई सब आँखिन में,
आँखिन में सील बसै सुरिसरनाई के।
'आलम' सुकवि कहैं अमृत है आँखिन में
आँखिन में जग-जोति दोई हैं सुहाई के।

काम के ततच्छिन सब लच्छिन हैं ऑखिन मैं।
ऑँखिन मैं भेद हैं भलाई औ बुराई के॥

अवस्था के अनुसार ऑखें, अपने मे दृष्टि-भाव को बदलती रहती हैं। बाल्यावस्था में सरलता के साथ रहती हैं। युवावस्था के आते ही तिरछी हो जाती हैं। इसी समय ये कानों की ओर बढ जाती हैं, मानों उनसे कुछ कहना चाहती हैं। फिर वृद्धावस्था मे पृथ्वी की ओर देखने लगती हैं। इसी आशय को लेकर रघुनाथ कवि ने कहा है—

"जोवन आइबे की महिमा
अँखियाँ मनो कानन सौं कहती हैं॥"

ऑखों के गुणों का वर्णन यों तो अनेक कवियो ने किया है, लेकिन 'रहीम' ने केवल एक दोहे में जो कुछ कहा, उससे उनके (नेत्रों के) औदार्य-गुण को इतना बढा दिया कि वह दोहा लोगों की जबान पर हो गया—

"सबही का सुख होत है, निरखि आपनौं गोत।
ज्यौं बडरी अँखियानि लखि, ऑखिन कौं सुख होत॥

पर 'रसनिधि' जी 'रहीम' से सहमत न हुए। उन्होंने ठीक 'रहीम' के प्रतिकूल दोहा बनाया—

बहुधा वैरी गोत के, सही गोतियन जानि।
बडे नैंन खटकन लगे, नैंन हियन में आनि॥

हमें तो 'रसनिधि' की सीनाजोरी ही मालूम होती है। यदि अपने स्नेही को कोई बारम्बार देखे, तो क्या उसे 'खटकना'

१३८५

कहेंगे ? यदि खटकता, तो वह देख कैसे सकता ? एक महा सूक्ष्म कण का न्यूनांश भी आँखों में पड़ जाता है, तो वे किंचित् नहीं देख पातीं, फिर खटकने पर दीर्घ नेत्रों को कैसे बारम्बार देख सकती हैं ?

'कटाक्ष'—बाँकी चितवन का नाम कवियों ने 'कटाक्ष' रक्खा है और उसका यों गुण-वर्णन किया है—उसकी इतनी बड़ी तेज धार है कि उसके उद्गम स्थान 'नेत्र' में अँगुली लग जाने से अँगुली के कट जाने का भय रहता है। इतना ही नहीं, यदि इसे कोई देख भी ले, तो उसे चोट पहुँच जाय। यह इसमें विशेषता है।

यशोदाजी श्रीराधिकाजी से कहती हैं—ऐ राधे ! जब तक मेरा लाल एक हाथ पर पर्वत को थामे खड़ा है, तब तक तुम जरा अपनी आँखें तो मूँद रक्खो, ऐसा न हो कि उनको देख कर मेरे गोविंद का मन विचल जाय और उसके कारण कहीं हाथ हिल उठे, तो पहाड़ के नीचे हम सब दब कर मर जायँ।

इसी भाव को लेकर किसी कवि ने यशोदाजी से कहलाया है—

चंचल चपल लल्चौहे-दृग मूँदि राखि।
जौ लौ गिरिधारी गिरि नख पै धरैं हैं री॥

अभी तक तो कविगण आँख और उससे उत्पन्न चितवन की तेज धार का यों वर्णन करते आये कि उसके छू जाने ही से अँगुली अथवा हृदय को चोट पहुँच जाती है। लेकिन अब उसी कटाक्ष को शर माने लेते हैं। अत आँखें भ्रू धनुष से कटाक्ष-शर चलाती हैं। उनकी प्रशंसा में एक प्रगल्भ नायिका कहती है—

भीखम करन कृपा अभिमन्यु
दुजोधन सौंम श्री भूरिस्रवा के।
अर्जुन भीम जुधिष्ठिर धृष्ठ
बिराट बली सहदेव प्रभाके॥
सो सर बिरथ किए इन नैननि
कहा कहिए निरदई न दया के।
मेरे कटाच्छ बचैं न 'मुनीस' इ
कैसें कहौं सर की समता के॥

शम्भु कवि इससे भी आगे बढ गये। उन्होंने इनकी बडाई मे बहुत कुछ कह डाला—

काल को फेरौ बचै घर्डी द्वैकु
पै बचै नहि नैन चितौनि के मारे।

जितने सहारकारी अस्त्र-शस्त्र हैं, उन सब की उपमा नेत्रो के कटाक्ष से कवियों ने दी है। 'गोकुल' कवि ने आँखो के साथ तलवार का कैसा रूपक बाँधा है—

भ्रकुटी कुटिल राजे मूँठ सी बिराजै बर
पलक मियान पुञ्ज पानिप रसाल है।
कज्जल कलित दोऊ कोर मैं दुधार धार
डोरे रतनारे जेब जौहर के जाल हे॥
'गोकुल' बिलोकि निज नाह के सनेह सनी,
स्वच्छ है कटाच्छ काट करत कराल है।
कमनीय-कामिनी के रमनीय नैन किधौं
कामिन के मारिबे कौ काम करवाल है॥

किसी ने तेग, किसी ने छुरी-कटारी और किसी ने बन्दूक कह कर चितवन को अभिघातिनी साबित किया है। जैसे—

तेगा तिय दृग विष भरे, पानिप ढार सुफाट।
अंजन-पाढ़ सु द्विप विनु, करति चौगुनी काट॥



"यह आँख बपुरी है कै छुरी है हाथरस की।"



"प्यारी अँखियाँ तिहारी किधौं काम की कटारी हैं।"



प्रथमहिं दारू खाइकें, पीछें गोली खाँह।
चितवनि चारु बन्दूक प, चोटहि चूकति नाँह।

यहाँ तक आँख की चितवन का वर्णन किया गया, अब उनके रूप का वर्णन भिन्न भिन्न कवियों के मुख से भिन्न भिन्न भावों के साथ सुनिये। साथ ही, इस बात का भी ध्यान रखने की कृपा कीजिये कि हम ऊपर जितने उदाहरण दे आये हैं, और आगे भी हमने जितने उदाहरण दिये हैं, सब इसी पुस्तक में से सकलित किये हैं। इस लिये हम चाहते हैं कि हमारे साथ-साथ आप भी चतुर्वेदीजी की रसज्ञता और भावुकता पर दाद दें।

खैर, देखिये, आँखो में मुख्यत तीन रग माने गये हैं—श्वेत, श्याम और रतनार (लाल)। 'रसिक' कवि ने नेत्रो को त्रिवेणी ठहराया है। सभव है, यह उपमा यथार्थ हो। प्रयाग की त्रिवेणी का माहात्म्य है कि जो मनुष्य उसमें मज्जन करता है, वह जन्म-मृत्यु से मुक्त हो जाता है, और इस त्रिवेणी का एक जल-कण पड़ जाने से मनुष्य की बुद्धि ससार के सब कार्यों से मुक्त हो जाती है। अतएव उपमा यथार्थ है—

"एरी मेरी प्यारी मैं तीरथ न जानौं कछू
प्यारी तेरे दृगन बीच प्रगट त्रिबेनी हैं"

श्वेत भाग को गंगा, काली पुतली को यमुना और ललाई को सरस्वती माना है। ऐसी त्रिवेणी में रसिक जन नित्य मज्जन करते हैं। अब प्रत्येक के गुण पृथक्-पृथक् वर्णन किये जाते हैं।

किसी कवि ने लाल आँख के लाल डोरों की चमकीली ललाई देखकर शंका की कि श्वेत के बीच लाल धारी कैसी, इसे तो श्वेत ही होना चाहिये, बिना रँगे ऐसा रंग आ नहीं सकता। अस्तु, एक गोपी से कहला ही डाला कि—हे घनश्याम, तुम्हारी आँखों में ऐसी ललाई मालूम होती है कि वे गुलाबी रंग से रँगी गई हैं और वास्तव में ऐसी रँगाई प्रशंसा करने योग्य है। अस्तु मैं पूछती हूँ—

नूतन पै इतनीं गहिरी रँग
घनि है रँगरेजिन की चतुराई।
साँची कही इन नैननि रंग की
दीनीं कहा तुम लाल रँगाई॥

जो कुछ हो, पर इस कवित्त को जब 'शेख' नाम की रँगरेजिन ने पढा, तब उक्त कवि के पास अपना बनाया निम्न-लिखित कवित्त भेजा—

रात के उनींदे अलसाते मदमाते राते
राजैं कजरारे दृग तेरे यौं सुहात हैं।
तीखी तीखी कोरन अँगोरि लेति काढ़ें जिय
केते भए घाइल औ केते तलफात हैं॥

ज्यौं ज्यौं लै सलिल चख "सेख" धोवै बार-बार
त्यौं त्यौं बल बुंदन सौं बार झुकि जात हैं ॥
कैयर के भाले किधौं नाहर नहन वाले
लोहू के पियासे कहुँ पानी सौं अघात हैं ॥

वह रग नहीं है और न किसी रँगरेजिन ने उन्हें रँगा है। ये तो सिंह के नाखून अथवा भाले हैं। ये जिस किसी के शरीर में घुस गये हैं, उसे घायल करने का सबूत मिलता है इनमें लगे हुए रक्त से, अर्थात् वह ललाई नहीं है, वरन् घायल के शरीर का रक्त है, जिसे चितवन-रूपी भाले से घायल कर डाला है। और इसी भाले से 'शेख' ने उन कविजी को भी घायल कर डाला था।

इसी प्रकार नेत्रो के श्याम भाग के वर्णन में शालग्राम-मूर्ति की उपमा सबसे ठीक जँचती है। पर कविगण एक उपमा से, वह चाहे जैसी उत्तम हो, सतुष्ट नहीं होते। उपमाओं की लडी लाकर रखते हैं। देखिये, श्रीनिधिजी कहते हैं—

यों कानन के तीर, नैंन कोर कज्जल कलित।
कढ़ी कलक लकीर, श्रीनिधि मानों चन्द बिच ॥

श्यामता को कलक मान लिया। जिससे किसी को दुःख मिले, वह अवश्य कलकित कहा जा सकता है। और, इसी भाव को किसी अन्य कवि ने भी पुष्ट किया है—

रवि कौं तजि चद सौं नेह कियौ
अरविन्दहि मानौं कलक लग्यौ।

'रसनिधि' जी ने कहा कि यह कुछ नहीं। इन नेत्रों ने ठगाई बहुत की। इस निंदनीय कार्य से इनको स्वयं घृणा हुई, और उसका प्रायश्चित्त करने के लिये स्वयं विष पी लिया है। विष का रंग काला है, और नेत्रों के एक भाग में जो श्यामता है, वह विष का द्योतक है—

> रूप ठगोरी डारि कैं मोहन गौ चितचोर।
> अंजन मिस जनु नैन ए पियत हलाहल घोर॥

आँख की सफेदी के लिये क्या उपमा दी जाय? उसपर 'भंजु' कवि को यह उपमा सूझी—

> कानन लों तौ कटाच्छ लगे
> कलधौत कटोरन दूध अचैयतु।

यहाँ पर गोरे मुख को सोने का कटोरा और नेत्र की श्वेतता को दूध माना है।

पुतली की उपमा में 'रहीम' कवि सबसे आगे बढ गये और त्रिवस्तु-युक्त नेत्र के सम्पूर्ण भाग का वर्णन कर डाला—

> रहिमन पुतरी स्याम, मनहुँ जलज मधुकर लसै
> कैधौं सालिगराम, रूपे के अरघा धरे

'जलज' शब्द के प्रयोग से अरुणता लाई गई। चाँदी के अरघे से श्वेतता और शालग्राम तथा भ्रमर के वर्णन से श्यामता दिखाई गई। हमें तो 'रहीम' जी का यह सोरठा बहुत पसंद आया।

'रसलीन' जी का भी एक दोहा बहुत उत्तम है। उसमें

उन्होंने दिखाया है कि शरीर-रूपी स्वर्ण की जाँच के लिये कसौटी रूपी काली पुतरी स्फटिक मणि में रक्खी है। इससे उत्तम क्या कोई कहेगा? अब, आज-कल के लोग—अपने को कवि कहलाने वाले—"आँखों के प्रति" "कानों के प्रति" लिखकर न मालूम कितनी लम्बी कहानी गा जाते हैं, जिसमें कठिनतापूर्वक वर्णित विषय में सम्बन्ध रहता है। फिर उसमें प्रतिपादकत्व गुण कहाँ से आवेगा? पर 'रसलीन' जी ने अपनी प्रतिभा का परिचय केवल एक दोहे से दे दिया—

> तन सुबरन के कसति यों, लसति पूतरी स्याम।
> मनों नगीना फटिक में, जरी कसौटी काम॥

किसी-किसी की आँख में तिल होता है, उसे कोई भला कहे, पर एक कवि महाशय ने तो उसे पातक का निशान मान रक्खा है—

> नाँहक चतुर-मन दीन छीन लेत नैन
> तिलन-सरूप लख्यौ पातक निसान है॥

संग का दोष अथवा गुण संगी को अवश्य प्राप्त होता है। आँखों के साथ पलकें अभिन्न रूप में रहती हैं। आँखों की बुराई अथवा भलाई का जब वर्णन होगा, तो एक छींटा इनकी ओर भी फेंका जायगा। 'दत्त' कवि कहते हैं—

> विष भरे मारे नाग कारे नैन कामिनी के
> काटि छिपि जात हाइ पलक पिटारे मैं॥

पलकों के किनारे किनारे जो बाल होते हैं, उन्हें बरुनी कहते

हैं। कवियों ने उनको भी नहीं छोड़ा। और, कवि 'कालिदास' ने आँखों के सारे दोष या गुण को बरुनी ही की करामात माना है—

चखन में एकहि गुन भेदति धुराई भरे,
बरुनी में बारुनी में नाहिं कछु भेद है॥

'सुरत' कवि का वर्णन इससे भी बढ़ा-चढ़ा है—

जेई जे निहारें मन तिनके पकरिबे कों।
देखौ इन नैननि हजार हाथ काढ़े हैं॥

यहाँ बरुनी के खड़े बालों की उपमा हाथ बढ़ाने से दी गई है। यह ऐसी चुभती हुई है कि पढ़ कर मन उछल पड़ता है।

कविता में यथार्थ उपमा का मिल जाना कवि की प्रतिभा का परिचायक है। 'चिरजीवी' कवि ने बरुनी के बालों को सुई बनाया है। सुई का काम कपड़े के दो टुकड़ों को सीकर एक में मिलाना है और यहाँ दो दिलों को बरुनी-रूपी सुइयों ने मिला दिया है। खूब!—

दिल दोइ के एकु करै कों मनौं।
इहि सूइयाँ हैं मन भौं दरजी की॥

उपमा—अर्थालंकारों में "उपमा" सर्वोत्तम अलंकार माना गया है, और इसकी सहायता से अनेक अन्य अलंकार की सृष्टि होती है। जिसका वर्णन किया जाय, वह उपमेय कहा जाता है और जिस पदार्थ के साथ वर्णित वस्तु की उपमा दी जाय, वह उपमान कहलाता है। यहाँ मनुष्य की आँखों का

वर्णन किया जाता है, और उपमा दी जाती है मृग के नेत्रों से। प्रथम तो उपमेय और पिछला उपमान है। जैसे—

मेरे नैंन कुरंग भए।
जोवन-वन तैं निकसि चले ■ मुरली नाँद रए॥
रूप व्याध, कुंडल दुति ज्वाला, किंकिनि घटा घोष।
व्याकुल ह्वै इक टक ही देखति, गुरुजन तजि संतोष॥
भौंह कमान, नैंन सर साधन मारन चितवन चारु॥
ठौर रहे नहिँ टरे 'सूर' वे मंद हँसनि सर धारु॥



खेलनि सिखए अलि भले, चतुर अहेरी मार।
काननचारी नैंन-मृग नागर नरन सिकार॥

प्रश्न किया जा सकता है कि मनुष्य की आँख की उपमा मृग के नेत्रों से क्यों दी। उत्तर है कि जिसमें गुण, रूप एवं शील समान हो, उसी वस्तु के साथ उपमा दी जाती है। मृग के नेत्र सुंदर, कानों की ओर फैले हुए, श्वेत-श्याम-रतनार रंगों से युक्त और भोली चितवन तथा प्राकृतिक मद चंचलता से युक्त होते हैं। इधर मनुष्य के सुन्दर नेत्रों में भी येही सब गुण विद्यमान हैं। अस्तु, सुन्दर नेत्र वाली स्त्री को "हरिणाक्षी" के नाम से पुकारते हैं।

जहाँ तक देखा जाता है, कवियों ने किसी पदार्थ में किंचित् भी गुण मनुष्य के सुंदर नेत्रों का देखा, झट उसे उपमान ठहरा अपनी प्रतिभा द्वारा उसके साथ पूर्णोपमा लाने का प्रयत्न किया।

एक कवि ने सुदरी के सुदर नेत्रों को कामदेव के घोडे माने हैं। मानो कामदेव को जिसपर चढाई करनी होती है, इन्हीं पर सवार हो उसको जीतने जाते हैं—

अथलक अग-अग सुदरता-जीन तापैं
साज खर पाखर सुआप हाथ साजी हैं।
लाज है लगाम, चितवन ही चारु चाल मानो
भ्रकुटी-कुटिल तापै कलगी छाजी हैं॥
पूतरी सवार सुभ लिपें चाह चाबुक कौं
देखि कैं कटाच्छ-छुरी भए लाल राजी हैं।
नाचैं मुख-कचन की थारी मैं सुभारी अति
सुप्यारी के दोऊ हग मैंन-भूप बाजी हैं॥



मैंन आतुरी से उडयो चाहै चातुरी सै यीर ?
करत खुदी से प तुरी से नैंन तेरे है।



लाज लगाम न मान हीं नैंना मो वस नाहिँ
ये मुँह जोर तुरग लौं पैंचत ■ चलि जाहिँ॥

इस प्रकार से अनेक कवियों ने तुरग की चपलता के साथ नेत्रो की चचलता की समानता दिखाई है। घोडे के साथ हाथी को भी रहना चाहिये, लेकिन इसमें घोडे की-सी चपलता तो होती नहीं। फिर इसमें कौन ऐसा गुण है कि जिसके आधार पर वह आँखों का उपमान बनाया जाय ? "जहाँ न जाय रवि, तहाँ जाय कवि" की कहावत ठीक चरितार्थ होती है।

उन्होंने विचार किया कि चंचलता तो नेत्रों में अवश्य है, पर इसके होते हुए भी लज्जा से इतने दब जाते हैं कि फिर उठाये नहीं उठते और नेत्रों के मारे हजारों गली-गली मारे-मारे फिरते हैं। फिर कौन ऐसा पदार्थ है कि जिसमें नेत्रों के इन गुणों की अनुरूपता मिले। ढूँढते-ढूँढते पाया हाथी को, फिर क्या था ! कवियों ने नेत्र को हाथी बना लज्जा का आदू (बेड़ी) डाल दिया। देखिये 'आलम' कवि कैसा हृदयस्पर्शी वर्णन करते हैं—

झूमैं झुकैं उझकैं फिर भूमि महा-मद-मोंते खरेई रहे।
टारे टरैं न मदांध भए फिर ठौर ही ठौर अरेई रहैं॥
कुंजर से दृग तेरे भट्ट ? गुन के गुनभाल गरेई रहैं।
खून करैं सब 'आलम' की फिर लाज के आँदू परेई रहैं॥

"देव" जी ने नेत्रों को सजा हुआ हाथी कहा है—

लाज के निगाड-गडदार अडदार चहूँ
चौंकि चितवन चरखीन चमकारे हैं।
बरुनी अरुन लीक पलक झलक-झूल
झूमत सघन-घन घूँमत घूमारे हैं॥
रंजित-रजोगुन सिंगार पुंज कुंजरन
अंजन सौं सोहति मन-मोहक दँतारे हैं।
"देव" दुख-मोचन संकोचन सकति चलि
लोचन अचल प मतंग मतवारे हैं॥

मृग, तुरंग और मीन की उपमाएँ नेत्रों की चंचलता के लिये दी गई हैं। अब प्रश्न होता है कि जब नेत्र एक ही पदार्थ था

तो उसकी उपमा को एक ही पदार्थ पर्याप्त था, फिर एक ही वस्तु के लिये तीन भिन्न पदार्थों की क्या आवश्यकता थी ? उत्तर में निवेदन है कि जिन नेत्रों में भोलेपन की झलक देख पड़ती है, उनकी उपमा मृग के नेत्रों से दी गई, क्योंकि इनमें चचलता की मन्दता रहती है और जिन नेत्रों में मन की चचल गति के साथ चचलता का प्रादुर्भाव अधिक होता है, उनकी उपमा तुरग के साथ मौजूं है और चचल चपलागनाओं के कुटिल कटाक्षों की समता मछली ही करती है, क्योंकि वह प्रत्येक पल में इधर-से उधर चमकती फिरती है, इससे कुछ कम खजन की गति है। प्रत्येक उपमान में विशेष गुण नेत्र उपमेय के लिये हैं। जैसे कमल में नेत्रों के समान चचलता नहीं है, किंतु वह भी उनका उपमान माना गया है, क्योंकि उसमें प्रफुल्लता तथा कोमलता है, और ये दोनो गुण नेत्रों में भी हैं। अस्तु यह कहना यथार्थ है—

> साँचे कमल से नैंना निसि दिन फूल।
> बिना ताल के लौने, खुलहि दुकूल॥

एक हो, दो हो, तो उनका वर्णन किया जाय। अनेक प्रकार की उपमाएँ नेत्रों के लिये कवियो ने निर्मित की हैं। जैसे—चकोर, काग, मधुमक्खी इत्यादि। हर्ष का विषय है कि रागभग सन ही प्रचलित उपमाएँ इस पुस्तक मे सग्रहीत की गई हैं।

ख़ैर, उपमा में तो समानता दिखाई जाती है, पर किसी किसी कवि ने तो नेत्रो को नवाब और बादशाह तक बना डाला है—

उन्होंने विचार किया कि चचलता तो नेत्रो मे अवश्य है, पर इसके होते हुए भी लज्जा से इतने दब जाते हैं कि फिर उठाये नहीं उठते और नेत्रो के मारे हजारो गली-गली मारे-मारे फिरते हैं। फिर कौन ऐसा पदार्थ है कि जिसमें नेत्रो के इन गुणों की अनुरूपता मिले। ढूँढते-ढूँढते पाया हाथी को, फिर क्या था। कवियों ने नेत्र को हाथी बना लज्जा का आँदू (बेड़ी) डाल दिया। देखिये 'आलम' कवि कैसा हृदयस्पर्शी वर्णन करते हैं—

भूमें झुकैं उझकैं फिर झूमि महा-मद-माँते खरेई रहैं।
टारे टरैं न मदांध भए फिर ठौर ही ठौर अरेई रहैं॥
कुंजर से दृग तेरे भट्ट ? गुन के गुनमाल गरेई रहैं।
खून करैं सब 'आलम' को फिर लाज के आँदू परेई रहैं॥

"देव" जी ने नेत्रो को सजा हुआ हाथी कहा है—

लाज के निगाड-गडदार अडदार चहूँ
चौंकि चितवन चरखीन चमकारे हैं।
बरुनी अरुन लीक पलक झलक-झूल
झूमत सघन-घन घूँमत घुमारे हैं॥
रंजित-रजोगुन सिंगार पुंज कुंजरत
अंजन सों सोहति मन-मोहक दँतारे हैं।
"देव" दुख-मोचन सँकोचन सकति चलि
लोचन अचल ए मतंग मतवारे हैं॥

मृग, तुरग और मीन की उपमाएँ नेत्रों की चचलता के लिये दी गई हैं। अब प्रश्न होता है कि जब नेत्र एक ही पदार्थ था

तो उसकी उपमा को एक ही पदार्थ पर्याप्त था, फिर एक ही वस्तु के लिये तीन भिन्न पदार्थों की क्या आवश्यकता थी ? उत्तर में निवेदन है कि जिन नेत्रों में भोलेपन की झलक देख पड़ती है, उनकी उपमा मृग के नेत्रों से दी गई, क्योंकि इनमें चंचलता की मंदता रहती है और जिन नेत्रों में मन की चंचल गति के साथ चंचलता का प्रादुर्भाव अधिक होता है, उनकी उपमा तुरंग के साथ मौजूँ है और चंचल चपलांगनाओं के कुटिल कटाक्षों की समता मछली ही करती है, क्योंकि वह प्रत्येक पल में इधर-से उधर चमकती फिरती है, इससे कुछ कम खंजन की गति है। प्रत्येक उपमान में विशेष गुण नेत्र उपमेय के लिये हैं। जैसे कमल में नेत्रों के समान चंचलता नहीं है, किंतु वह भी उनका उपमान माना गया है, क्योंकि उसमें प्रफुल्लता तथा कोमलता है, और ये दोनों गुण नेत्रों में भी हैं। अस्तु यह कहना यथार्थ है—

साँचे कमल से नैंना निसि दिन फूल।
बिना ताल के लौंने, रहतहिं दुकूल॥

एक हो, दो हों, तो उनका वर्णन किया जाय। अनेक प्रकार की उपमाएँ नेत्रों के लिये कवियों ने निर्मित की हैं। जैसे—चकोर, काग, मधुमक्खी इत्यादि। हर्ष का विषय है कि लगभग सब ही प्रचलित उपमाएँ इस पुस्तक में संग्रहीत की गई हैं।

ख़ैर, उपमा में तो समानता दिखाई जाती है, पर किसी-किसी कवि ने तो नेत्रों को नवाब और बादशाह तक बना डाला है—

उन्होंने विचार किया कि चंचलता तो नेत्रों में अवश्य है, पर इसके होते हुए भी लज्जा से इतने दब जाते हैं कि फिर उठाये नहीं उठते और नेत्रों के मारे हजारों गली-गली मारे-मारे फिरते हैं। फिर कौन ऐसा पदार्थ है कि जिसमें नेत्रों के इन गुणों की अनुरूपता मिले। ढूँढते-ढूँढते पाया हाथी को, फिर क्या था! कवियों ने नेत्र को हाथी बना लज्जा का आँदू (बेड़ी) डाल दिया। देखिये 'आलम' कवि कैसा हृदयस्पर्शी वर्णन करते हैं—

झूमें झुकैं उझकैं फिर झूमि महा-मद-माँते खरेई रहैं।
टारे टरैं न मदांध भए फिर ठौर ही ठौर अरेई रहैं॥
कुंजर से दृग तेरे भट्ट? गुन के गुनमाल गरेई रहैं।
खून करैं सब 'आलम' को फिर लाज के आँदू परेई रहैं॥

"देव" जी ने नेत्रों को सजा हुआ हाथी कहा है—

लाज के निगाड़-गडदार अड़दार चहूँ
चौंकि चितवन चरखीन चमकारे हैं।
पलनी अरुन लीक पलक झलक-झूल
झूमत सघन-घन घूँमत घूमारे हैं॥
रंजित-रजोगुन सिंगार पुंज कुंजरत
अंजन सों सोहति मन-मोहक दँतारे हैं।
"देव" दुख-मोचन सँकोचन सकति चलि
लोचन अचल ए मतंग मतवारे हैं॥

मृग, तुरंग और मीन की उपमाएँ नेत्रों की चंचलता के लिये दी गई हैं। अब प्रश्न होता है कि जब नेत्र एक ही पदार्थ था

तो उसकी उपमा को एक ही पदार्थ पर्याप्त था, फिर एक ही वस्तु के लिये तीन भिन्न पदार्थों की क्या आवश्यकता थी ? उत्तर में निवेदन है कि जिन नेत्रों में भोलेपन की झलक देख पड़ती है, उनकी उपमा मृग के नेत्रों से दी गई, क्योंकि इनमें चंचलता की मंदता रहती है और जिन नेत्रों में मन की चंचल गति के साथ चंचलता का प्रादुर्भाव अधिक होता है, उनकी उपमा तुरग के साथ मौजूँ है और चंचल चपलागनाओं के कुटिल कटाक्षों की समता मछली ही करती है, क्योंकि वह प्रत्येक पल में इधर-से उधर चमकती फिरती है, इससे कुछ कम खंजन की गति है। प्रत्येक उपमान में विशेष गुण नेत्र उपमेय के लिये हैं। जैसे कमल में नेत्रों के समान चंचलता नहीं है, किंतु वह भी उनका उपमान माना गया है, क्योंकि उसमें प्रफुल्लता तथा कोमलता है, और ये दोनों गुण नेत्रों में भी हैं। अस्तु यह कहना यथार्थ है—

साँचे कमल से नैंना निसि दिन फूल।
बिना ताल के लौंने, सुतहि दुकूल॥

एक हों, दो हों, तो उनका वर्णन किया जाय। अनेक प्रकार की उपमाएँ नेत्रों के लिये कवियों ने निर्मित की हैं। जैसे—चकोर, काग, मधुमक्खी इत्यादि। हर्ष का विषय है कि लगभग सब ही प्रचलित उपमाएँ इस पुस्तक में संग्रहीत की गई हैं।

खैर, उपमा में तो समानता दिखाई जाती है, पर किसी-किसी कवि ने तो नेत्रों को नवाब और बादशाह तक बना डाला है—

सुजनी चिकन की बिछायें डोरे लाल-लाल
तकिया महातम की सोभा अपार है।
चञ्चल चितौन अरज बेगि-बेगि आवें जाँइ
पलकें दुआर ठाढे बरुनी-चोबदार हैं॥
बकसी दिवान दोऊ कोए कान लागत हैं
अजन के दसखत सो सिद्ध कारबार है।
लाज औ सकुच ही हजूर के खवास खासे
प्यारी के नवल-नैंन नवाब नामदार हैं॥

उसी के साथ जिनको इनसे तकलीफ हुई, उन लोगों ने इन्हे दरजी, दिवालिया, ठीकरे आदि भी कह डाला। जैसे—

दग दरजी, गहि मन बसन, ब्यौंतति हट के हाट।
कतर ब्योंत जानति नहीं, सीखे सूवी-काट॥



साहु कहावत फिरत हैं, चित लरसाए चाव।
तेरे नैंन दिवालिया, मन लै देति न पाव॥



आँखें नहीं हैं चेहरे पर, तेरे फकीर के।
दो ठीकरे हैं भीख के, दीदार के लिये॥

दूसरी ओर, जिनको इनसे सुख प्राप्त हुआ है उन्होंने इन्हे रत्न कहा है—

सेत सख, जोति विधु, अजन जहर-
सज्ञ, बक्र धनु अकनि सुमन सग लाये हैं।
प्रेम सुरा सूरे धेनु सुदर समान रंभा
"आलम" चपल हय काम के सधाये हैं॥

प्रीति मधु पूतरी कलप लच्छी पूरन
धनतरि सुदिस्ट गज-गति लपटाये हैं।
काहे को समुद्र मथ देवतान कीनों श्रम
चौदह-रतन तिय नैननि में पाये हैं॥

इसी प्रकार इस सर्वाङ्गसुन्दर संग्रह में चतुर्वेदीजी ने जितना कुछ मसाला जुटाया है, सब मजेदार ही है। एक ही चीज पर इतनी अधिक संख्या में ऐसी उत्तमोत्तम उक्तियों का संग्रह करके उन्हें यथास्थान सजाना वास्तव में बड़े कौशल का काम है। भाव-भेद के अनुसार सिलसिलेवार सब को सजाने में चतुर्वेदीजी ने सराहनीय श्रम किया है। इसी के साथ-साथ इतना और निवेदन है कि यद्यपि जगह-जगह इस पुस्तक में संस्कृत की सूक्तियाँ बड़े सुन्दर ढंग से सजाई गई हैं, तथापि इसके अतिरिक्त भी संस्कृत-कवियों की कविता "नैन निकुञ्ज" में सजाई गई हैं। संस्कृत-कवियों को कविता-कानन से भव्य-भाव-रूपी गज मुक्ता बड़ी प्रचुरता में प्राप्त करने का सुअवसर मिला था, क्योंकि उनके पूर्व उस काव्य कान्तार में कोई न गया था। इससे उनके हाथ बहुत-कुछ लग गया। अब तो वहाँ सैकड़ों सिर पर टोकरी रक्खे घूमते हैं और गजमुक्ता के स्थान में सूखे गोबर के टीकड़े बीन कर संतुष्ट होते हैं और उन्हीं को वे कहते हैं 'गजमुक्ता'।

जिन संस्कृत-कवियों की कविताएँ इस पुस्तक में संग्रहीत हुई हैं, उनमें से एक, नेत्रों को कुरुक्षेत्र का रूपक देकर, अपनी प्रतिभा का अपूर्व परिचय देता है। इस पर जितना ही अधिक विचार किया जाय, उतना ही उत्तम भाव का विकास हृदय में होता है—

अर्जुन. कृष्ण सयुक्त कर्णं यनानुधावति ।
तन्नेत्र नु कुरुक्षेत्रमिति मुग्धे मृशामहे ॥

हे मुग्धे ! कृष्ण से सयुक्त (अर्जुन) काजल से सरसाई काली पुतली, जब कर्ण (कान) के पास जाती है, तब मैं ऐसा विचारता हूँ कि तेरे नेत्र अवश्य कुरुक्षेत्र हैं ।

हमारे विचार में तो कुरुक्षेत्र की उपमा देने में कवि ने कुछ कसर रक्खी, क्योंकि कुरुक्षेत्र तो कौरव-पाडव के युद्ध से प्रसिद्ध है, और वह रहा अठारह ही दिन तक, फिर उसमे कटे कुछ ही कोटि मनुष्य, और अब तो वह रण-क्षेत्र भी न रह गया । दूसरी ओर, सृष्टि के आरभ से आज तक, न मालूम कितने ही जीवों के गले इन नेत्रों के कारण कटे और आगे भी कटेंगे । अस्तु, यदि इन्हें "नित्य-समर-स्थल" कहें, तो कोई अत्युक्ति न होगी ।

जो कवि तार्किक होता है, उसकी कविता कल्पना के साथ प्रमाण-सयुक्त होती है, और तब उसमें सोना और सुगध का गुण आ जाता है । एक कवि कहता है कि नेत्र दो हैं, और हैं वे दोनों निकट, फिर ये दोनों परस्पर मिलते क्यों नहीं ? इस शका का समाधान इस तरह किया जाता है कि आगे की ओर तो नाक का ऐसा ऊँचा पर्वत है कि उस ओर से मार्ग मिल ही नहीं सकता, यहाँ तक कि यत्न करने पर भी एक दूसरे को देख भी नहीं पाता । रहा पीछे की ओर, सो इस ओर तो मिलने के लिये मैदान जरूर है, किन्तु हरएक नेत्र के पीछे की ओर कान रूपी कुएँ मौजूद हैं । यदि ये उस ओर बढ़े, तो कुएँ में गिर जायँ । अस्तु,

यही कारण है कि निकट रहते हुए भी उभय नेत्र परस्पर नहीं मिल पाते।

"विघ्न अव कूप निपात्य भीत्या"

इसे कहते हैं कविता !

आगे चल कर एक बुद्धि-विलासी कवि ने लज्जा, प्रेम और प्रीतम—तीनों का प्रभाव एक कामिनी में दिखाया है। लज्जा तो प्रेम को अपने पास से हिलने नहीं देती, पर प्रेम प्रीतम को देखकर आगे बढता है। किन्तु लज्जा उसे फिर चिपटा लेती है और दूसरी ओर नहीं जाने देती।

इस रसिकतामयी कल्पना को भला आधुनिक तुकबद कैसे जान सकते हैं ?

यान्ती गुरुजनै साधं स्मयमान मुखाम्बुजा।
तीर्यग्ग्रीघ यदद्राक्षात्तन्निपत्रात् करोजगत्॥

गुरुजनों के साथ मार्ग मे जाती हुई नायिका ने मद मुसकान के साथ टेढी ग्रीवा करके जो देखा, तो सारे जगत् को व्यथित कर दिया।

इसी तरह अनेक सस्कृत कवियों की रचना का चयन इस पुस्तकमें किया गया है।

चतुर्वेदीजी ने "निकुज" के अन्तर कुजों के पुज सजाये हैं। जैसे—पदावली-कुज, कवित्त-कुज, सवैया-कुज, दोहा-कुज, सोरठा-कुज, कुडलिया-कुज, बरवै-कुज, शेर-कुज, समस्या-कुज, परिशिष्ट-

कुंज, नैन-केस-कुंज, इत्यादि प्रत्येक कुंज में बेला, चमेली, चम्पा, गुलाब, केतकी, निवारी आदि सुगंधित पुष्प-रूपी कवि-तरुवर लगे हैं। वहाँ सुगंधित समीर भी बह रही है। जिस तरु के पास कोई रसिक जाता है, वही उसे अपना रस पिलाते-पिलाते संतुष्ट नहीं होता और इसी लिये उसे आगे बढ़ने नहीं देता। यदि वह किसी प्रकार अनुनय-विनय कर आगे बढ़ा, तो नैन-केस-कुंज में बाकायदा अदालत लगी देखता है। वहाँ जज हैं मुरली-मनोहर मदन-मोहन, मुद्दई श्रीराधारानी और मुद्दालेह हैं व्रजेश्वर के नैन, वकील और गवाह भी मौजूद हैं। मुद्दई और मुद्दालेह का बयान होता है। वकील की बहस और गवाहों के बयान सुनकर फर्द-जुर्म भी लगा दिया जाता है। अंत में व्रजराज के नैन को सजा दी जाती है कि श्रीराधारानी उनको अपने नयन रूपी कैदखाने में कैद रक्खें यह मुकद्दमा आदि से अंत तक पढ़ने-योग्य है। जब फैसला सुना दिया गया, तो समाचार-पत्रों ने उसकी जो समालोचना की सो सुनिये—

नैन बैन चुनकर मुसी अकिल वर,
विसद कचहरी सेज सुख पाल की।
जुगुल रसिक-मन मुद्दई मुद्दाले दोऊ,
अरजी गुजारैं पास प्रेम अहवाल की।
रति रस रंग दोऊ और तें वकील लड़ें,
करि तरफैन तै बहस इन्द्रजाल की।
मुनसिफ मदन की अनोखी तजवीज देखी,
बाल्म पै डिगरी भई है आज बाल की।

पुष्पों की प्रशसा का कारण उनका रूप, सुगध और रग है। पर यह हस्तकौशल मालाकार का है कि वह उनको माला मे यथास्थान पिरोता है। यदि वह निपुणता से माला न तैयार करे, तो केवल बिखरे फूलो से आराध्य देव के कठ की शोभा नहीं बढ सकती। भले ही क्षणमात्र के लिये हाथ मे पुष्प रक्खे जा सकें, पर माला धारण करने वाले की जो शोभा होती है, वह केवल बिखरे पुष्पों द्वारा नहीं प्राप्त हो सकती। अस्तु, माला-रूप मे पुष्पों के सजाने का श्रेय मालाकार ही को है। इस पुस्तक के सग्रहकार प० जवाहरलाल चतुर्वेदीजी ने भिन्न-भिन्न कवियो के सरस कवित्तों की ऐसी उत्तम व्याख्या की है कि भिन्न-भिन्न भाव के कवित्तो की लड़ी-सी बन गई है। एक से एक बढिया उक्ति-युक्तियाँ ऐसे अच्छे ढग से पेश की गई हैं कि पढने वाले की समझ मे आजाती हैं। हैं तो सब कवित्त नाना प्रकार के और उनका एक दूसरे से कुछ सम्बन्ध भी नहीं है, पर चतुर्वेदी जी ने उत्तम टिप्पणियों की शृखला से एक दूसरे को ऐसा मिला दिया है कि उनकी आन्तरिक शोभा निखर गई है। जैसे सान पर चढा हुआ हीरा चमकने लगता है वैसे ही चतुर्वेदीजी की व्याख्या से भिन्न भिन्न कवियों के भिन्न-भिन्न भाव भली भाँति प्रस्फुटित हो गये हैं।

यदि ये टिप्पणियाँ न होतीं तो पाठकों को कुछ कठिनता जरूर होती।

मथुरा जी के चौबे तो स्वभावत परिहास-कुशल होते ही हैं। अत इसी से चतुर्वेदीजी की टिप्पणियों मे यत्र-तत्र परिहास का

पुट भी आ गया है। इस कारण टिप्पणियों में पाठकों की स्वभावत दिलचस्पी हो जाती है और कवित्त का अर्थ भी सहज ही समझ में आ जाता है। विनोदशीलता और सहृदयता से व्याख्या करने के कारण ही पाठको को भावार्थ समझने के लिये माथापच्ची नहीं करनी पड़ती। हमें विश्वास है कि काव्यानुरागी सज्जनों को इस संग्रह से यथेष्ट आनन्द उपलब्ध होगा।

काशी<br>श्रीरामनवमी,<br>सं० १९८९ वि०

—शिवरत्नशुक्ल

# निवेदन

श्री

# निवेदन



चित, चितवन की दोनों बिनु-तकरार,
सहितो कौन तगादो, बारबार।

जब से श्री वियोगी-हरि जी की अनूठी-आँखें (साहित्य-निहार की, और नहीं) हृदय में अँटकीं, तब से मैं उधर ही टक-टकाया किया, ज़रा भी इधर से उधर न टला—तनिक भी टस से मस न हुआ। इधर मित्रमण्डली का "ठोक पीट कर वैद्यराज" बनाने वाला प्रबल प्रयास प्रचुर-परिमाण में प्रस्तुत होता रहा और इधर मुझे "नीम हकीम ख़तरे जान" का ख़याल हर-समय खलने लगा। आख़िर एक भी पेश न पा और पराभव की प्रभुता पाने के अनन्तर अपने तुच्छ-विचारों के साथ कुछ रमणीय-रत्नों को सजा कर यह छोटा सा "उपहार" ले उपस्थित होना ही पड़ा।

छन्द, प्रबन्ध एकु नहिं मोरे;
सत्य कहौं लिखि कागद-कोरे।

यद्यपि इस पुस्तक मे "श्री गोस्वामी तुलसी दास जी" के वचनानुसार मेरा कुछ भी नहीं है, पराये माल पर ही "हाथ-साफ" किया है, साहित्य-रत्नाकर से ही चुरा-चुरा कर कुछ चमकते हुए "हीरे" हाजिर किये हैं—उन्ही को अपनाने की अजूना-आक्रमा यश की है, तथापि आजकल कुछ ऐसी चाल चल गयी है कि उक्त "डाकेजनी" को भी सुचतुर "सग्रह" रूप मे प्रकाशित कर अपने ही प्रबल-प्रयास का प्रतिफल समझते हैं, अपनी ही कमनीय-कृतियाँ कल्पित करते हैं। अत इसी पुनीत-पथ का पथिक मुझे भी बनना पड़ा और इस अल्प-उपहार के साथ "दिल्ली के पाँचवें सवारो में" अपना नाम भी "नोमीनेट" ( Nominate ) कराता हुआ आशा करता हूँ कि सुहृद-जन मेरी इस उछृङ्खलता से अलकृत "मदाखलत-बेजा" को बेजा न समझेंगे तो पुन कुछ ऐसे ही रुचिर-रत्नो को अपने हुलसाये हृदय की झोली मे भर कर आप के सन्मुख उपस्थित करूँगा। क्योंकि—

आज यह मौका मिला है सख्त-मुश्किल से मुझे।
दिल के बस दो-हर्फ कहने थे तेरे दिल से मुझे।

यद्यपि पूर्व-प्रकाशित "सग्रह" भी सौन्दर्य के शरूर से लबालब भरे हुए हैं—तनिक भी कसर नहीं है, तथापि वे कुछ "बेतरतीबी" की बहार से विलुलित हैं—विश्रृङ्खलता की माना के मनोहर

मनियों से मुकुलित हो रहे हैं। झलमल-झलमल झलमला रहे हैं, अपनी अनोखी आभा को प्रस्फुटित कर रहे हैं, पर चाह रहे हैं, "सरावत" के शरूर से शरसार सरस-सुवर्ण को—मचल रहे हैं, किसी कमनीय कारीगर के कोमल-कर से कमाये हुए कुन्दन को। फुटकल की "फँफूदन" से फसते हुए भी कुछ छक से गये हैं। अत विद्वज्जन यदि उन्हें तबीयतदारी के साथ "तरतीन" से मिम्मल-पन्दी की जिलो चढ़ा कर समह-रूपी स्वर्ण के डब्बे में रख दें तो साहित्य-ससार के ये रमणीय-रत्न काल की कुटिल-गति से बचते हुए कुछ निराली ही अदा से फिर चमकने लगें और सरस-हृदयों के हिय-हार होने लगें। अतएव कुछ ऐसी ही धृष्टता से धूसरित-बुद्धि के अनुसार व शरारत के शरूर से सरानोर (प्लावित) हो यह विविध-रत्नों से रजित "रयाली-रोमचा" सरस हृदयों के सन्मुख पेश करते हुए सकुचा रहा हूँ—शरम से शरमा रहा हूँ कि विद्वद्-वृन्द ! इस "नेनक्क की शहनाई" पर घासलेटी-साहित्य शब्द के सृजेता "चतुर्वेदी जी" और गवँई-गीतों के गाहक "त्रिपाठी जी" की तरह बरस न पड़े,—दर्दे-दिल की इस नाजुक-सदा पर तड़प न पड़ें। क्योंकि आजकल तो—

> नैर्गुण्यमेव साधीयो, धिगस्तुगुणगौरघम्,
> शाखिनोऽन्ये विराजन्ते, छिद्यन्ते चन्दनद्रुमा ।

मैं पहिले ही निवेदन कर चुका हूँ कि उक्त-कार्य किन्हीं सम्मान नीय विद्वद्वरों का था, परन्तु जबतक उन की दया-दृष्टि इधर आये-आये तबतक ये साहित्याकाश के चमकते हुए,"सितारे" कुछ दिन अपनी यत्र-तत्र प्रभा को प्रगट करते हुए "अदर्शनलोप" के लीला-निकेत होते जा रहे हैं—सुन्दरता की मदिरा से "मख मूर" कवि-हृदय के ये मनचले "मिनमुकरे" (अल्पवयस्क-बालक) सदाश्रय न पा अकाल ही काल के कौर होते जा रहे हैं। अस्तु, इनके उद्धार का कमनीय-कार्य हरे हरे मुझ जैसे—

' साहित्य, सङ्गीत-कलाविहीन "

—के हाथ से हो, यह नितान्त असम्भव है—अश्रुत व्यापार है, पर उक्त दु:साध्य भी साध्य हो रहा है। कुँए की "मेडकी" भी सात-समन्दर की थाह थरपने लगी है—अब उसके भी "ताल" ठुकने लगी है। इस के लिये विद्वज्जन क्षमा करें।

किस तरह फर्याद करते हैं बता दो कायदा,
ऐ असीराने—कफस [१] मैं नौ गिरफ्तारों में हूँ।

विद्वद्-वृन्द के सन्मुख एक अर्ज और है, वह यह कि प्राचीन काव्य को लिपि-बद्ध करते समय मैंने "रत्नाकरी-स्टायल" का इस्तेमाल नहीं किया है—उसे कृत्रिमता की कलौंछी से कलुषित नहीं किया है, ( रत्नाकर जी इन शब्दों के लिये क्षमा करेंगे

अपितु प्राचीन-परिपाटी का ही आश्रय लिया है और "नई आई पुरानी को दूर करो रे"—का दुस्साहस नहीं दिखाया है। क्योंकि हम तो प्राचीनता के पुजारी हैं—उसी मजुल-मूर्ति पर "घायल" हैं, उसी स्टायल के कायल हैं, नूतनता के नहीं। जैसे कि—

दुनियाँ के तगय्युर का नहीं हिस, शैदाए-जमाले-यारी को,
परवाने को मतलब शमा से है, क्या काम है रगे महफिल से। †

अस्तु, मैंने–में, पै, तैं, तौ, कौ, कौं, ज्यौं, त्यौं, मौहन, मोंहन आदि रूपों में, पर, तै, को कों, ज्यो, ज्यों, त्यो, त्यों, मोहन, मौंहन, सोहन, सोंहन, नहीं किया है। जैसा स्वरूप प्राचीन-परिपाटी के अनुसार और आजकल के 'मनचले-कवि-कोविदों के शब्दों में "नीम-बदनाम बुढ़िया-व्रजभाषा" के हस्त-लिखित ग्रन्थों में सुसज्जित था उसे वैसा ही रहने दिया है। उसपर नवीन फैशन की 'रहनुमाई' नहीं रपटाई—उसे हृदय-हार बनाने के बहाने बलात्कार नहीं किया, उसकी सरसता का "खुलेआम" सहार नहीं किया और इसी प्रकार उसके क्रिया-वाचक शब्दों को भी विकृतता की

---

† ईश्वर के अनन्य प्रेमी की दृष्टि, ससार के परिवर्तन पर नहीं पड़ती, अपितु अपने ही लक्ष्य पर रहती है। पतग को सिर्फ दीप शिखा से ही मतलब है, महफिल के रग से, फर्नीचर की सजावट से, तस्वीरों और पर्दों से—उसे क्या काम।

बहार से बढावा नहीं दिया। कारण उक्त-कार्य भी वड़ा-दुस्त था, क्योंकि किसी किसी कवि-कोविद ने तो किसी शब्द-क्रिया क अकारान्त माना है और किसी ने इकारान्त वा किसी ने उकारान्त। इन्हें सुसस्कृत करने का किसी ने भी सत्साहस नहीं दिखलाया किसी ने भी इनको खराद पर खराद कर उतारने को कोशिश नहीं की, सब ने ही—

"अपनी-अपनी ढपली और अपना-अपना राग"

—अलापा है। उर्दू-शायरों की तरह इन्हें चुस्त-दुरुस्त कर का किसी ने भी दुस्साहस नहीं किया। अत इससे जो फ का फजीता हुआ है—उन्मत्तता का जो आविष्कार हुआ है, "अन्दाजा आँकना" अतीव-भयावह है, परन्तु इससे जो की बहार बिखेर कर—शब्दों को तोड़-मरोड कर, जो मजुल मुकुलित किया है वह अकथनीय हैं, अवर्णनीय है। और महानुभाव उन्हें चाहे जो कहें, पर "अपने राम" तो "चार-चाँद लगाना ही कहेंगे। क्योंकि—

"निरङ्कुशा कवय"

—कवि किसी प्रकार की "क़ैद" की कल्पना नहीं करते, वे दुरूह-दस्तन्दाजी को दूर ही से 'सात-सलाम' किया करते हैं। तो स्वन्तत्र-सत्ता के उपासक हैं, उसी अनिर्वचनीय-आनन्द

आशिष्ट हैं। इस लिये हमने भी जिस "क्रिया" वा "शब्द" का जैसा स्वरूप पाया उसे उसी तरह विराजमान कर दिया—उसे उसी रूप में रहने दिया, अथवा यों कहिये कि—

"मक्षिका स्थाने मक्षिका पात

—कर दिया है। अब यह मेरी ही धृष्टता है, मेरे ही मतिभ्रम का फल है और "गर ये भी गुनाह हो तो गुनहगार मैं ही हूँ, दूसरा नहीं।"

रखियो 'गालिब' मुझे इस तल्ख़ नवायी में मुआफ़,
आज कुछ दर्द मेरे दिल में सिवा होता है।

प्राईवेट-प्रपंच को प्रगट तो न करना चाहिये पर जी नहीं मानता, अपितु सात-वर्ष के बाद प्रकाशक जी का एकाएक पत्र पहुँचा कि हम उक्त ग्रंथ प्रकाशित कर रहे हैं, इस लिये आप (मैं) बनारस आ जाँय तो बहतर हो। पत्र पढ़ कर यद्यपि मन में विचार हुआ कि आह! "प्रकाशक जी को" यह असमय में ही प्रसव-पीड़ा क्यों उठी, नवम के पहले ही आप (प्रकाशकजी) क्यों तड़फड़ाने लगे, ऐसा क्या मौक़ा महसूस कर लिया, पर परमात्मा परमात्मा की यह भी विचित्र लीला समझ, होनहार जच्चा और बच्चा की कुशल-कामना मनाता हुआ "बनारस" आ ही

पहुँचा और उक्त पुस्तक-प्रकाशन का कार्य सँभाल लिया, अत
इस पर्दे-फाश पर प्रकाशक-महोदय सधन्यवाद क्षमा करेंगे।

कुछ भी न चली इश्क़ में तदबीर किसी की,
तदबीर पै हँसती रही तक़दीर किसी की।

विद्वद्-वृन्द ! इस संग्रह की "रामकहानी" लिखने की इस समय इच्छा होते हुए भी नहीं लिखी जा रही है क्योंकि माननीय प० पद्मसिंह जी के शब्दों में ये दिल के टुकड़े, जिगर के पारे आज जुदा हो रहे हैं और साथ ही किसी कवि का यह "शाब्दिक नक्शा" आँखों में अटक-अटक कर कह रहा है कि—

वक़ मुझ पर दो-कठिन गुज़रे हैं सारी उम्र में,
उन के आ जाने से पहिले और चले जाने के बाद।

—पर आह ! दिल को थाम कर यह सब कुछ सहना ही पड़ा, जी मसोस कर रहना ही पड़ा और इतने ही पर सब्र करना पड़ा कि प्रकाशक जी के क्रोड से निकल कर ये "मिनमुकरे" अवश्य ही सुहृद-समाज की गोद में लालित-पालित होंगे—दुलराये दुलराये जायँगे।

यद्यपि आजकल "परस्पर प्रशसन्ति अहोरूपमहोध्वनि" का शुद्ध रुचिर रिवाज सा चल गया है, इस 'मजार' पर भी "चन्द

कलमे" लिखना कुछ जरूरी सा समझा जाने लगा है। इस लिये इस पुस्तक की भूमिका के लेखक विद्वद्वर और कविवर "प० शिव-रत्नजी शुक्ल" साहित्य-रत्न को अनेक धन्यवाद है, क्योंकि आपने अपने उदार-हृदय का परिचय देते हुए इस नाचीज ग्रन्थ की भूमिका लिख कर मुझे विशेष कृतज्ञ किया है। इसी तरह "महाशक्ति-प्रेस" के स्वनामधन्य मालिक "श्रीहनूमानप्रसादजी शर्म्मा, वैद्यशास्त्री" के प्रति भी मेरा हार्दिक धन्यवाद है क्योंकि मैं आप की ही परम-अनुकम्पासे (जो करते रहने पर भी) इस ग्रन्थ का सुचारु रूप से कार्य सम्पूर्ण कर सका। आपने जो-जो समयोचित सुशिक्षाओं से मुझे समय असमय सम्मानित किया है उसका मैं हृदय से आभारी हूँ। साथ ही साथ पुन प० पद्मसिंह जी के ही शब्दो में—

> अन्ये चापि महा-भागा सहाया ग्रन्थनिर्मितौ,
> येते सर्व प्रसीदन्तु नामतो न स्मृता इह।

—का भी मैं अनुगृहीत हूँ जिन्होंने समय-समय पर अपनी बहुमूल्य-सम्मति दी थी।

अन्तिम प्रार्थना एक और है, वह यह कि इस पुस्तक मे जो कुछ त्रुटियाँ व कमी रह गयी है उसका मुझे विशेष ध्यान है, पर एक तो सात-वर्ष तक उसे पुन मुझे देखने का सौभाग्य ही

नहीं मिला और मिला भी तो एकाएक मैं कुछ कर नहीं सक्ता था। अस्तु दूसरे-संस्करण की "मुँह-नुमाई" के लिये वह सब कुछ छोड़ना पड़ा। इसी तरह प्रथम फार्म छपते-छपते मुझे "कलकत्ते" जाना पड़ा। अस्तु, वहाँ से शीघ्र फ़ुर्सत न मिलने का कारण यहाँ जो फार्मों की फजीहत हुई वह यत्र-तत्र दृष्टि-गोचर है उसके लिये सहृदय-जन मुझे ही क्षमा करेंगे। क्योंकि—

"इस दिले-बेताब की साहब खता थी मैं न था"

मथुरा
१६८६

निवेदक—
जवाहर लाल चतुर्वेदी

# विषय-सूची

# आँख और कवि-गण

ब्रह्मा बरुनी मै, विराजै सिव स्यामता मे,

विस्नु हैं विलासता मै प्रकास उमगति है,

कोर मे कुबेर हू के कोस की न थाह लगै,

इन्दीवर रन्ध्र हू ता छवि सौ लगति है ।

मौन मैं मुनीन हू के मान हरै "महावीर"

रंग मै रिपीन के उमंग से ठगति है,

रिद्ध-सिद्ध संतन की सत्त-गिरा मेरे जान,

कैधौं ब्रह्म-जोति तिय-नैन मैं जगति है ॥

—कवि महावीर

॥ श्री ॥

# आँख और कवि-गण



आँखिन में प्रीति, रस-रीति, सब आँखिन में,
आँखिन में अच्छर लिखे हैं सुघराई के,
आँखिन में काम औ ढिठाई सब आँखिन में,
आँखिन में सील बसै सुरसिरनाई के।
"आलम सु कवि" कहैं अमृत है आँखिन में,
आँखिन में जग-जोति दोई हैं सुहाई के,
काम के लच्छिन सब लच्छिन हैं आँखिन में,
आँखिन में भेद हैं भलाई औ बुराई के॥

—आलम

विश्वरूपा-आँखों को केवल कवि-गण ही देख सके। भला और आँखों की पहुँच उन आँखों तक कहाँ! कि जिनके सहज ही किंचि-मात्र देखने से मौत का पैगाम आजाय।

उनकौ सहज सुभाउ, और कौ बुध, बल, नासा।

—पठान सुल्तान

नेत्रानन्द के आगे क्या कोई दूसरा सुख है। कोई नहीं, क्योंकि जो रस कवियों को रसास्वादनी रसना के रसों में भी न पाया, वही रस —

अमी हलाहल मद-भरे, सेत, स्याम, रतनार,

—मैं पाया। प्रेमी-जन यही मनाया करते हैं कि, किसी की अनियारी अनियारी अनोखी आँखें हमारी आँखों में अटकें। कमल समान सुचारु और काजर से कलित कजरारी-कोरें कलेजे में कसकें। लाल लाल लोयों से ललित लजीले लोचन की दीठ धौंस धनी दरका करे। आँख में आँख अटकते ही फिर भले ही टकटकाया करो, अन्धे की तरह भले ही इधर-उधर टटोला करो, फिर क्या होता है ?, क्योंकि जब आँख में आँख समायीं कि एक दम मुक्त।

कवि-कल्पना की करतूतों से आँख महरानी, मन-महीप का मन मानी पटरानी के रूप में भी दिखाई देती है। यहाँ स्नेह का सुहाग, लाज का लहँगा, शील की साड़ी, करुणा की कंचुकी, कल्पना का केलि कुञ्ज, वासनाओं का विशाल भवन, सौन्दर्य का सिंहासन, सब ही साजो-सामान सुसज्जित है। कुछ कसर नहीं।

आँखों के सच्चे-जौहरी केवल कविगण ही होते हैं। ये ही इन अनमोल-रत्नों के जौहर और पानी के पारखी प्रचुर-परिमाण में होते हैं। भला औरों के पास वे आँखें कहाँ ?। क्योंकि—

अनियारे, दीरघ, धनत, किती न चतुर जहाँन,

किन्तु—

वा चितवनि औरें कछू, जिहि बस होति सुजान। †

—कविवर बिहारी लाल

† दधियर कम्बिवादत्त श्री व्यास ने बिहारी के इस अनमोल हीरे को अपनी अपूर्व प्रतिभा के सहारे यों सुसज्जित किया है यथा—

सुजान को ही वश करना जरा टेढ़ी-खीर है। अजान की तो बात ही क्या, वह तो जरा से इसारे में ही वश हो जाते हैं। बस करना तो सुजान का है। अच्छा तो वे आँखें कैसी होती हैं? जिनके कि वश में सुजान हो जाते हैं, यह भी कवि-गण ही कह सकते हैं। औरों की क्या ताकत । अस्तु, वे आँखें कैसी होती हैं, उसे "ठाकुर-कवि" कहते हैं। यथा —

डीलदार, सील दार, लाज कौ अहार जिन्हैं,
तीछन मृगा से देखि-देखि रहियतु हैं,
मीन औ खजन से अलसे अनौंखे देखे,
कज-दल हू तैं विसेस चहियतु हैं।
ललित-ललौंहि, चसकौंहे, चसकौंहे जान,
"ठाकुर" कहति सुख पाइ रहियतु हैं,
औरन के नैंनि कहा इन नैंननि के लेखें आँवें,
ऐसे नैंनि होंइ तब नैंनि कहियतु हैं॥
—ठाकुर

समझे साहब? , ऐसे नैंन (आँख) हों तो नैंन (आँख) हैं, नहीं तो नहीं। क्योंकि आँख तो सब के ही होती हैं।

सब से पहिले उनका डीलदार होना जरूरी है, क्योंकि खूबी तो बड़ी आँखों में ही होती है और बड़ों की बात भी बड़े ही जान सकते हैं। छोटे मुँह से बड़ी-बड़ी बातें शोभा भी नहीं लगतीं।

---

जिहि बस होति सुजान, अहै नैना वह औरैं,
बनत बनाए नाँहि किए नखरे के तौरैं।
भौंह नचाइ लपेटु क्यों नहि काजर कारे,
अहैं 'सुकवि' बस करन तऊ कोऊ दृग अनियारे॥

तय आँखें कय यडी मानी जाँय ? जय कि वो कानों को छूती रहें। आँखों का कानों के छूने में क्या रमणीय-रहस्य है, यह रघुनाथ जी से सुनिये। यथा —

देखु री ? देखु यै ग्वालि-गवारिनु, नैंकु नहीं। थिरता गहती हैं,
आँनद सौं "रघुनाथ" पगी, पगी-रगन सौं फिरतीं रहती हैं।
छोर सौं छोर तरौंना कौं छ्वै करि, ऐसी यडी छयि कौं लहती हैं,
जोवन आइये की महिमा, आँखियाँ मनौं कानन सौं कहती हैं॥

—रघुनाथ

धत्तेरे कानों की ? , अरे जरा-आँखों का शुक्रिया तो अदा करनाथा, भला तुझे क्या खयर थी कि जोयन मन-मोहन आरहा है। यह शुभ-सवाद तो उन्होंने ही चार-कदम आगे यढकर दिया है।

हाँ तो ? सयसे पहिले डीलदार ( यडी ) हों। क्या हाथी जेसी, अजी यहाँ हाथी की क्या हकीकत हे। यह तो यहुत छोटा हे। दीरघ-दृगों की यह समता या सामना क्या खाक करेगा। ये तो उससे भी यडी हैं। कुछ झूठ थोडे ही हे। न मानें तो दास जी से दाद दिलायें। यथा —

होति मृगादिक तें बडे वारनु, वारनु तें सु पहारनु हेरे,
सिन्धु मैं केते पहार परे, धरती मैं किते परे सिन्धु घनेरे।
लोकन मैं धरती कितनी, हरि-उद्र(उदर) में केते हैं लोक वसेरे,
ते हरि "दास" वसें इनमें, सन भाँति वडे-दृग राधिका तेरे॥

—भिखारीदास

मृगों से हाथी यडे होते हें और हाथियों से यडे पहाड होते हें और न जाने कितने पहाड समुद्र के पेट में पडे हें और कितने ही समुद्र इस पृथ्वी पर प्रख्यात हें और पृथ्वी भी न

मालूम कितने लोकों की लीला निकेतन है और लोकानुलोक सब हरिभगवान के उदर में अधिष्ठित हैं और वे, जिनके उदर में सब लोक, तल, वितल, सुतल, तलातल समा रहे हैं वही हरि आप की आँखों में बस रहे हैं। इससे समस्त प्रकार से हे श्रीराधे महारानीजी ! , आपके नेत्र ही सबसे बड़े हैं।

देखी ! आपने आँखों की विपुलता-मयी दास जी की दाद, चखा आपने उनकी सरस-रचना का रस।

कभी, रसिक शिरोमणि श्रीकृष्ण महाराज को अपने कमलाक्षों की विपुलता पर घमंड होगया होगा, अस्तु उस घमंड पर झुडकती हुई एक सखी आपसे कहती है कि, श्रीमान् —

कारे महा-अनियारे, अमोल हैं, कौल जिन्हें लखि लागत फीके,
विष-भरे नाँहक मदवि सु आप, हमारे तौ रावन हारु हैं जीके।
आरसी लै तुम दोऊ इचन्त है, देखति क्यों न धौं कौन के हैं नींके,
ऐसे बड़े यहाँ नैनि तिहारे हैं, जैसे बड़े हैं हमारी-सखी के ॥

—कोई कवि

जी हाँ ! ठीक है, भला इनकेऐसे बड़े-बड़े नेत्र कहाँ से आयें, जैसे कि आपकी सखी (श्रीराधिका महारानी) के हैं। ये क्या देखेंगे, ये तो पहिले ही चित्त चुराने वाली चचल-चखों पर सब कुछ न्यौछावर किये बैठे हैं, मोल लिये दास हैं, दीन हो रहे हैं, लोचनों की कोरों में सम्पूर्ण शरीर समा दिया है। देखिये न —

तीन-पैंड जाके थहो, त्रिभुवन में न समाहि,
धनि राधे, राखति तिन्हैं, लोयन कोयन माहि।०

—कोई कवि

---

० कुछ इसी भाव पर कवि वर, रसनिधि जी के दोहे अच्छी रूप से परिचायक हैं। यथा —

आँखें जब डील-दार (बड़ी) हों तब सील दार भी हों, सील अर्थात् लज्जा तो बड़ों ही में होती है न ? , भला शील-सकोच क्या जानें, और जो बड़े होते हैं, वे ही (भारी भरकम) होते हैं, उन्हीं को जाति अभिमान भी है। वे स्वजाति की उन्नति देखकर फूले नहीं समाते। जैसे कि

सबही यौं सुख होति है, निरखि आपुनौं गोत,
ज्यौं बड़री-अँखियानि लखि, आँखिन कौं सुख होत।

किन्तु कभी कभी सगोती-जनों को बड़े, बड़े दुखदायी जाते हैं। यथा —

बहुधा बैरी गोत के, सही गोतियन जानि,
बड़े नैंन खटकन लगे, नैंन हियन में आनि।

बड़ों को ठगना भी कुछ हँसी खेल नहीं है और न कोई

तुम गिरि लै नख पै धर्यौ, हम तुम सौं इग-कोर,
इन द्वै में तुमहीं कहौ, अधिक कियौ को जोर।
घट-बढ़ इनमें कौन है, तुही साँवरे नैंन,
तुन गिरि लै नख पै धर्यौ, इन गिर धर लै नैंन।

एक और —

भरी अमित छवि सो दृगन, सब जग खोलति लाखि,
मेरे दृग नाहें-मनहि, कोयन द्या निच राखि।

ॐ माननीय कवि, नवनीत जी चतुर्वेदी ने रहीम के उक्त दो पर क्या ही अपनी सरस सूझ उपजायी है, वाह—यथा —

आँखिन कौ सुख होत, दैखि तन मन तै रीझै,
लखि कुल की बढ़ वारि, अतहि आँनद रस भींजै।

...रोक सकता है, क्योंकि यह कार्य भी बड़ा ही कठिन है। एक ...र श्री कृष्णचन्द्र, श्री राधिका जी के साथ आँख मिचौनी खेलने ...गे। राधिका जी की आँख ऐसी वैसी नहीं थीं, वे थीं कानों से ...त करने वाली। कृष्ण के कर-कमलों से, कमलाक्षों का बन्द ...ना सहज न था। लाचार हार मान कर बोले कि —

...नन लौं अँखियाँ हैं तिहारी, हथेरी हमारी कहाँ तक फैलि हैं,
...दहु तैं तुम देखती हो, यह कोर तिहारी कहाँ लौं सकेलि हैं।
कान्हर" हू कह ख्याल यहै, तिनकौं हम हाथन ही पर झेलि हैं,
...धे जू मानों भलौ या बुरौ, अँखमूँदनी संग तिहारे न खेलि हैं॥ †

—कवि कान्ह

जब आँखें मूँदने पर भी आप देखती ही रहती हैं, तब भला ...लना कैसा। , हम न खेलेंगे। अच्छा साहब न खेलिये, ...ई बुलाने गया था, अजी हजरत! , कहीं ये ही बड़ी बड़ी ...नियारी आँखें ही तो नहीं पकड़ लायीं।

कहं नैन, कविराज, चतुर रावत सब की रूस,
सन हटिन की, होत, हाए मिच ज्ञान महासुर॥

† इसी आँख मिचौनी की घटना पर कोई कवि इन करें ...टाक्षों से आँख मूँदने पर हाथ ही न कट जाय, इस पर प्रियतमा ...न प्रियतम को कैसा मधुर मना करना करेंगे को मसल रहा है ...कि यह सहृदय रसिकजन ही जान सकते हैं। यथा —

आँख मिहीचनी खेलति माहि, दुइ बिधि सोच कहू नटजाँइ न,
चोर ह्वै चोर सु नंद किसोर री!, जाइ छिपैं औ कहू बढ़िजाँइ न।
नैन मिहीचैं डरौं उनके तजि, लाज सनेह कहूँ हट जाँइ न,
नाथ हा! हाथ सरोज से आपु के, करें कटाच्छ कहू कट जाँइ न॥

—घर कवि

# कटाक्ष

आँखों की तीक्ष्णता भी सराहनीय मानी गयी है। ... तीक्ष्णता तीखी नहीं होती, बल्कि बड़ी-मीठी और मृदुल है। सीधे-सादे विचारे मुबारक को तो यहाँ तक ... गया कि, कटाक्षमयी-मनोरम-आँखें, बड़ी ही तेजदार ... इस से आप किसी नवेली-नायिका को आँख में काजल देख, अतीव दयार्द्र हो बरज रहे हैं कि—

कान्ह कैं बाँकी-चितौन चुभी, सुकि काल्हि की ... आँकी ...
देखि अनोखी सी, चोखी सी कोरि, अनौंखी परै ... चित
मारैई जात निहारैं "मुबारक" ए सहजै कजरारे ...
काजर दैरी न एरी सुहागिन !, आँगुरी तेरी कटैगी कटाच्छिन

अरी बावली ! ... , उंगली से आँखों में अंजन न आँज, तो करेरे-कटाक्षों से उँगली कट ही जायगी, क्योंकि कल ही के यह तेरे कटीले-कमलाक्षों से सचालित कुटिल करेरे कलेजे को काढ़ चुके हैं, क्या यह नहीं जानती ? ... ।

ठीक है, नायिका को मुबारक-महोदय का हजार-बार

† करेरे-कजरारे-कटाक्षों की कोरों से, उँगली कटने कल्पना पर कविवर "देव जी" भी अनोखी-उक्ति कहते हैं।

घोरन लौं दृग काजर देति ही, कारी घटा उमड़ी घन घोरन,
घोरन आली चढ़ी मनौं सुन्दर, बागन हीं कुहुँ देतु है मोरन।
मोरन की धुनि बादति है, अरु मैं बरनी-बरनोरन जोरन,
जोरन "देव" सखी पलकैं, अगुरी कटि जै है कटाच्छ की कोरन ॥

र्दों करना चाहिये। देखिये न, स्वकटाक्षों से उँगली कटती हुई
चा ही तो दी। , नहीं तो उँगली का "बिस्मिल्ला" ही था।
कटाक्ष न ठहरे, तेज-चाकू ठहरे।

चाहे नायिकायें मानै या न मानै, पर इन कुटिल-करेरे-
कटाक्षों के करोड़ों ही घायल हैं। देखिये न एक दूसरे कवि भी
हीं कुटिल-कटाक्षों से मायल हो इसी भाव पर यों सरस-सूक्ति
करते हैं। यथा —

> कहा करै जो आँगुरी, अनी-घनी चुभि जाइ,
> अनियारे-चख लखि सखी, काजर देति डराइ।
>
> —कोई कवि

तीसरे इनसे भी बढ़ा-चढ़ा गजब ढाते हुए, फर्माते हैं कि —

> चतुर-चितेरे तुव सखी ? लिखत नहीं ठहराँइ,
> कलम छुवति कर-आँगुरी, कटी कटाच्छिन जाँइ।
>
> —कोई कवि

चतुर चितेरा (चित्रकार) तेरा चित्र लिखने कैसे ठहरे, अरे
उसकी उँगलियाँ तो कलम के छूते ही तेरे कटाक्षों से कटी जातीं
हैं। कहिये हैं न करेरे कटाक्ष! , चितेरा चित्र लिखने क्या गया,
गो उँगलियों का शिकार कराने गया। चलो उँगलियों पर हीं
बीती, यही गनीमत गिनिये—सकुशल घर तो लौटा—यही बहुत है।

कवि केशव भी इन करेरे-कटाक्षों की काली-करतूत से दिल
मिलाते हुए कहते हैं। कि —

> "केसव" वाकी चितौन की कौन कला कहिजात कही कछु नाँहीं,
> जद्यपि सूधी सुधा-रस सानी, निकार नियरजित सो है सदाँहीं।

तद्यपि जाइ परै जहँ औचक, सूधे-सुभाव हतै वहि छाँहीं
चेतन होतु जड़ै, जड़ चेतन, केननि कौं निरखै दृग माँहीं

केशव जी की करतूत के बाद, पद्माकर जी का परखने लायक है। आप सारे कविजगत को ही पलट देखिये न —

आछे किए कुच-कंचुकी मैं, घट मैं नट के से बटा करिबे को
मो दृग हू पै किए "पदमाकर" सो दृग छूटि-छटा करिबे को
कीजै कहा विधि की विधि कों, कियो दाउ न लौट पटा करिबे को
मेरो हियो कटिबे कों कियो तिय ? तेरे कटाच्छ कटा करिबे को

कामनी के करेरे-कटाक्ष तो कत्ल करने के लिये हैं और हृदय काटने के लिये, फिर इस बात का क्या रोना ?, भी खैर थी, पर एक कवि और आगे बढ़ कर कहते हैं कि

हिरन निहारि जकि रहे हिय हार मान,
वारि-चर वारिज की बनिक बनावी हैं,
हाती होति निय पछतावी कर छाती हैं,
धीर-मन-रंजन के गंजन जमाती हैं।
दीपे कौं समान उपमान इन नैननि की,
कविन के मन की उकति अधिकावी हैं,
प्यारी के अनोंखे, अनियारे ईछ छ्वै-छ्वै करि,
तीछन-कटाच्छिन तें फेटि-फेटि जावी हैं॥
—बेद

तेरे नैनों को देख कर हरिन उक (चक) कर गये

गे। मछलियाँ और कमल इन नैनों की समता न पाकर बाजार विकने लगे और अन्य स्त्रियाँ भी इन नैनों की खूबी के अगाड़ी अपनी दाल न गल्ती देख छाती कूट-कूट कर रह जाती हैं। अस्तु, यहाँ तक तो ठीक था, पर तेरे इन कारे-कमलाक्षों की समता के लिये कवि-गण अनेक-उपमायें उपजाते हैं, किन्तु वे-इन तेज्स्माती तीक्ष्ण-कटाक्षों की बदौलत पहिले ही अर्थात् हृदय में उठते ही ( इनकी बदौलत ) (कल्पनायें) कट जाती हैं। अर्थात् खण्ड-खण्ड हो जाती हैं।

कल्पना का हृदय में उठने के पहले ही (उनका) कट जाना, गजब की सूझ है—अनोखी-उक्ति है—अतुल अनुमान है।

सुनिये। ,एक और शिकायत इन कुटिलों की याद आगई, वह यह कि जब श्री आनन्द-कन्द, ब्रज चन्द ने अपने कोमल-कमल समान कर की कनिष्ठका पर, इन्द्र की उद्दण्डता उखाड़ने को गिरि उठाया था, तो उस समय श्रीराधिका जी वहाँ उपस्थित थीं, अस्तु उनके ललचौंहे लोचनों की कुटिल करतूत से कहीं लाल !, स्वेद-यम्प होकर गिरि न गिरादें इस से यशोदा-मैया उन्हें—श्रीराधिका जी—को सुशिक्षा के साथ मीठा-उलहना देती हुई कहती हैं कि —

भृकुटी-कमान-बान फिरति अकेली बधू।
ता पै ए निमिस-कोर-कज्जल भरे हैं री
तोहि देखि मेरे हू गोविंद-मन डोलि उठै,
मधना-निगोड़ो ज्यों रोप पकरै हैं री।
चलि-चलि जाउँ वृष-भानु की किसोरी तेरी,
नैंकु क्यों मॉनि तेरो कहा बिगरै है री।

घचल–चपल–ललचौंहि–दृग मूदि राखि ,
जौ लौं गिरिधारी गिरि नख पैं धरैं है री॥
—कोई

इसी भाव को कोई दूसरा—कवि यों अपना कर
है कि —

जाउ जिन या समें तू राधे ? सुनि स्याम पास ,
बार-बार तोहि कर-जोरि करि हारि री !
भारी-गिरि-भार कर-कठिन लै उठायौ हरि ,
तातर दुरे हैं गाय, गोपिका बिचारी री !
तेरे नैंनि, तेरे बस नाँहि कहीं साँची मैं,
लाल ! ललिचैहैं लखि रूप की उजारी री,
स्वेद-कम्प ह्वै है, गिरि गिर है अवसि आजु ,
लगि है री ! कलंक, लोग दै हैं तोहि गारी री ॥
—कोई

संस्कृत-साहित्य-सृजेता कवि-कोविद भी इन घरट्टों
को कलप-कलप कर कोस रहे हैं । यथा —

रे रे घरट्ट ? मारोदी क क न भ्रामयन्त्यमू ,
कटाक्षवीक्षणादेव कराकृष्टस्य का कथा ।
—सुभाषित

अरे भाई घरट्ट अर्थात् चक्की !, इन स्त्रियों ने केवल कटाक्षमय
कमलाक्षों से किस किस को नहीं घुमा दिया और फिर हाथ से
हथियाने की क्या हकीकत । इस लिये मत रो भाई, मत रो।
मालुम नहीं इस उक्ति को सुनकर उस जमाने में चकियाँ चल्न
यद हुईं या नहीं, पर इस समय तो ये मशीनों से चलना और

लिख गयीं। शायद इन्हें अद्‌भुतता दिखाने को और कोई न मिला, बस चक्की पर ही बुखार उतार कर रह गये।

> किसी तरह से समझता नहीं दिले नाशाद,
> वही-रोना, वही-धोखना, वही- फरियाद।
>
> —कोई शायर

## कटाक्ष-शर

> लोचन-चंचल कटाच्छ-सर, अनियारे-विष-पूरि,
> मन-मृग बेधैं मुनिन के, जग-जन सहित बिसूरि।
>
> —कृपाराम

लोग-बाग कहते हैं कि, क्या कामनी के कुटिल-कटाक्ष, शर (तीर) के समान शूलदायी होते हैं, क्या हृदय को हनन करने की हकीकत रखते हैं, किन्तु उन्हें कवि-जगत की जोश-भरी, गहरी सूझ के विष-मय-बाण का पताही नहीं कि कमनीय-कामिनी के कटाक्ष-शर (बाण) अन्य शरों से कितने भयावह होते हैं। कितना जुल्म गुजारते हैं। शर बिचारा क्या खाकर इनकी समता करेगा। ये तो कामदेव के भी तीरों को बरबस तरकस में ही रहने को बाध्य करते हैं। उन की भी हकीकत इन के आगे कुछ नहीं। यथा —

> कंज सकोच गड़े रहैं कीचनु, मीनन बोरि दए दह-नीरन,
> "दास" कहैं मृग हू कौं उदास कै, बास दियौ है अनन्य-गँभीरन।
> आपुस में उपमा उपमेय है, नैंननि निन्दति हैं कवि-धीरन,
> खंजन हू कौं उड़ाइ दयौ, हलुके कर दीन्ह अनंग के तीरन॥
>
> —भिखारीदास

मुबारक की मुखरता भी देख लीजिये, कुछ इसी भाव पर।

चचल, चोखेसे, चीकनेसे, चटकारेसे, चौगुने रूप-अभिराम के
सॉन-सगेसे, विषान लगेसे, सयान-पगेसे, रँगेसे ललाम के।
माँजे "मुबारक" दै विष-अजन, सींधेसे बींधें हृदै-घनस्याम के,
बान चितै हग तेरे पियारी, रहे सर काम के, न एकहु काम के।

वाह मुबारक जी, आपने तो दास जी की दूरन्देशी को भी दरियाये गरक कर दिया। दास जी ने तो अनंग ( काम ) महा राज के तीरों को हलके (कुछ उतरे हुये) ही किये थे, पर आपने तो उन्हें काम का ही न रखा। तभी तो कोई गर्वीली-बाज़ा नायिका कह रही है, कि —

भीखम, करन, कृपा, अभिमन्यु, दुयोधन, सौंम औ भूरिस्रवा के।
अरजुन, भीम, जुधिष्ठिर, धृष्ट, विराट-थली सहदेव प्रभा के।
सो सर विरथ किए इन नैंननि, कहा कहिऐ निरदई न दया के।
मेरे कटाच्छ, बचैं न मुनीम हु, कैमैं कहौंसर की समता के।
—कोई कवि

कभी नहीं, भला ये 'शर' के समता के कैसे हो सकते हैं, उन में ये खूबी कहाँ जो आप के कटाक्ष शरों में है। इन में ही अनोखी अद्भुतता है औरों में नहीं। जैसे कि —

बान-बेधि सब विधे कौ, खोज करति हैं जाइ,
अद्भुत-बान-कटाच्छ जिहि, बिध्यौ लगै मँग आइ॥
—रसलीन

देखिये कैसी अजब अद्भुतता है। बान से बेध कर बिधे ( जख्मी ) की सब कोई खबर लेता है, पर कटाक्ष-शर की बिधि

क्षता का ज़रा विश्लेषण कीजिये कि यहाँ बिंधा हुआ (ज़ख्म खाया हुआ) स्वयं संग ( साथ ) लगा चला आता है, यह भी ग़नीमत है। कवि शम्भु और ही कहते हैं। यथा —

भूत, परेत की फेरी बचै, पै नैंनि की फेरी हियौ तुरि डारै,
तीर बचै, तरवार बचै अरु सम्भु की बान बचै है न्यारै।
बज्र की फेरी बचै पै बचै, पै प्रान बचैं नरसिंघ हुँकारै,
काल की फेरी बचै घड़ी द्वैकु, पै बचैं नहिं नैंनि-चितौन के मारै॥

—कविशम्भु

पियूष-वर्षी- बिहारीलाल जी भी कामनी के कटाक्ष शर की यह अद्भुत-कल्पना देखकर पूछते हैं कि —

तिय ! कित कमनैंती पढ़ी, बिनु जिहि भौंह-कमॉन,
चल-चित बेझै चुकति नहिं, बंक-बिलोकन-बॉन॥ †

—बिहारीलाल

अरे तिय ! , ऐसी अपूर्व धनुर्विद्या तू कहाँ पढ़ी कि बिला रौंदेवाली तो भौंह रूपी कमान और फिर बान, जो भी देखा, देखना

† रसिकेश जी इस भाव पर यों अपनी रसिकता दिखलाते हैं कि —
को गुरु ऐसौ प्रवीन मिल्यौ जिनि, तोहि दई सिगरी निपुनाई,
प्यारी ! बिनॉं धनु तीर अधीर, करै इहि बैस इतौ अरिभाइ।
बेधनि है चल चित्त न चूकति, बंक बिलोकनि-बान चलाई,
सॉंची कहौ "रसिकेस" तिया तू, यह कमनैंती कहाँ पढ़ि आई॥

व्यासजी की बहादुरी भी देखिये। यथा —

बंक बिलोकन-बान, तेंचि भौं कब बरसावति,
करति भयमरे जीव, पिय हि पुनि पुनि तरसावति।
मारि जियावति पुनि मारति बस करन पीय जिय,
"सुकवि" भौंन न गुरू निकट इहि रीत पढ़ी तिय॥

भी टेढ़ा, तिस पर लक्ष्य क्या कि चचल चित्त—निमिप-मात्र भी जिसकी गति नहीं रुकती, ससार-भर के चचल पदार्थ जिसके सामने पगु हैं। तिस पर भी वार खाली न जाय—ज़रा भी न चूके, बेकरार दिल बिंध ही जाँय, वाह अनोखी-कमनैती पढ़ी है।

सस्कृत साहित्य के सरस-सुमन अमरुक जी को इसी भाव पर अपूर्व उक्ति है। आप कहते हैं कि —

मुग्धे ! धानुष्कता केयमपूर्वा त्वयि दृश्यते,
यया विध्यसि चेतासि, गुणै रेव न सायकै ।

—अमरुशतक

मुग्धे ! तुझे यह कैसी अपूर्व धनुर्विद्या आती है कि जो गुण (डोरी) से ही (चचल चित्त को) वेध लेती है, वाणों से नहीं।

यद्यपि अमरुकजी ने सब कुछ कहा—सस्कृत-साहित्य का यह अनूठा अलकार है, पर "तिय कित कमनैती" का कुछ मजा ही निराला है—यह काट ही कुछ और है।

आँखें क्या, है मोहनी हैं, सेह हैं, ऐजाज हैं
इक-निगाहे-लुत्फ में, सारा गिला जाता रहा।

—कोई शायर

एक और बानगी देखिये। यथा —

हत्वा लोचन-विशिखै गत्वा कतिचित्पदानि पद्माक्षी,
जीवति युवा न वा किं भूयो-भूयो विलोकयति। †

—सुभाषित

† इसी भाव से मिलता एक उर्दू-शायर का शेर देखिये यथा—
आँखें चुराने वाले, ज़रा मुड़के देख तो,
ये कौन कुश्तये निगह यार हो गया।

—कोई शायर

यह पद्माक्षी (कमल समान नेत्र वाली) लोचन-बाण मार कर और जरा आगे बढ़ कर बार-बार पीछे फिर कर देखती है कि (वह) युवा जीता है या नहीं, जिस पर कि मेरे ये प्रबल-प्रहार हुए हैं।

उक्त आर्या भी लाजवाब है, भाव भी भूरि भूरि प्रशंसनीय है। पर भाषा-साहित्य की कुछ सूक्तियाँ निराली ही अदा से अलकृत हैं। देखिये कुछ इसी भाव पर कैसी अनोखी-उक्ति है कि सुन कर दिल भी दिल में मचलने लग जाय। यथा —

अमी, हला-हल, मद-भरे, सेव, स्याम, रतनार,
जियति, मरति, झुकि-झुकि परति, जिहि चितवति इकबार। ‡

—रसलीन

रसिक-हृदयो!, देखी आपने कविता-कामिनी-कान्त कवि-कोविदों की मधुर-वाक्य रचना। वाह जी "रसलीन" क्या त्रिगुणात्मक तीर मारा है—कुछ कहना है। सफेद, श्याम और

‡ इस भाव पर भी एक कवि की कल्पना देखिये यथा —
लोचन अनूप ऐंने लगति सु होय अति, सेत अरु स्याम, रतनारे सुख दैन ते,
अमृत, हला हल औ मद सौं भरे हैं खरे, रसिक बिहारी बिख्यात गुन सैन ते।
वह मधुराई, करुआई औ तिखाइ घनी "रसिक" सुजान जन जानें मति ऐन ते,
जीवति, मरति, झुकि झुकि कै परति सो तौ, चितवति जाहि इकबार भरि नैन ते॥

—रसिक

इसी निशाने पर किसी एक उर्दू शायर ने भी अच्छा तीर मारा है। यथा —

आँखों में मौत हस्तियो, मस्तीका लुफ है,
सामाँ है जहरो आबे हयाती शराब का।

—कोई शायर

रतनार को अमृत, जहर और मद से समानता देकर रस-बरसाया है—जो अमृत सिंचन किया है, वह आप जैसे रसज्ञों का ही कार्य था, औरों का नहीं।

मद-भरे नैनों पर, एक पद प्रेम पीयूष के प्रबल पिवैया नागरीदास (किशन-गढ नरेश) जी का बडा ही अपूर्व है। यथा

मद-भरी, अँखियाँ लाल ! तिहारी।
तिन सौं तकि-तकि तीर चलावति, बेधति छतियाँ आँनि हमारी।

❀ ❀ ❀
❀ ❀ ❀

उर्दू साहित्य के सुरसिक शायरों ने भी मद भरी आँखों बहुत कुछ कहा है, बल्कि आबे हयाती शराब से भी माशूक चुल्बुली-चश्मों को बहुत कुछ बढा-चढा कर माना है। यथा—

देखा किया वो मस्त-निगाहों से बार-बार,
जब तक कि जाम आये, कई दौर हो गये ॥

सौदा का शऊर भी देखने लायक है। यथा—

कैफियते-चश्म उसकी मुझे याद है सौदा,
सागर को मेरे हाथ से लीजो कि चला मैं ॥

—सौ०

पंडित पद्मसिंह जी ने एक निहायत ही नुकीला किसी शायर का कहा हुआ हरिद्वार में एक शेर कहा था, उसे देने का लोभ संवरण न कर सके। यथा—

उसकी सुरत देखता हूँ तेरी आँखें देखकर,
दो-पियालों में भरी है, जैसे लाखों-मन शराब।

तअश्शुक साहब का तराना भी कुछ-कुछ इसी सर-जमीन से मिला-जुला सा है। यथा —

हमने देखीं हैं किसी शोख की मस्ती-भरी-आँखें,
मिलती जुलती है (बहुत) छलकते हुए पैमाने से।

—तअश्शुक

## कुटिल कटाक्ष-शर

लागत कुटिल-कटाच्छ-सर, क्यौ न होइ बेहाल,
कढति जुहियौ दुसार करि, तऊ रहति नट साल।

—बिहारी लाल

कुटिल-कटाक्ष शर अर्थात् तिरछी-चितवन की तिलस्माती तासीर और भी क्या यह होती है। इसका दुखद दुःख, दीन-दुनिया का भी नहीं रहने देता। पीर, पिराया ही करती है। अधीरता अधिकार किये ही रहती है। देखिये तिरछी-चितवन के चोट खाये हुए "घन-आँनद" जी क्या सुरस रस को बरसाने की लौ लगाये कह रहे हैं कि —

रसहि पिवाइ प्यासे-प्रानन जिवाइ राखैं
लाज सौं लपेटि लसैं उघर हितौंन की,
निपट नवेली, नेह भेली, लाड- अलबेली,
मोहैं-मन ढारी भरी बिरह हितौंन की।
लौंने-लौंने कोंने छ्वै छबिली अँखियाँन सौं,
सु रचकौ न चूकै घाव औसर निवौंन कौं,
एरी "घन-आँनद" बरस मेरी जान तेरी,
हियौ, सुख-सींच गति तिरछी-चितौंन की॥

—घन आँनद

तिरछी चितवन की तीरन्दाजी पर "नासिख" का भरा निनाद भी क्या सुन्दर है—साइस्तगी का कैसा सिंहावलोकन है। यथा —

विरछी नजरों से न देखो, आशिके दिलगीर को,
कैसे तीरन्दाज हो सीधा तो करलो तीर को।

आतिश भी इसी अन्दाज पर तडफडा कर चिल्ला कि —

तिरछी नजर से तायरे-दिल हो चुका शिकार,
जब तीर ही कज पडेगा, तो देगा निशाना क्या।

तीसरे भी ( तिरछे ही ) तीरे-नजर के मजरूह यूँ फर्माने कि —

खता करते हैं टेढे-तीर यह कहने की बातें हैं,
यो देखे तिरछी-नजरों से ये सीधे दिल पै आते हैं।
—कोई

तीसरे तीरे नजर के मजरूह की तीरन्दाजी तो देख ही अब जरा कुछ इसी भाव पर रसनिधि जी का रस भी चाखि यथा —

भौंह कुटिल, बरुनी कुटिल, नैनहुँ कुटिल दिखात,
बेधन कौं नेही हियौ, क्यौ सूधे ह्वै जात।
—रसनि

न मालूम क्या बात है, जब सब कुछ कुटिल है, तो फि सीधेपन की साधना कैसी ?, कुछ आप ही बतायें तो बतायें किन्तु बलभद्रजी कुछ और ही बहादुरी दिखा कर कहते हैं कि

नैंकु ही निहारैं नैंनि, नाइका नवेली नव,
मुनिन के मन, मन-सिज सौं तनोति हैं,
विन हीं कटाच्छ काटैं लाज कौ कवच-वरु,
काजर नए तें करैं काम कौ उदोति हैं।
जो हैं अविकार मो विकार करें औरनु कौ,
छाँडैं ना कुलीन-भाव जैसें जस गोति हैं,
बाँकी-चितवन तें करैगी कहा "बलभद्र"
सुधी-चितवन तें असाधू साधू होति हैं॥
—बलभद्र

ठीक है बलभद्रजी, ठीक है—हाँ जब सीधी चितवन से ही असाधू, साधू हो जायें तब तिरछे-तीरों की क्या जरूरत।

कुछ ऐसे ही मजमून को अकबर साहब-अकबराबादी यूँ अपना कर कहते हैं। यथा —

जमाना हो गया बिस्मिल तेरी सीधी-निगाहों से,
खुदा ना ख्वास्ता तिरछी नजर होती तो क्या होता।
—अकबर

## तलवार

उनकी नजरें क्या फिरीं, खजर गले पर फिर गया,
देखते ही देखते तलवार आँखें हो गईं।
—बिस्मिल

चितवन-तलवार की तुली भी तरहदार तबीयतों को तरफा रही है। अपना जोम भरा जौहर जाहिर कर रही है। यथा —

भृकुटी कुटिल राजै मूठसी विराजै वरु,
पलव-मियान पुज-पानिप रसाल हैं।
कज्जल-कलित दोऊ कोर मैं दुधार-धार,
डोरे-रतनारे जेब जौहर के जाल हैं।
"गोकुल" विलोकि निज-चाह के सनेह सनीं,
स्वच्छ है कटाच्छ काट करत कराल हैं।
कमनीय-कामिनी के रमनीय नैंनि किधौं,
कामिन के मारिवे कौं काम करवाल हैं॥

कविवर दाग की भी इसी भावपर दिलचस्प दाद यथा —

निगाहे तेज मे उसकी, चमक जाती है बिजली सी,
इलाही खैर हो तलवार मे, तलवार कैसी है।

## तेगा

तेगा तिय-दृग त्रिप-भरे, पानिप ढार सुकाट।
अंजन-बाढ सु दए विनु, करति चौगुनीं काट। †
—रस

† रसनिधि जी ने नैंन-बरछी पर भी एक दोहा कहा है यथा—

बैसे मन धन एंठते, मानन्ता के नैन,
मन-मथ जो दतो नहीं, इन कर बरछी-सैंन।

## छुरी

मीन रज तैं बढ़ी हैं, सोभा-सिन्धु तैं कढ़ी हैं,
भौंहैं भाव सौ चढ़ी हैं ज्यौं कमान काम बस की,
जादू की पुड़ी हैं, किधौं मदन-जुड़ी हैं,
हला-हल तैं बुड़ी हैं, कै भरी हैं सुधा-रस की।
मंत्र की कड़ी हैं, प्रेम जाल की लड़ी हैं,
कै विरह की छड़ी हैं, कै जड़ी हैं स्याम सस की,
नेह अँकुरी हैं, किधौं पद्म-पखुरी हैं,
यह आँख यपुरी हैं, कै छुरी हैं हाथरस की॥

—कोई आधुनिक कवि

## कटारी

मत चलाउ मो सामुहैं, इन कौ पैनौ-वार,
नजर-कटारी-बाँकुरी, पल-म्याने करि यार।

—रसनिधि

हरत मरम-दुख, करत परम-सुख,
पान पनिलित करैं अति अनियारी हैं,
"श्रीपति" सुकवि भनैं सोहत सहस छवि,
विरहा-तिमिर रवि कज्जल तैं कारी हैं।
जेहर की जेब जगमगत अनूप करि-
जतन अनेक कमलासन सँवारी हैं,
रूप-गुनवारी, जम जिया कौ जियारी,
प्यारी अँखियाँ तिहारी किधौं काम की कटारी हैं॥

—श्रीपति

जोती कवि की जुगत भी (कटारी पर) जाँच यथा —

पद्म-पत्र वारी, सोभा सान की सँवारी,
आछी सिकल सौं सुढारी, किधौं काम-धरकारी।
सुरमाँ सौ सुधारी जामैं वाढ धरी न्यारी,
न्यारी पानिप सँवारी जिलै निध की उजारी।
"जोती कवि" न्यारी छिन उपमा विचारी तीनौ
गुन की गुरारी मीन-मान गज डारी।
नैंकु जो निहारी, हिय माँहि गहि मारी प्यारी
चितवनि विहारी किधौं बूँदी की कटारी।
—जोती कवि (?

## बन्दूक

प्रथमहि दारू खाइकै, पीछै गोली खाँइ,
चितवनि चारु बन्दूक ए, चोटहि चूकत नाँइ।

## श्वेत, श्याम, रतनार

नैनि-कज सकाटच्छन नहिं मकरन्द,
स्याम, सेत, रतनारे, करति अनन्द।
—देवराज

आँखों में इन त्रिगुणात्मक तीन-रंग की स्वाभाविक प्रधानता है। सेत, स्याम, और ललित-ललाँही के लोचन,

है। आँखों के इन त्रिगुण रूपी रगों पर, कवियों ने उँची-उडानें उडी हैं—खोज-खोज कर खोज की खूबियाँ खिलाई प्रस्तु इन त्रिगुणात्मक-रंगों से रंजित त्रिबेणी ( गगा, जमना, यती ) तीर्थ में स्नान कर त्रिस होइये और कवि कल्पना को हिये। यथा —

उज्जल-प्रवाह तट गग कौ बिलोकियतु,
मानौ लाल-डोरी सरसुति सुरा-दैंनी हैं,
पूतरी पलक-बीच काजर झलक जामें,
जमना जगत जम-त्रास हर लैंनी हैं।
नैकु ही निहारे तैं कोटि तन पाप कटैं,
मजन किए तै सुरगन सुरा दैनी हैं,
एरी मेरी-प्यारी ? मैं तीरथ न जानौ कछू,
प्यारी तेरे-दृगन बीच प्रगट त्रिबैंनी हैं॥
—रसिक कवि

इसी भाव पर "द्विज देव जू" यों अपना दुनियावी चित्र ाते हैं। यथा —

उज्जलता धवल-धार सोभा अपार-वार,
गङ्ग की तरल-तरग मुक्ति की निसैंनी हैं,
कालिन्दी-कालिमा कलि-मल हरन-हारि,
तारन-तरन तनु-ताप हर लैंनी हैं।
लाल-लाल डोरे लसत बाल-लोयन मैं,
पुन की पताका सी सरसुति सुरा दैंनी हैं,
कहैं "द्विज देव" छवि कहाँ लौ बखान करौ,
प्यारी के दृगन बीच प्रगट त्रिबैंनी हैं॥
—द्विजदेव

कवि लच्छीरामजी की लेखनी की लीला भी लखिये।

सादर-सुरग-डोरे त्रिसद-प्रभा है गग,
जमुना-तरग पूतरी ज्यौ विलसत हैं,
"लछीराम" देवी-देव, बरनै विरद-व्रज,
परम-प्रवीने मोदरासि हुलसत हैं।
मज्जन मकर एकु वासरै सुफल होत,
वारहौं-महीना इन्हें देखै फुलसत हैं,
सगम-सुहाग, भाग-परम-प्रयाग प्यारी,
तेरे नैन-जुगल त्रिवैनी से लसत हैं॥

हरलालजी के हुलसाए हृदय के हाव भी हुजूर में किये जाते हैं। यथा —

श्रमल अमोल कौल कलित सुरेत सोहैं,
सुरसरि-धारि स्वच्छ सोभित उमग हैं,
स्याम-मन रजन दिपाँजन दिपत दिव्य,
सोही जल जट्यौ जमुना को परसग हैं।
ललित-लकीर-जाल वामें दरसात वर,
अमित उदार-धार भारती अभग हैं,
"कवि हरलाल" अद्भुत ऐन जानौ मैन,
राधिका के नैन में त्रिवैनी की तरग हैं॥
—कवि

एक और भी, यथा —

सेतताई गग की सुहाई स्वच्छ दीसतु है,
स्यामता कलिन्दी-धार राजै सुचि हेरे हैं,

डोरे-लाल अतिही रसाल हैं गिरासे खासे,
जाके लखें पातक न आवै भूलि नेरे हैं।
मज्जन करत कान्ह दीठ है सदाँई जामें,
"रसिक" नवीन होत चित्त ही सौं चेरे हैं,
तीन-गुन गहब गहीले औ रँगीले बर,
प्रगट त्रिवैनी से तिया ए नैंन तेरे हैं॥
—रसिक (नवीन)

देखा आपने, इन त्रिगुणात्मक-सेत, स्याम, रतनार से रंजित
[illegible]णीय आँखों का—अनोखा वर्णन। सत्व, तम, और रजोगुण
[illegible] कैसा सुरम्य समिश्रण है—त्रय ताप हारिणी त्रिवेणी का
[illegible]लना रहित कैसा तीर्थराज है। वाह —
आलम हैं अनोखा आँखों का, दुनियाँ हैं निराली नजरों की,
—कोई कवि

एक दूसरे कवि कला निधि इन तीनों-रंगों से रँगी रुचिर,
[illegible]खों में फाग की कथन को फगाते हैं। जैसे कि —
असित, सेत, लोहित ललित चोवा, अबिर, गुलाल,
पिचका-कुटिल-कटाच्छ सौ, नैंननि माच्यौ ख्याल।
—कोई कवि

आँख का काजल ही चोवा है, सुन्दर श्वेतताई ही अबीर है
[illegible]र ललित-लुनाई ही गुलाल है, अस्तु, कुटिल-कटाक्षों से नेत्र—
[illegible]हाराज फाग सा मचा रहे हैं।
गाथा सप्तसतीकार भी सेत, स्याम, रतनार पर क्या ही
[illegible]रव से गुनित एक गाथा गढ़ते हैं। यथा—
अरुणाए विहोन्वि मुहे पढ़न धवलाइ दीहकसणाइ,
णअणाइ सुन्दरीणा वह विहु दट्ठु ण जाणन्ति।

अर्थात् —

अन्यासामपि भवन्ति मुखे पक्ष्मल धवलानि दीर्घ कृष्णानि,
नयनानि सुन्दरीणा तथापि खलु द्रष्टुं न जानन्ति।

और और सुन्दरियों के मुख पर भी तेरे-समान
वाली सेत, श्याम, रतनार-रगसे रजित बड़ी-बड़ी आँखें हैं,
वे तेरे समान देखना नहीं जानतीं। क्योंकि —

यह चितवनि औरै कछू, जिहि बस होत सुजान।†

त्रिगुणात्मक सेत, श्याम, रतनार का रहस्य तो
रंजन कर ही रहा है, किन्तु किसी कवि की सेत,
कैसी सराहनीय सुमधुर-सूझ है कि वाह । यथा —
श्याम सित च सुदृशो सुस्वरूप, किन्तुस्फुट गरलमेतदथामृत च
नोचेत्कथ निपतनादनयोस्तदैव मोह, मुद च नितरादधते युवान।

इस मृग नयनी के नेत्रों में जो यह काजल का कालापन
सुधवल सफेदी है, वह वास्तव में कालौंछी व सफेदी
किन्तु जहर और अमृत है। अगर कोई कहे कि

† शायद कविकुल शिरोमणि बिहारीलाल ने ऊपर
को लक्ष करके ही उक्त-दोहा लिखा है, पर उक्त दोहा
ढकेल कर कितना ऊपर चढ़ गया है, यह सहृदय-रसिकजन ही
जान सकते हैं।

अनियारे, दीरघ, धवल, किती न चतुर जहाँन,
यह चितवनि औरै कछू, जिह बस होत सुजाँन।

मृत नहीं, है तो उनके किंचिन्मात्र-देखने से नव-युवक क्यों तवाले हो जाते हैं। इससे जान पड़ता है कि उस (सलोनी ायिका) की आँखों में जो काजल है, वह मत्तकर मारने वाला हर है और उसकी आँखों में जो सफेदी है वही सचमुच अमृत है जिसके क्षणिक अवलोकन से मरना, जीना और आनन्द में ते लगाना सब साध्य है।

कोई उर्दू-कवि भी इन दोनों-रंगों पर, संस्कृत-सूक्ति के सम त पर ही कैसी अनोखी उक्ति कहता है। यथा —

> आफत की सफैदी थी, कयामत की शियाही,
> नौरंग दो आलम मुझे, दिखला गई आँखें।
>
> —कोइ शायर

## श्वेत,

आँखों में जो सफेदी है, वह कवि-कलानिधियों को कैसी लगी और उस पर कैसी मनोरम-उत्प्रेक्षा अलंकृत की हैं, कि वाह। था —

> नैनों-फुलेल-फुचावि भरी, पट भीनति-भीम तै रूप अन्हैयतु,
> आनन-नीर भरें-ध्रर-पोत सौ, या छवि कै लरि कै ललिचैयतु।
> "ब्रह्म" भनै सब छोरि कैं काहू न, प्यारी के रूप कौ हेरन जैयतु,
> कानन सों तौ कटाच्छ लगे, कलधौत-कटोरन दूध अचैयतु॥
>
> —ब्रह्म (नीरवल)

आँखों में सफेदी क्या है, मानों सुवर्ण के कटोरे में दूध भर र पीना है। कहिये है न उत्तम-उत्प्रेक्षा, धन्य ब्रह्म-देव न्य !

## श्याम, †

यौ छवि पावत हैं लखौ, अँजन-आँजे नैंनु,
सरस-चाढ सैफन धरी, जनु सिकलीगर-सैंनु।

कवि संसार में कज्जल-कलित कमलाक्षों का कुछ ही निराला है—अहाँ ही अनोखा है। इस पर कवियों ने निकाल निकाल कर रख दिये हैं। देखिये न —

जिय-रंजन खंजन-दृगन, अंजन दियौ बनाइ,
मनहुँ सॉन फेरी मदन, जुगल-बान निज लाइ।

जिय को रंजन (प्रसन्न) करने वाले, खंजन समान अंजन ऐसा बना कर (सम्हाल कर) दिया है, मानों मदन-महोदय ने अपने बाणों को स्वयं ही शान से किया हो। वाह खूब शान रक्खी जो औरों की शान बिगाड़ने

कोई कवि काजल लगाती हुई कलधौत-कलिका सी को कैसा मीठा उलहना दे रहा है। यथा —

खाइ हलाहल, औरनु मारतु, आली अचम्भव बात करी
नैंकु दया जिय में धरि री, इहि तेरेई ऊपर पाप परी

† कोई-कोई महानुभाव सेत, स्याम, रतनार में स्याम की "पुतली" से सगुण करते हैं, पर हमारी समझ में पुतली की काजल ही उचित प्रतीत होता है। इस लिये पहिले हम काजल ही वर्णन करते हैं। विज्ञ पाठक क्षमा करें। भूल-चूक लेनी देनी।

हिक अजन देति सँवारि, सचै उरसालति साल सरी री ,
ो बचिगौ कहि कोर-कटीलेनु, क्यों पुनि नैननि याढ धरी री ॥†
—कोई कवि

जब कटीली कुटिल-कोरों को देख कर ही कोई न बचा, तब
ाजल रूपी कमलास्त्रों पर, बाढ़ धरने की क्या जरूरत ?।
योंकि —

एकु तौ नैना-मद-भरे, दूजै अजन-सार ,
धूमि बावरी देति को, मद-माँतेनु हथियार।

—कोई कवि

संस्कृत का भी कोई सुकवि इसी भाव के सदृश अपनी सरस
ूक्ति कहता है। यथा —

लोचने हरिण-गर्व मोचने, माकृशाङ्गि कज्जलेन रञ्जय।
सायक सपदि प्राण हारक, किं पुनर्गरलेन लेपित ॥
—कश्चित कवि

अर्थात्—अरी कृशाङ्गी !, इन अपने हरिणों के भी गर्वों को
ालित करने वाले इन गुनन गळले लोचनों को जहर रूपी काजल
से न रंग, क्योंकि जब नजर रूपी बाण बिना काजल के ही प्राण
ने को पर्याप्त है, फिर जहर ( काजल ) का लेप करने की क्या
रूरत . ।

यह सब कुछ है पर शिवनाथ जी कुछ और ही शोर मचाते
, ये अपने दिल की दाद दूसरी ही देते हैं। यथा —

† इसी भाव को रसलीन जी यों अपनाते हुए कहते हैं कि —
रे मन, ! रीति बिचित्र इहि, तिय नैनुनि को चेत ,
विष-काजर निज खाइ कैं, जिय औरन को लेत।

अजन-कोरि दृगचल राजवि कै मुनि नैंसुक आँन,
कै दुमुहीं इहि नागिन सी "सिवनाथ" भनै रसना तिलमी है
चन्दहिं चाँहि चढी चुचकारि, कपोलन-कूल अमी-रस लै
देखति ही विष छाइ गयौ उर, काटै जुपै दहौ कैसै कै जाँ
—

भला इस के काटे का क्या पता, क्योंकि जब काजल-वाले
कोरों को जरा सा ही देखने से विष सा बगर जाता है, फिर,
कुटिलों के काट की कहानी छोडो, पर वाह जी शिवनाथ—

चन्दहिं चाँहि चढी चुचकारि, कपोलन-कूल अमी-रस

—में क्या सरस-रस सरसाया है, चन्द्र को चुचकार (पुचकार) कर कपोलों के कूल (किनारे) से क्या अमी रस पिया है, वाह ।

उर्दू साहित्य के प्रसिद्ध कवि जान साहब का उन्मुन जोर जरा मुलाहिजा फर्मा कर, उनकी बयाने शायरी सलाम कीजिये । यथा —

आँख लडते ही, होगयी आशिक,
मोहनी थी सुए के काजल—में ।

—जान

वाहरे काले-कलूटे काजल और तेरी भुवन मोहनी शक्ति ?, सहस्रों वार साष्टाङ्ग-सलाम है ।

श्रीनिधिजी की सरस सूक्ति सुनिये । यथा —

यौं कानन के तीर, नैंन-कोर-कज्जल-कलित,
कढी कलक-लकीर, "श्रीनिधि" मानौं चन्द बिच ।

अर्थात् कानों के पास (तीर) तक वे कज्जल-कलित-मलाघों की कोरें ऐसी मालुम देती हैं, कि मानों चन्द्रमा के बीच लङ्क की लकीर खींची हो।

कहिये, कितनी सरस सूक्ति है, कितना विदग्धता भरा वर्णन है कि कुछ कहते नहीं बनता । और भी लो —

अजन होइ न लसति तो ढिंग नैंनि विसाल,
पहिराई जनु मदन-गुरु, स्याम-चन्दनी-भाल।

—रसनिधि

तेरे ये विशाल दृग, काजल से शोभा नहीं पा रहे हैं, किन्तु मदन-गुरु ने अपने नेत्र रूपी चेलों को यह काजल रूपी काली-हंसली पहनायी है—नजर न लगने का निरूपण किया है। अर्थात् देठौना लगाया है।

रस निधि जी की रसना इस थोड़े से रस से परितृप्त न हुई, तो पुन इस सुरस का रस लेते हुये बोले कि —

दीन हीन नेहीन कौं, रौंदि न करै अचैन,
अजन-आँदू भर दिए, दृग-गज- माँते नैंन।

—रसनिधि

कहीं, दीन हीन नेहियों को रौंद (खूंद) कर अचैन न करें, इस लिये नैन रूपी मदमाते हाथियों को अजन आँदू (एक प्रकार का कड़ा जो कि हाथी के पैर में डाला जाता है जिससे वह चल नहीं सकता) काजल रूपी बेड़ियाँ डाल दी हैं।

खूब किया, पर इन निठुर-नेत्रों की निठुराई तो देखो कि काजल रूपी बेड़ियों से अलङ्कृत होने पर भी लाखों को अपने लीला हाव में कुचल ही तो डाला।

रह गये लाखों कलेजा थाम-कर,
आँख जिस जानिब, तुमारी उठ गई।

चित-चोर, कज्जल-कलित-कोर का शोर यहाँ तक
से चला कि बूढ़े-बाबा बलभद्र जी को भी अपनी
याद आ गयी और बोले कि —

कँचन के पिंजरा परे खंजन तलफात किधौं,
बाँधे जुग-मीन नाग-फाँस सौ मदन हैं,
काम के कमानन मैं फूलनि की कूनिका कि,
आयुध-तिलक सिंगार के सदन हैं।
निमिष-पुलिन्द-मैन माँजे हैं प्रदीपन सौ,
"बलभद्र" मुनिन हूँ के मन के हरन हैं,
काजर की रेख अवरेख लोचननि मैं मनौ,
कीन्हे चित-चोरन के मेचक बदन हैं॥

आँखों में काजल क्या है, मानो चित चुराने में चतुर
(आँखों) को, चोरी की सजा में प्रेमियों के कुल ग्रंथ से (उनके
चारों तरफ कालिख पोती गयी है—अर्थात् उन (चोरों) का
काला-मुँह किया गया है।

क्या खूब! कैसी सुन्दर सजा दी गयी। पवन सुत की पूँछ
में ही आग लगा दी। अब लगा-लगी की लङ्का में तीर का
इश्क के दीवानों में कुहराम मच जायगा। आशिकों के मन
मन्दिर की ऊँची ऊँची अट्टालिकायें, काजल से कलित आँखों
की आग से धहधहा कर ढह पड़ेंगी। चलो छुट्टी हुई।

कोई कवि, काजल लगाती हुई किसी रसीली-रमणी को देख कर क्या ही उत्तम-उत्प्रेक्षा उपजाते हैं कि —

प्रान-पियारी ! सिंगार सँवारि, लऐ कर आरसी रूप निहारै,
चंद से आनन की दुति देखि, सु पूरि रही उर-आँनद भारै।
अंजन-पोर सी लै रमनी, दृग आँजति यौं उपमान बिचारै,
चीर कै चौंच-चकोरन कौं मनौ चौंप तैं चन्द चुगावति चारै ॥
—कोई कवि

अर्थात् चन्द्र-देवता, शौक से अपने प्रेमी-चकोरों की चोंच चीर कर चारा ( खाने को ) चुगा ( खिला ) रहा है।

वाह , कितनी सरस-सूक्ति है, कितनी उत्तम-उत्प्रेक्षा है।

चीर कै चौंच चकोरन कौं, मनौ चौंप तैं चन्द चुगावत चारै।

गुनन-गरुले कविवर गंग जी मेंहदी से मुकुलित मृदु-मालती-लता के समान कर-कमल द्वारा काजल लगाती हुई किसी कामनी पर कैसी अनुपम उपमा उपजाते हैं कि वाह, अस्तु आप कहते हैं कि —

सुन्दरी ! साजि-सिंगार सुधारति सौति के गरबहि गंजन कौ,
"गंग" लहैं कर-सार सुतौ, मन-मोहन के मन-रंजन कौ।
काजर चारु दियैं अँगुरी, तिन मैं महदी-रँग अंजन कौ,
(वह) ऐसी जचीं हिय मैं उपमा, मनौ गुंज चुगावति खंजन कौ ॥ ‡
—गंग

‡ मनोहारिणी-मेंहदी से मुकुलित युगल-कर पर जनाब जौक साहब का एक 'शेर' याद आ गया जिसमें आपने अपने-हृदय-गत भाव से कैसा कमाल किया है कि वाह। देखिये न —

आलम सु कवि भी इस घटना को जरा फेर के साथ अदा से अलंकृत कर अनूठा आनन्द उलीचते हुए कहते हैं कि

गुन-रूप निधान सुजान-वधू, हित प्यारी पिया मधु-गजन का
कवि "आलम" पूरन-काम समीप, ▪ देह दिपै दुति मजन का
कर-पल्लव, कजन से दृग छोरि, सु रेख रचै पति अजन क
लिखनी-दल-मजुल-कज की मैन लै, चचु सँवारत खजन की

कोई केलि-कला चतुर-चूडामणि नायक, अपनी गुण और रूप की निधान सुजान प्रिया के कज से दृगों को, कर पल्लव से तनिक चीर कर अजन आँज रहा है। इसपर आल कवि कहते हैं कि मानों काम-कारीगर कन्ज दल की कलम से, खजनकी चोंच सँभाल रहा है। काजल क्या लगा हैं, गोया खजन की चोंच अच्छी तरह से बना रहे हैं।

धन्य है आलम कवि तुमको और तुम्हारी दृष्टिको। सरस सौन्दर्य का सजीव चित्र चित्रित किया है वाह —

पजये महर को खूने शफकी में हर रोज,
गोते क्या क्या तेरा दस्ते हिनाई देता। —औक

अर्थात्—तेरे मेंहदी लगे लाल लाल हाथ, हमारा ही करते हों यह बात नहीं, अरे उसकी लाली को देख कर सुबह शाम खूने समन्दर(लाल समुद्र) से गोते खा-खा कर निकल है, पर (वह) तेरे हाथों की सी लाली नहीं पाता—नहीं पाता

फिर आया वह रो निगारे-ख़ूनी, इधर को सर गर्म-जग हो कर,
कि जिसके हाथों से उड़ गये सर हजारों महदी का रग होकर। ×

मल के मँहदी दस्त में, दरिया में नहाया न करो,
आग पानी में मेरी जाँ लगाया न करो।

एक अज्ञात कवि की और भी अनोखी उपज के अलौकिक आनन्द का अनुभव किजिये। यथा –

न-मोहनी सूरत राधिका की लखि, मोहन के मन प्रेम पग्यौ,
हुँ ओर तें फैली है चन्द्रिकासी, मुख की छवि नंद-कुमार रँग्यौ।
हुँ नैननि बीच में काजर-रेखु, विराजत रूप-अनूप जग्यौ,
नि कौ तजि चंद सौ नेह कियौ, अरविन्दन मानौ कलंक लग्यौ॥
—कोइ कवि

—अर्थात् अरविन्द यानी कमलोंने रवि ( सूर्य ) को त्यागकर चन्द्रमा से जो नेह किया है, उसी का मानों यह काजल रूपी कलंक लगा है।

रसिनिधि जी की रसना फिर भी न मानी और एक अनूठा आलाप अलापती बोली कि –

रूप ठगौरी डारि कै, मोहन गौ चित-चोर,
अंजन मिसि जनु नैंनि ए, पीयति हला-हल घोर। ‡
—रसनिधि

चाहे जिस उपमा का आलाप अलापिये पर कज्जल-कलित आँखों की समता पा नहीं सकते। यथा –

समता कहो कैसेहुँ भौंरनि पै, कबहूँ कुमदामल खंजन तैं,
अलि जाचक है कै मके मरिकै, उन कंजन के मद-भंजन तैं।
"द्विज देव" कुरंग मरै समुहाइ, लला मन-मंजुल रंजन तैं,
जब प्यारी सुधारति सूधे सुभाइन, मोह-मई दग अंजन तैं॥
—द्विज देव

‡ कुछ ऐसे ही भाव पर रसलीन जी भी कहते हैं कि –
-रे मन ! रीत विचित्र यह, तिय नैननि की चेत ;
विष काजर निज खाइ कै, जिय औरन को लेत।

शेखर जी की सखावत का शऊर भी सारे सुहृदयों मणि हो रहा है। जैसे कि —

कैधौं चद-मडल में खेलैं खजरीट खूब,
सीत कौ प्रसग अग-अग विष धारे हैं।
कैधौं रचे जोवन-नरेस-मन रजवे कौं,
सेत-रग बारे रस-राज के अखारे हैं।
कैधौं सौति-गन के सुहाग चरिवे कौ तम,
"सेखर" कै कामदेव आसन निहारे हैं॥
कैधौं रही लगि मजु कजन मैं लाज किधौं
कामिनी के आज नैंनि अजन सुधारे हैं॥

यह तो है ही, पर अञ्जन से अलकृत आँखों की अनूप निरञ्जन भी सब कुछ छोड इन्हीं को मन रञ्जन का मना हैं, औरों की क्या बिसात । यथा —

मीन कमीन करे छिन मैं, सु कुरगन के उर बान सौ छोडौ
चचरता की कमी न रहे कछु, खजन तें अँखियाँ-जुग ओडौ।
रूप इते पर क्यौं इतराइ न, कौतुक सौं अपनी चित टोडौ
खजन गज निचारे कहा भट्ट?, अजन देखि निरजन मोडौ
—
—द२

काजर ने कारी कमरारों की कजरारी-योरें भी में कुछ कमकसर नहीं रक्खीं, वसेरो वोवौंच ( छेद ) नेमैंदन करती हैं। यथा —

फिर-फिर दौरत देखियतु, निचले नैंकु रहैंन ,
ए कजरारे कौन पै, करति कजा की नैंन । †

—बिहारी

देखो, बार-बार ( फिर फिर कर ) देखते हैं—जरा भी निचले (स्थिर ) नहीं रहते आह , किस गरीब पर गजब ढा रहे हैं।

रसिक-कवि की रसना भी इसी रस की रसिकनी बनकर आजिजी के साथ पूछ रही है कि —

छिपति छिपाए ना छिपै, छहर छबीले छैन ,
ए कजरारे कौन पै, करति कजा की नैन ।

—रसिक

श्रीमान् रसिक-कवि जी, क्यों इस दुसह रस पर रपट रहे भला ये कजाकी से भरे कजरारे-कमलाक्ष कब कुछ कहेंगे। कुछ कजाकी से बाज थोड़े ही आना है। पर रसिक-कवि भी मानने वाले हैं। आप फिर फर्माते हैं कि —

सोभित सम्हारे, सने सुरमा, समूल सुख,
सरस-रसीले सरसीले, सेल-सोरदार,
चचल चलाक चारु चौपन चटक भरे,
चौंकति चमके चले चतुर-चित चोरदार ।

---

† व्यास जी का जड़ाव भी जरूर देखिये —
करति कजाकी नैन, कौंन पै करि करि छए बल ,
कोर कटाच्छन हात है रहे, अति सै चचल ।
दैंह सुधा की लालच जनु विष सौं हिय बोरत ,
"सुकवि" किहूँ थिर होइ छनक मैं फिर फिर दोरत ॥

"रसिक कहैं" मद मैं मतग से मजे मैं मृदु,
मैंन मत-वारे मान मीनन के मोरदार,
तोरदार सौना, मरोरदार, जोरदार,
करति कजाकी कजरारे-नैंन कोरदार।

नोंकदार का निनाद तो निरखा ही, अब जरा
तराना भी तबीयतदारी के साथ सुनिये। यथा —

† इस--"करत कजाकी कजरारे नैंन-कोरदार"
ही तुकनियों ने अपनी अपनी सरस-सूक्तियाँ रखी हैं,

जोनन मुल्क ह्वैकैं मदन-महीप जूने,
मीन छाप दैकैं राखे भट-जुग जोरदार,
उरज बुरज पै मवासी छवि रासी इहि,
पिय-मन अन्तर थपीके नींके डोरदार।
"उदिदाम" सिसुता सों हरि चढि दैंहैं मन,
धरम, करम, सरम रह्यौ एकहू न ओरदार"॥
येन कज, खजन चकोर भौर गजन री?
"करति कजाकी कजरारे नैंन कोरदार"॥—

नसत से मौती, नथ नासिका कयति जोति,
"सदानद", को तिय तेरे सँग होरदार,
तरनि से कानन तरौंना इन्दु आनन पै,
उरझी अलक मौती मालन मैं मोरदार।
उभति उरोजन पै उर बसी तैसी लसी,
कैसी कसी कचुकी कसूँभी रँग घोरदार,
छोरदार अचर के ओट दुरे डोरदार,
"करति कजाकी कजरारे नैंन कोरदार"॥—

सील भरे सरस सरोज छवि छीन लेत,
मीन, मृग, खंज, मान-गंजन मरोरदार,
नेह-सरसीले, अरसीले, भाव-दरसीले,
परसीले परम-रसीले रँग—बोरदार।
घोरदार चितके, चलाक हित जोरदार,
कोरदार "सेखर" अरुन वर डोरदार,
दोरदार दीरघ दिमाक भरे प्रान-प्यारी,
ताकन दै तनकि तिहारे नैन-चोरदार॥
—शेखर

नुकीले नैनों की कोरों पर परम रसिक ललित किसोरी जी कैसा अनुपम-रस बरसाते हैं। यथा —

नैननि की कोरै कोऊ लैहै।
है कोऊ ऐसी प्रेम-रँगीली, प्रान निछावर वैहै॥
नूतन-मधु मैं मोल लै आई, छुवति खुमारी ऐहै।
"ललित-किसोरी" ततछिन जियरा, टूक-टूक ह्वै जैहै॥
—ललित-किसोरी

कहिये कैसी सरस छटा है। कैसा मनोरम मधुर मधु है। रुचिर रचना है कि, वाह—पद पद से पुनीत प्रेम छलक है, मञ्जुल मिठास है-ललित लोच है।

है कोऊ ऐसा प्रेम-रँगीली प्रान निछावर देहै।

कवि रघुनाथ जी भी कज्जल कलित कमलाक्षों पर कैसा नीय-कलाप करते हैं कि वाह। यथा —

कैधौ चंद-मंडल में कुंड हैं अमी के भरे,
देखि कै फनिन्द-जौट छाँड़ति न गौमो है,

## आँख और कविगण

केधौं दृग-वानन में लागी नटसाल किधौं
तुही वृज-वाल नन्द-लाल कौ ठगौसौ है।
"भनै रघुनाथ" किधौं तेरे ए तरेरे-तेग,
तापै धरी धाद ताते मैन हूँ मँगौ सौ है।
मन्त्र सौ जगौसौ तन्त्र-मोहनी पगौसौ किधौं,
नैनि-कजरारेनि तै काजर लगौ सौ है॥

कज्जल-कलित-कमलाक्षों की कटारी किंवें सी कोरें को काटने में कमाल है ही, किन्तु बिहारीलाल जी काजल जरूरत नहीं समझते, क्योंकि ये बिना काजल भी काट लासानी है। यथा —

रस-सिंगार मजन किएँ, कजन भजन दैंन,
अंजन-रंजन हूँ बिना, खंजन गंजन नैंन। †

बिहारी लाल जी के साथ-साथ नागरी दास जी भी उचित का समर्थन सरसता के साथ करते हुए कहते हैं कि
कजन हू तै डह-डहे, बिनु-अंजन छवि दैन,
खंजन गति गंजन महा, पिय-मन रंजन नैंन।
—नागरी

† खंजन गंजन नैंन, निरखि छकि गयौ निरंजन,
बरनन करिबे परे सुकवि, कैते 'सम' पजन।
विधि जनु इन मैं दियौ अहै, निज गुन कौ सरवस,
अहैं हठीले, चटकीले, सब विधि पूरे रस॥

यथार्थ है, देखिये न —

काजर बिन कारी रे तोरी अँखियाँ।

—नंद दास

कहते हैं कि काजल दृष्टि को साफ करता है, किन्तु यहाँ तो नियों के काले कलूटे काजल ने कवियों की दृष्टि को और काली करदी—निहायत धुंधली बना दी। देखिये—न यहाँ कि साँवले 'का साँवरा रूप ही काजल समझ किसी मिनी" से कहलाते हैं कि —

देव" मन्योसि न्हायौ सनेह सौं, भाल-मृगम्मद बिन्दु कै भाख्यौ,
चुकी मैं चिपरौ करि चोवा, लगाइ लियौ उर सौं अभिलाख्यौ।
मखतूल गुहे गहने, रस-मूरतवंत सिंगार कै चाख्यौ,
वरे-लाल कौ साँवरो-रूप, मैं नैंननि कौ कजरा करि राख्यौ॥

—देव

देखी आपने देव जी की कारीगरी?, नीचे से ऊपर तक क्या ड़ी की कड़ाई लुढ़कायी है कि वाह।

## रतनार †

राते-डोरेन तें लसति, चपल-चंचल दृग आइ,
मनु थिर पूनौ अरुन मैं, राजन बाँध्यौ आइ।

—रसलीन

† रतनारी आँखों के निरूपण में लाल-डोरे तो प्रधान माने ही गये पर कवियों ने रात्रि जागरण से रंजित रतनारी आखों का इसी के साथ न किया है। इस लिये परवस हो हमें भी वैसा ही करना पड़ा—विज्ञ ठक क्षमा करें।

कवि संसार में रजोगुण का स्वरूप, लाल माना, उसी स्वरूप की परम पुनीत प्रथा के अनुसार रमणी की (लाल नहीं) गुलाबी आँखों पर अनुपम-उक्तियाँ उपजाय, गुज़र भरे गुलाबी-रंग में रँग गये हैं—लाली की निराली फ़िदा हो गये हैं। सब कुछ न्योछावर कर, लुटा दिया है।

आँनद के मंदिर में कैधौं रुचि मानिक की,
कैधौं अनुराग-लता अंकुर बिराज हीं,
कैधौं रतिनाथ जू के हाथ की छबिली-छरी,
जा के इतमाम तैं तमाम-दुख भाज हीं।
कैधौं तरुनाई अरुनोदय किरन राजै,
तारे कारे-घन चपलासी सुरंग साज हीं,
लाल-मन बाँधिबे को कैधौं लाल-रंग-डोरे,
कैधौं बाल-डोरे तुव नैननि में छाज हीं॥
—तोष

बलभद्र जी की बहादुरी भी, बरबस हृदय को बेध कुहराम मचाता हुई कह रही है कि—

पाटल नयन कोकनद के से दल दोऊ,
"बलभद्र" बासर उँनींदी लखी बाल मैं,
सोभा के समुद्र मैं बाडव की आभा किधौं,
देव-धुनि-भारती मिली है पुन्न-काल मैं।
काम-कैवर्त किधौं नासिका उडूप बैठ्यौ,
खेलत सिकार तरुनी के रूप-ताल मैं,
लोचन सिता-सित मैं लोहित लकीर मनौ,
बाँधे जुग-मीन लाल-रेसम के जाल मैं॥

कहिये, कैसी अनूठी उँनींदी आनन्दभरी रमणी के ललित चर्नों की लुनाई पर सरस सूक्ति सजायी है! है न, अनोखी ज!

कौन कवि ऐसौ जो छक्यौ ना नैनि-रूप लखि,
लाल-लाल डोरेन नै बहुते घर घाले हैं।
—कोई कवि

यह तो जो कुछ है सो तो अनोखा है ही, पर कवि शिरोमणि बिहारीलाल की भी लीला लखिये। आप किसी लावण्यमयी ललना के ललित लोचनों की लुनाई को लख कर लला से कहाते हैं कि –

बाल! कहा लाली भई, लोयन-कोयन माँहि,
इसपर वह जवाब देती है कि —
लाल! तिहारे दृगन की, परी दृगन मैं छाँहि। †
—बिहारीलाल

कहिये कैसा मुँह तोड़ उत्तर है लाजवाब हाजिर जवाबी है।
गूढोक्ति अलंकार की कैसी अनूठी उक्ति है–देखिये न!
हे बाल! तुम्हारी लाल लाल आँखें क्यों हैं!, इसपर वह नायिका जवाब देती है कि लाल! यह आपकी ही अनोखी आँखों की लाली तो मेरे लोचनो में झलक रही है और कुछ नहीं है। वाह! क्या फड़का देने वाला वचन विन्यास है, वाह, बिहारीलाल जी वाह!

† छाँह परी यह अरुन इहा तेरे नैननि की,
क्यों बरसावति वहकि, हनति बरछी बैननि की।
तेरे पाँइन परनि पिया? "सुकवि" हू के पालक,
तू दिखरावति भौंह हाइ जनु ब्याली बालक॥
—व्यास जी

इसी यादृदात पर स्वर्गीय कविवर गयादत्त जी च‍तु
संस्कृत दोहा रचकर इस प्रकार अपनी प्रखर प्रतिभा
चय देते हैं। यथा –

तरुणि! कुतस्ते नयन-युगमरुणतर प्रतिभाति,
मधुप! तवारुणदृकप्रभा प्रतिविम्ब विदधाति।

तरुणी! तुम्हारे ये तीखे नयन-युग आज क्यों अरुण
हो रहे हैं। इस पर नायिका उत्तर देती है कि हे मधुप!
ही तो अरुण-दृगों का यह प्रतिबिम्ब पड़ रहा है। इसी
अरुण हो रहे हैं।

आह, कितना सीधा-साधा लाजवाब जवाब है,
विदग्धता भरी हुई है। फिर श्लेष में सराबोर "मधुप"
तो और ही गजब गुजार रहा है!

काहू के रंग रँगे दृग रावरे, रावरे-रंग रँगे दृग मेरे।

इसी टक्कर की कुछ-कुछ एक आर्या भी है। यथा —

आर्द्रार्द्रकरजरदनक्षतैस्तव लोचनयोर्मम दत्तम्,
रक्तांशुक प्रसाद कोपेन पुनरिमे नाक्रान्ते।

अर्थात्, अन्य नायिका कृत नूतन नख-दन्त क्षत रूपी
चिन्हों को चमकाता नायक, निज नायिका
उसे देखकर नायिका के नेत्र क्रोध से लाल हो गये, इस प
नायक पूछता है कि —आप की आँखें लाल क्यों हो रही
तब वह कहती है कि प्यारे तुम्हारे शरीर पर झलकते हुए

दर्दाई (खून से खचित) दन्त नख क्षतों अर्थात्—जख्मों ने
ने आँखों को रक्तांशुक (लाल किरण स्वरूप) लाल-कपड़ा
दान में दिया है (यह) उसी की लाली है, इसे क्रोध की लाली
समझिये।

यद्यपि उक्त आर्या परम अनूठी है और संस्कृत साहित्य में
इसका पूर्ण आदर है, पर भाषा-कवियों का भाव कुछ निराला ही
होता है—इन की ललित लोच कुछ और ही है। देखिये न,
इनकी सरस सूझ! इसी घटना को किस उत्तमता के साथ शुरू
करते हैं और कितना आनन्द का स्रोत उमड़ाते हैं। यथा —

यौं घनस्याम! अबै उनिंदे भए, मो तन दीठि करौ सुखदाई,
ज, गुलाबहु में अरुनाई, न लाल, गुलालहु में सरसाई।
नैन पै इतनों गहिरौ रँग, धनि हैं वा रँगरेजनि की चतुराई,
साँची कहौ इन नैननि-रंग की, दीनौं कहा तुम लाल रँगाई॥

—कोई कवि

बता दीजिये साहब! कि उस "निगोड़ी" को इनकी रुचिर-
गाई में सब-कुछ दे दिया है, कुछ भी बाकी नहीं छोड़ा।

कवि हरिजन जी का हृदय भी (कुछ कहने को) हुलसाया,
आप कहते हैं कि —

जैसेई अधरन पै अधिक सु सोभा देति,
अजन की लीक, पीक मो हिय लगाइऐ,
जैसे डग धरति डगति फेरि थहरात–
ऐसी लाल! चाल चलि हमेंहूँ सिखाइऐ।
"कवि हरिजन" जैसे बोलत कछू के कछू–
आवत न नीकें तासौ भेद समुझाइऐ,

जैसे लाल ! लाल-लाल लोचन रँगाए हाल,
तैसी लाल ! लाल मेरी चूदर रँगाइए।
—कवि

पद्माकरजी का प्रबल प्रताप भी इसी भाव

मरगजे-हार बेसुमार बारुनी के बस,
आधे-आधे आखर सुएहू भाँति जपते,
"कहै पदमाकर" सु जैसे हैं रसीले-अंग,
तैसी ही सुगंध की झकोरन की झपते।
जैसे बन आए आप, तैसी ही बनावौ मोहि
मेरौ अभिलाष लाख यही-भाँति धपते,
लाल-दृग-कोरन मैं मेरे नैंन बोरौ अथ—
कैधौं इन नैंननि निचोरौ नैंन अपने॥

कोइ फलधोति की सी कामिनी ( सवेरे ) अपने उनीं-अलसौंहे लाए लाल लोचनों को पानी के छींटे दे-दे कर धो है, इसपर "शेख" † अपनी सूझ की सफलता का "सेहरा" सरार बाँधती है कि वाह ! यथा —

रात के उनींदे, अलसाते, मदमाँते-राते,
राजैं कजरारे-दृग तेरे यौं सुहात हैं,
तीखी-तीखी-कोरन अँकोरि लेति काढ़ै जिय,
केते भए घाइल औ केते तलफात हैं।

† लोक में यह बात प्रसिद्ध है कि "शेख" नाम की रँगरेजिन को एक-दोहे के निचले पाद की पूर्ति पर मुग्ध हो

ज्यों-ज्यों लै सलिल चख 'सेख' धोवै बार-बार,
त्यों-त्यों बल बूँदन सौं धार झुकिजात है,
कैबर के भाले, किधौ नाहर नहन वाले,
लोहू के पियासे कहूँ पानी सौं अघात है॥

—शेख

शोणितमयी पिपासा क्या कभी पानी से परितृप्त होती है, कभी अघाती है? कभी नहीं! यह तो और भी बढ़ती है। पर "शेख" ने स्त्री होकर भी क्या अनोखी उक्ति कही है।

उन आँखों की आँखों से लूँ मैं बलायें,
मयस्सर हो जिनको (ऐसा) नजारा तुम्हारा।

—दाग

ललित लोचनों की लुनाई का मीठा मजा, 'मतिराम' जी भी लेते हुए कहते हैं, और खूब कहते हैं कि —

मोर-पखा 'मतिराम' किरीट मे, कंठ बनी बन-माल सुहाई,
मोहन की मुसिक्यान मनोहर, कुँडल डोलत हैं छवि-छाई।
लोचन-लोल, बिसाल-बिलोकनि, को न बिलोक भयौ बस माई,
वा मुख की मधुराई कहा कहौं, मीठी लगै अँखियान लुनाई॥

—मतिराम

---

आलम कवि ने एक लाख रुपये दिया था और साथ ही उससे निकाह भी किया था। वह दोहा इस प्रकार है —

कनक-छुरी सी कामिनी, काहे कों कटि छीन,
कटि कों कंचन काटिकै, कुचन मध्य धरदीन।

—शेख

परम-रसिकवर महाराज नागरीदास जी की दासी 'बनी-ठनी' जी भी रतनारे-लोललोचनों पर अति एक उक्ति उपजाती हैं। यथा —

रतनारी हो ! थारी आँखडियाँ।<br>
प्रेम छकी रस-बस अलसाँणी, जाँणि कमल री पाँखडियाँ॥<br>
सुन्दर-रूप लुभाई गति-मति, हो गई ज्यूँ मधु-माँखडियाँ।<br>
रसिक-बिहारी, वारी-प्यारी, कौन बसी निसि-काँखडियाँ॥

सबने सब कुछ कहा, पर कवि सम्राट् सूर की के आगे किसी को सफलता न मिली। आप कहते हैं कि —

अतिही अरुन हरि ! नैन तिहारे।<br>
मानहु रति-रस रँगे रँग मँगे, करत केलि पिय पलक न पारे॥<br>
मँद-मँद डोलति सकित से राजत मध्य मनोहर तारे।<br>
मनहुँ कमल-सम्पुट महँ बीधे, उडि न सकत चपल अलि-बारे॥<br>
कलमलाति रति रैन जनावत, अति रस-मत्त भ्रमत अनियारे।<br>
मानहुँ सकल जगत जीतन कौं, काम, बान सरसान सम्हारे।<br>
अट-पटात, अलसात पलक-पट, मूँदत कबहूँ करत उघारे।<br>
मनहुँ मुदित मरकत-मनि-आँगन, खेलति खजरीट चटकारे।<br>
बार-बार अवलोकि-कनखियन, कपट-नेह मन हरत हमारे।<br>
'सूरदास' सुख-दायक लोचन, दुख-मोचन लोचन-रतनारे।

## पुतली वा तारे

रहिमन, पुतरी-स्याम, मनहुँ जलज मधुकर लसै ,
कैधौं सालिगराम, रूपे के अरघा धरे।

—रहीम

आँख में जो स्याम पुतली है, आप जानते हैं यह क्या बला है। न जानते हों तो कवि कल्पना के कायल होकर देखिये। यथा —

फटिक के सम्पुट मे सोण सालिगराम किधौं ,
कैधौं कमल-दल पै भौंर से निहारे हैं ,
मृग-मद-बिन्दु कौं लसत प्रतिबिंब किधौं ,
कैधौं दिए दृग मे काजर तें कारे हैं।
कैधौं मरकति-मनि मुकति-सुकति पर ,
कैधौं रवि-नाइक नै साइक निसारे हैं ,
पिय-मन तारबे कौं अवतरे तारे-भारे ,
वारुनी के बारि मनौं तरुनी के तारे हैं॥

—कोई कवि

देखिये ! एक दूसरे कवि जी भी, क्या अनुपम उपमा "पुतली" पर उपजाते हुए कहते हैं कि —

पंकज के दल पै दल द्वै, भँवरी रस-लालच हेत लगी हैं ,
कै नटनी सुरनाइक की, निरतति कल-हाव सौं भाव-पगी हैं।
बालक के नैननि की पुतरी, निसि-बासर लाल के ही में लगी हैं ,
कंचन की कस-रूप डिबीन में, खोल धरी मनौं नील-नगी हैं॥

—कोई कवि

सुवर्ण की मछली के समान, खुली हुई आँख रूपी ि
मानों नीलम के नग-समान पुतली धर दी है।

कहिये, कितनी सरस और हृदय को फड़का देने
अनूठी उपमा का आविष्कार है।

तन-सुबरन के बसत यों, लसत पूतरी-स्याम,
मनौं नगीना फटिक में, जरी कसौटी काम।
—रसलीन

"चिरजीवी" कवि की चपलता भी पुतली पर
विल है। प्रमाण प्रस्तुत है। यथा —

सोभा के सरोज किधौं रसिक-मलिन्द बैठ्यो,
चन्द माहिं राहु किधौं बुद्धि यै हिया की हैं,
फटिक-सुसीप में सिंगार-रस-मोती किधौं,
उपज्यौ अजीब जामें गरज पिया की हैं।
भनैं "चिरजीवी", किधौं चाँदी के सम्पुट में,
सालिगराम सोहैं ऐसी उकति जिया की हैं,
कैधौं मीन-आँगन में मदन-महीप डोलें,
प्रेम-मद-माँती किधौं पूतरी तिया की हैं॥
—चिरजीवी

पुतली की प्रबल परीक्षा में नूर कवि का निनाद भी
मजा दे रहा है। यथा —

तामरस सोहैं तरुनी के चक नैंन बीच,
तामैं तम निसा की बसीठी मनौं लायौ है,
कैधौं अनुराग-जाल डारे मैंन सैंन-सर,
गोलक हैं ताके ताकौ ऐसो भाव भायौ है।

खजन धरे हैं मुख जम्बू-फल मेरे जानि,
उपमा न आनि "नूर", ऐसो ठिकठायो है,
सखनी के स्याम-तारे ऐसे मैं निहारे किधौं,
चन्द पै चकोरन नैं हलाहल भौं खायौ है ॥
—नूर

कवि बिहारीलाल जी पुतली को पातुर ( रंडी ) के रूप में स्तुत करते हैं। यथा —

सब अँग करि राखी सुघर, नाइक नेह सिखाइ,
रस-जुति लेति अनत-गति, पुतरी-पातुर-राइ। †
—बिहारीलाल

द्विज कवि की दीर्घ दृष्टि ने भी पुतलियों का पीछा न छोड़ा, आपकी अजूबी उपज का मुलाहिज़ा फर्माइये। यथा —

कैधौं गडकी के सुत रजत-कटोरे धरे,
अरचा करत विधु विधि सौं विचारे हैं,
भयौ नयौ जोवन-नरेस ताके भीत भरि,
मदन-सुनार घट पला पल धारे हैं।
"द्विज कवि" कहैं कौल-दल पै लसति-अलि,
कैधौं सिंधि-सीप पै नील-मनि धारे हैं,

† पुतरी-पातुर-राइ, नचति ठमकति ठमकनि पुनि,
भ्रमि भाइवा करति मनहुँ, भ्रुव भौंह परनि गुनि।
दरस दिनामहि देतु छाल रिझवार पागि-रँग,
"सुकवि" सुर्माहि बिनु भूषा भाव सौं पूरे सब अँग ॥
—श्याम जी

> ब्रज प्रान-प्यारे राधे, गिनैं निसितारे वाके,
> होति निसतारे देखि तेरे नैन-तारे हैं॥
> —द्विज कवि

आखिर जब "चिरंजीवी" कवि की चपलता जब न आई, तब हार कर बोले कि —

> गज-मत्त सी जौंन करै छवि सौं,
> चख-चाट अमैं गुन सीलिन की,
> बँधी प्रैम की साँकर पाँइन सौं,
> मनमत्थ महाउत हीलिन कीं,
> "चिरजीवी", लगी जब तैं वो अमोल,
> सुगोल-गुली उनमीलिन की,
> उतरी ना अजौं उर तैं उतरी,
> पुतरी ब्रज-बाल-गुनीलिन की॥
> —चिरंजीवी

हरिद्वार में हरि की पैंडी पर एक दिन प० पद्मसिंहजी। मालूम किस कवि की पुतली पर सरस सूक्ति कही थी। कि —

> नागिन पुतरी नैन की, रही कौंठरी रवाइ,
> वैरिन भूँसी प्रान की, देखति ही डसि जाइ।
> —कोई कवि

था खुदा बख्शी जी का भी बखान पुतली पर सुनते है। आप फर्माते हैं कि —

> लोचन-ललित प्रीत-रस पागी, पुतरिन स्याम निहारे,
> मानों कमल-दलन पै बैठे, उड़ि न सकवि अलिवारे।
> —बख्शी जी

## आँख का तिल

नैन-महल बरुनी-सुचिक, पुतरी-मसनद साज,
तिल-तकिया तामैं सुमन, दै बैठो महराज।

—मुबारक

आँख के तिल की तिलस्मात ने भी तबियतदार कवियों को रुला दिया है। एक दम तिलमिला दिया है, जैसे कि —

राजैं वाम-लोचनी के तिल वाम-लोचन मैं,
ताकी छवि कहिवे कौं कौन कैं सयान हैं,
जहाँ तिल, वहाँ नेह, एहू न सनेह जानि,
चित-चिकनाई कौं विचार्यो अनुमान हैं।
सिसुता के भाइतें रुसाई दरसाई ताकी,
एकै जुगति आई जिय प्रीतम सुजान हैं,
नाहक चतुर-मन-दीन छीन लेति नैन,
तिनन-सरूप लग्यौ "पातक" निसान हैं॥

—कोई कवि

नाहक ही चतुरों का दीन और मलीन-मन छीनने की सजा कैसा कलेजे में कसकने वाला तिल-रूपी पातक का काला निशान निराली अदा का लगा है।

सुजान कवि की भी "तिल" पर सरस सूक्ति सुनने लायक देखिये कैसी उपमा की उत्पत्ति करते हैं। यथा —

सिसुता मैं जोवन की निकाई कछु देखि बातैं,
चरन-सरोज गति धीरता गहति है,
घाँघरी पै ओढनी विराजै तामैं चोटी चारु,

वा छवि के देखे तें मनोज उमहति है।
दीरघ-दृगन बीच पूतरी समीप तिल,
ताकी उपमा कौं यौं "सुजान" सो कहति है
अमल-कमल बीच अलि अलिनी सौं मिलि,
करि-करि मकरंद-पान आनँद लहति है
—सु

## कोए

कोयन सर जिन के करें, सोयन राखे ठौर,
कोयन-लोयन नाहनौं, कोयन-लोयन जोर।
—

कोयन की करतूत कवि-कोविद नवनीत जी† से कैसा कलेजे में कसकने वाला कलाम कहते हैं। यथा —

पिय अनुराग के रँगे हैं जू उछाह भरे,
गरे मन-मानिक मजेज की तयारी हैं,
"नवनीत", मानौं ए नुकीले-नैन-कोरन की,
कोरन अरत सूर-समर सुधारी हैं।

---

† कविवर नवनीत जी चतुर्वेदी माथुर-समाज के एक रत्न अभी विद्यमान हैं। आपकी परम प्रसिद्ध ग्रंथ मण्डली (अर्थात् रत्नाकर जी प्रभृति) कायल हैं। हम इन सुकवि शिरोमणि कविराज की कविता का संग्रह हम प्रकाशित करेंगे। "नैन निकुंज" पर आपकी अपूर्व प्रतिभा परिचय, "नैन निकुञ्ज" में देखिये।

ए-मन-मथ के, समोए-सुरा-सिन्धु ही के,
जोए नहिं आजु लौं सु आँनि वर-नारी के ,
[illegible]जर-निगोए हू पै छिपत न अनङ्ग-रङ्ग,
अरुन अनोरवे घोरवे कोंए प्रान-प्यारी के ॥
—नवनीत

## कोयों की लाली

अँजन-गुन टोरत नहीं, कोयन लाल-सरँग ,
फोरन पगि डोरनि लगत, तुव पोरन कौं रँग । †
—रसलीन

## पलक

यौं वारे तिय- दृगन के, सोहत पलकन साथ ,
मनौं मदन हिय मीस रिपु, धरे लाज के हाथ ।

पलकों के प्रबल प्रताप पर एक कवि की अद्भुत उक्ति का [illegible]द भी लीजिये । यथा —

मूँक होवि सौतें सन दीरघ-दृगन देखि ,
रसिक विलोक होति विकल निहारे मैं ,

† कोयों पर और कोयों की लाली पर कविकोविदों की [illegible]ता नहीं मिली, इस कारण इस पर ही सब करना पड़ा । [illegible] किसी महाशय को इनके ऊपर और कुछ मिला हो तो भेजने [illegible] करें, जिससे "अगले-संस्करण" में सम्मिलित की जा

ता छवि के देखे तें मनोज उमहति है।

दीरघ-दृगन बीच पूतरी समीप तिल,

ताकी उपमा कौं यौं "सुजान" सो कहति है,

अमल कमल बीच अलि अलिनी सौं मिलि,

करि-करि मकरंद-पान आनँद लहति है॥

—सुजान

# कोए

कोयन सर जिन के करे, सोयन रारे ठोर,

कोयन-लोयन नाहनौं, कोयन-लोयन जोर।

—रसलीन

कोयन की करतूत कवि कोविद नवनीत जी † से सुनिये कैसा कलेजे में कसकने वाला कलाम कहते हैं। यथा —

पिय अनुराग के रँगे हैं जू उछाह भरे,

रारे मन-मानिक मजेज की तयारी के,

"नवनीत", मानों ए नुकीले-नैंन-कोरन की,

ओरन अरत सूर-समर सुधारी के।

† कविवर नवनीत जी चतुर्वेदी माथुर-समाज के क[illegible] पम रत्न अभी विराजमान हैं। आपकी परम प्रसिद्ध प्रतिभा सपही (अर्थात् रत्नाकर जी वगैरह) कायल हैं। व्रज भाषा [illegible] इन सुप्रसिद्ध शिरोमणि कविराज की कविता का संग्रह हम शीघ्र प्रकाशित करेंगे। "नैंन निहति" पर आपकी अपूर्व प्रतिभा परिचय, "नैंन निकुञ्ज" में देखिये।

मोए-मन-मथ के, समोए-सुख सिन्धु ही के,
जोए नहिं आजु लौ सु आँनि घर-नारी के,
काजर-निगोए हू पै छिपत न अनङ्ग-रङ्ग,
अरुन अनोखे चोखे कोए प्रान-प्यारी के ॥
—नवनीत

## कोयों की लाली

अँजन-गुन दौरत नहीं, कोयन लाल-सरँग,
फोरन पगि डोरनि लगत, तुव पोरन कौं रँग । †
—रसलीन

## पलक

यौं तारे तिय- दृगन के, सोहत पलकन साथ,
मनौं मदन-हिय सीस बिधु, धरे लाज के हाथ ।

पलकों के प्रबल प्रताप पर दत्त कवि की अद्भुत उक्ति का आनद भी लीजिये। यथा —

मूँक होति सौतैं सन दीरघ-दृगन देखि,
रसिक विलोक होति विकल निहारे मैं,

---

† कोयों पर और कोयों की लाली पर कविकोविदों की कविता नहीं मिली, इस कारण इस पर ही सब्र करना पड़ा। यदि किसी महाशय को इनके ऊपर और कुछ मिला हो तो भेजने की कृपा करें, जिससे "अगले सस्करण" में सम्मिलित की जा सकें।

मरत न मारे, थके गाडरु-विचारे जरी,
जन्त्र मन्त्र, विविधि-प्रकार उपचारे मैं।
"दत्त कवि" कहैं, मन धरत न धीर वनकु,
कैसें के बचैंगे इन कटाच्छ-फुसकारे मैं,
विष-धर भारे, नाग कारे,नैंन-कामिनी के,
काटि छिप जात हाइ पलक-पिटारे मैं॥

—दत्त कवि

पलक पिटारे का रूपक तो गजब का था ही, किन्तु काट कर पलक पिटारे में पुन छिप जाना एक दम गजब है।

जख्मी किया है मुझको, तेरे पलकों की अनी ने,
यह जख्म तेरा सख्तरे, भालों से कहूँगा।

—वली

कवि रघुनाथ जी की भी पलकों पर रहनुमाई का रस देखिये। यथा —

सुन्दरी के सुन्दर पुरन्दर-प्रिया तैं अति,
नाहिनैं ■ सुन्दर कहूँ यच्छ- सुकुमारी के,
काम की तराजू के अमोल-पला-कचन के,
कैधौं छेम-छाम छत्र पूतरी-सुराकारी के।
मनै "रघुनाथ" हैं मनोहर पियारे सदाँ,
कैधौं जुग-सपुट हैं रतन-अपारो के,
परखत मैन-जौंरी लगावै ना पलक नैंन,
ऐसे हैं सुरैंन-नैंन पलक पियारी के॥

—रघुनाथ

रसनिधि की रसना भी पलकों को देखकर न मानी और ली कि —

> नट-बट तेरे दृगन के, कौन सकत है पाइ।
> पल-प्यालेन में दृग-बटा, देखत धरे छिपाइ॥
>
> —रसनिधि

## बरुनी

> कारे अनियारे खरे, कट-कारे के भाव,
> झपकारे बरुनी करत, झप-झप कारे घाव।
>
> —रसलीन

विष-भरी बरुनियोंने भी कवि हृदयों को बरबस बेध डाला है, ई इन्हें सुमन धन्वा, मनसिज की सुइयाँ, बतलाते हैं, तो कोई रुणी और वारुणी में भेद नहीं बताते, जैसे कि —

> नजर परे तैं, उलहति उर आँनँद अति,
> लसत समूह सो कटाच्छन सुपेद है,
> "कालि दास" लोचन-पियाले अवलोकतिही,
> प्रीतम के अंग-अँग पसरद सेद है।
> दोऊ हितकारी से सुमोहित मुरारी-मन,
> छके ही रहति लखैं विरत-अखेद है।
> चखन में एकहि गुन भेदति मुराई-भरे,
> बरुनी में वारुनी में नाहिं कछु भेद है॥
>
> —कालिदास

भामिनी के भुराई-भरे भोलापन से युक्त चखों में तो केवल

एक भेदना (वेधना) ही गुण है, पर विषमयी बरुनी और बाढ़नी तो कुछ भेद ही नहीं क्योंकि —

देखा किया वह मस्त निगाहों से बार-बार,
जब तक कि जाम आए कई दौर हो गये। †

—दाग

सुरत कवि की सूझ भी सरस हृदयों का सहारा है। सूचित का सुन्दर सम्मिलन है। यथा

कैधौं दृग-सागर के आस-पास स्यामताई,
ताही के ए अंकुर उलहि छुवि बाढे हैं,
कैधौं, प्रेम-क्यारी-जुग ताकी ए चहुधा रची,
नील-मनि सरनि किंवारि दुरस डाढे हैं।
"सुरत सुकवि", तरुनी की बरुनी न होंहि,
मेरे मन आए ए विचार चित-गाढे हैं,
जई जे निहारैं मन तिन के पकरिबे कौं,
देखौ इन नैननि हजार हाथ काढे हैं॥

—सुरत कवि

अजी! ये व्यथित करने वाली, यामा की विष-मय नहीं हैं, ये तो, देखनेवालों के मन मजबूती से पकड़ने को नेत्रों ने हजारों हाथ काढ रखे हैं दीपावली के अनंत छकने की छबीली-छवि खति पर छिटक रही है —

† दाग महाशय की दूरन्देशी पर रसनिधि का रूपक कुछ इसी भाव पर देखिये। यथा —

ज बोजा विजया पियै, तिन पै आवत है फ़,
मन मोहन दृग—प्रमाद मैं, क्या थोरी है फ़र।

एक दूसरे कवि भी अपनी दयानतदारी का दर्शाव यों दर्साते हुए कहते हैं कि—

कैधौं मन-नाइक बनाई रस-राज-मसी,
कैधौं महा-मोहनी के मन्त्र के बरन हैं,
कैधौं नैन-चोरन के हाथ की अनूप-असि,
कैधौं स्याम अञ्जन के रङ्ग के रँगन हैं।
कैधौं ए पयोम-टूक सींवनि की सार-सूई,
कैधौं कारे-तारेन की किरन के गन हैं,
कैधौं रूप-पङ्कज के ऊपर दई पङ्क रेखें,
कैधौं नैन तरुनी की बरुनी-सघन हैं।
—कोई कवि

कहिये कितनी सरस सूक्ति है, रूप सौन्दर्य-रूपी पङ्कज की नीलता का प्रमाण एक रूपी वामा की बरुनी बरश रही है।

सुकवि मदनजी की मुजरता भी मन को मुकुलित कर रही और कह रही है कि —

छूवत मैं कोमल-सिरस कीसी पाँखुरी है,
कैधौं रिन सरी सी सरिकाति जगति छाती हैं,
निपट-अन्यारी नेकु होति न हिए ते न्यारी,
अजौ नट-साल की अनी सी इठलाती हैं।
"मदन" तिरौछी-असि काजर-करौछी अति,
अंकुर सिंगार को जड़े सी उलहाती हैं,
नैन-सैन-बीरन की पैनसी पैरी तीरसी,
तरुनी की बरुनी पै बरनी न जाती हैं॥
—मदन कवि

तरेरी और तीखे तीरों की नोक सी तरुनी की बिलकुल घरणी ही नहीं जाती। उनकी समानता का कोई है ही नहीं।

> तीय! विहारे दृगन कौ; मैं गुनाह का कौन।
> छतना सी छतियाँ करी, छेदि सघन-बरुनीन।
> —ठ

नहीं साहब! आपने तो कुछ गुनाह नहीं किया; तो छेदना ही अपना धर्म धारण कर रखा है। सींखचे में बन्द होती हुई भी मन मानिक को लूटते डर नहीं हिचकती। यथा —

> राह चलत मन लूटि हैं, करि अनेक छल-छंद,
> नैन कीन्ह चरु याहि सौं, बरुनि-सींकचन बन्द।

चिरजीवी की चपलता भी चचल चखों से चाखिये, कहिये कि है न अनूठी। यथा —

> अति-पैनी प्रताप-भरी सर-की,
> सिगरी सुख-मूल पिया हर जी की,
> उर भेघनिहारि सुनीसन की,
> दुख-दाई घनी रसिया गरजी की।
> "चिरजीवी", उभै चख लाड़ली की,
> निलसैं बरुनी उपमा लरजी की,
> दिल दोह के एकु करैं कौ मनौं,
> इहि सुइयाँ हैं मन भो दरजी की॥
> —चिर

श्रीमान् "चिरजीवी" जी इतने पर ही चुप नहीं हुए, पुन-
कहते हैं कि —

प्रेम-पट दोइ कौ सु एक की करन हरि,
सूई सुखरासि दुखहरनि पिया की हैं।
सुखद सिंगार-रस चन्द की किरन किधौं,
तोषक चकोर मन-मौज रसिया की हैं।
कहैं "चिरजीवी", पौध-पूतरी बचैबे किधौं,
रुच्यौ अलि-बाल कौए आँख सुकिया की हैं,
सुखमा सिरपि-कूट चेटिका कौ सूत किधौं,
बेहद विभूति वारी बरुनी तिया की हैं।

—चिरजीवी

एक और —

रग अवत्तो की यारि सौह सुघनी की रूँधि,
दग पै धनी की छाँह सहस फनी की हैं,
सोभा कमनी की, पख कोर करनी की, स्वच्छ,
अच्छ धुमनी की, जोति ऊपर सनी की हैं।
"वैजनाथ", ही की, प्रीत-पट जोरि नीकी,
नेह-तार सुचनी की नैन-दीपक अनी की हैं,
रूप-मोहनी की, जन जी की, हरनी की चारु,
नीकी अरी नीकी बरुनीकी वरु नीकी हैं॥

—वैजनाथ

# उपमा

## मृग

मृग कैसे दृग देखिकैं, अनमिख भौ संसार, —कवि

आँखों पर कवियों ने अनेक उपमायें उपजाई हैं। अर
उपजों से अलकृत किया है। गजब के गुब्बार उड़ाये हैं।
सूझों की सुर सरी सरसायी है। खोज की खगाधी की है।
फिर भी ललचाते ही रहे। लार टपकाते ही रहे। मालूम
कि "सर जगदीशचन्द्र बोस" महोदय को निजी, नव
आविष्कारों पर इतना आनन्द उमड़ता है कि नहीं,
नयी-नयी निरुक्तियों के निरूपण से, "कवि-कलाधरों" के आँ
का स्रोत उमड़ता है। कवि-जगत ने नेत्र-रूपी धरा धाम
थल-चर, नभ-चर, जल-चर के साथ-साथ वृक्ष, लता, पुष्प
का भी ऐसा उत्तमता से समावेश किया है कि कुछ कहत
बनता। "गिरा अनयनु, नयन बिनु बानी" वाली कहावत को
सार्थ कर दी है। कलमुहीं-कलम ही तोड़ दी है। उचितदाँ
उपज का आदीर कर दिया है।

कवि कलानिधियों ने अन्य उपमाओं से पहिले पल
में (सबसे पहिले) "मृगोपमा" को मनोनीत किया है। मृ
नयनी, कुरग-कयनी, हरिण लोचनी, आदि सुन्दर सम्बोधनों
खूब ही कामिनियों को समलकृत किया है। मृग में चपलता आ
जितने गुण हैं सब ही को ठूँस-ठूँस कर "ललना" के "लोचन
का लोल निकेत, बना डाला। कविवर "बिहारी लाल" जी
ही पहिले लीजिये, आपने जिस उत्तमता के साथ मृग-उपमा
आविर्भाव किया है, वैसा और कोई क्या करेगा। यथा—

> खेलन सिखए अलि भले, चतुर-अहेरी-मार।
> कानन-चारी नैंन-मृग, नागर-नरन-सिकार॥ †
>
> —बिहारी लाल

आप कहते हैं कि मार (कामदेव) अहेरी (शिकारी) ने कानन चारी (कानों तक फैले हुए वन में रहनेवाले) नैन मृगों को ऐसे सिखलाये हैं कि नागर (ऐसे वैसे नहीं चतुर नगर निवासी) नरों (मनुष्यों) का भी "बेधड़क" शिकार कर रहे हैं।

देखा आपने, कितने गजब की सूझ है—कितना रुचिर-रूपक है। कितना चोज है कि वाह—और श्लेष की बहार का तो कहना ही क्या है। वाह ,

> कानन-चारी नैंन मृग नागर-नरन सिकार ,

---

† भारतेन्दुजी ने बिहारी के इस दोहे पर अपनी सरस-सूझ के सहारे कुण्डलिया रचकर सोने में सुगन्ध का समावेश किया है। यथा —

> नागर-नरन सिकार, करत ए जुलम गुजारत।
> अञ्जन गुन हूँ बँधे, उड़त, झपटत, गहि लावत॥
> चीन्ह-चीन्ह "हरिचन्द्र" रसिक ए मारत सेलन।
> बधि फिर सुधि नहिं लेति भले सिखए इहि खेलन॥
>
> —भारतेन्दु

भारतेन्दुजी के साथ साथ व्यासजी की बहादुरी भी देखिये। यथा —

> नागर नरन सिकार, करत कहुँ पकरि परें ना ,
> चचलता सौं भये तऊ टरि रहति टरें ना।
> झुकि-झुकि उझकति सग लियें जनु जिय अलवेलन ,
> समर "सुकवि" सौं करत समर के सिखए खेलन॥

मृगों से मनुष्यों का शिकार कराना और वह भी गँवारों (गाँव में बसने वालों) का नहीं चतुर नागरिकों का। यही कवि की उत्कृष्ट प्रतिभा का परिचायक है।

इसी दोहे पर गुलदस्तए बिहारी कार देवीप्रसाद जी "प्रीतम" अपनी यूं दाद देते हैं। जैसे कि —

> शिकारी-हुस्न ने तेरे, दिखाई है य-उस्तादी,
> गिजाले-चश्म को जालिम दिले-दाना की सैय्यादी।
>
> —प्रीतम

रसनिधि जी की रसना भी इस रसास्वादन का मजा छोड़ सकी और कहने लगे कि —

> प्रेम-अहेरी की अरे! यह अद्भुत गति हेर,
> कीने दृग-मृग मीत के, मन-चीते पै सेर। †
>
> —रतनहजारा

---

> नागर-नरन सिकार, करत ए कानन-चारी।
> बिन-गुन भौंह-कमान, बान मारत बटपारी॥
> काजर-धार-कटार लिएँ दृग-चोरी बिप ए।
> "सुकवि" हूँ के हिय कसकत नीके रोएन सिरजए॥

कविवर रसलीन जी ने इसी भाव को यों अपनाया है। यथा

> गहि दृग मीन प्रवीन की, चितवन-वसी चार।
> भव-सागर मैं करत हैं नागर-नरन सिकार॥

† इस भाव पर बहादुरशाह जफर ने इस तरह फर्माया है। यथा

> दिऐ पुर-दाग से मेरे तुम्हारी आँख लड़ती है।
> तमाशा है कि चीतें से, लड़ाते आप आहू हैं॥

कविवर नृप शम्भु जी "नैन-मृगों" को "मुख-चन्द्रमा" के रथ में जोड़कर घबराते हुए कहते हैं कि—

लसैं धीरैं चकासी चलैं स्रुति मैं,
भृकुटी-जुवा-रूप रही छबि च्वै,
अलकावलि-डोरी कसी "नृपसम्भु",जू,
सुत-अनङ्ग दई छरी छ्वै।
तम साँवरे रङ्गहि जानति हैं,
हठि पीछे परे हैं चले जित है,
कर छालत आवत नैन किधौं,
ए सुधाकर के रथ के मृग द्वै।

—नृप शम्भु

कानों में जो कर्ण-फूल हैं, वेही पैहिये हैं, भौंहें ही जुवा हैं। अलकैं डोरी हैं, मुख रथ है, काम रथवान है, नैन-मृग जुत रहे हैं, और चौकड़ी मारते उड़े जा रहे हैं, सो कहीं ये सुधाकर-( चन्द्रमा ) के रथ में जुते हुए मृग तो नहीं हैं? कहिये कितना सुन्दर रूपक है।

श्री सूर की भी सरस सूक्ति सुनने लायक है, क्योंकि अन्धे होकर भी जो गजब के गुब्बार इनने उड़ाये हैं, यह और किसी में ताक़त नहीं है। कारण परमात्मा की परम अनुकम्पा भी तो चाहिये, कोरे कवि हुए तो क्या! सुनिये —

मेरे नैन-कुरङ्ग भए,
जोवन-बन तैं निकसि चले ए, मुरली-नाँद रए।
रूप-व्याध कुण्डल-दुति ज्वाला, किंकिनि घण्टा-घोष,
व्याकुल है इक टक ही देखति, गुरुजन तजि सन्तोष।

भौंह-कमान, नैंन-सर साधन, मारन चितवन-चारु,
ठौर रहे नहिं टरे "सूर" वे मँद-हँसनि-सर-धारु।
—सू

धन्य, सूरदास जी धन्य, आपके सरस सनेह पूरित प
रस के समझने के लिए बुद्धि और पूर्वजन्म की प्रतिभा चाहिए
यह सब कुछ है किन्तु "हरनी के नेनानि तैं प हरि नीके नैन
का कुछ मजा निराला ही है। मृगों की क्या ताकत जो इन
सामना करें। ये तो वार कर फेंकने के काबिल हैं। ऐसे कि

अति अनियारे, तारे, कजरारे, रेतु वारे,
ऐसे उजियारे, जैसे दिया वारियतु है,
रूप-रतनारे, मतवारे, प्रेम-प्यारे जी के,
कमल करारे, हारेई निहारियतु है।
घूँघट उघारे तैं निहारे नैकु "तारा", कवि,
टरत न टारे, चित्त के तौ टारियतु हैं,
धृग हैं वे दृग जोई मृग देखि रीझत हैं,
ऐसे दृग देखे मृग-छौना वारियतु है।
—तारा कवि

## तुरंग

बाजी बाजी गतिन ए, तब तैं सीखे लैंन,
गाहक-मन राजी करैं, बाजी तेरे नैंन।
—रसनिधि

कवियों ने नेत्रों की कुरंग के बाद "तुरंग" से तुलना की है
इस पर भी खूब फबतियाँ उड़ाई हैं। अच्छे अच्छे मजमून मनन

पूर्वक पकड पकड कर प्रदर्शित किये हैं। दूर-दूर की कौडी लाये । जैसे कि —

अलक अंग-अंग सुन्दरता-जीन तापैं,
साज रार-पाखर सुआप हाथ साजी हैं,
लाज है लगाम, चितवन ही चारु चाल मानौं,
भृकुटी-कुटिल तापैं कँलगी छाजी हैं।
पूतरी-सवार सुभ लिए, चाह-चाबुक कौ,
देरि कैं कटाच्छ-सुरी भए लाल राजी हैं,
नाचैं सुरस-कंचन की थारी मैं सुभारी अति,
सुप्यारी के दोऊ दृग "मैंन-भूप-बाजी हैं"। ×

---

× और-और कवियों ने भी इस "मैंन-भूप-बाजी हैं, समस्या अपनाया है। यथा —

सुरग दुगाम सोहैं, सुरमई लगाम तापै,
जारी भार नीरम रची तैं जान राजी हैं,
"बनी द्विज", बरुनी सुरारिका बनी है खूब,
उजार अभूत कोए जीन-पोस साजी हैं।
चपल-चपल-चाह हरति चितौन-चित्त,
करति कटाच्छ बीर जैसे मर्द गाजी हैं,
तातैं मन यही अनुमान मैं बखानति हौं,
तेरे नैंन, ऐंन-मैंन, "मैंन भूप-बाजी हैं।"
—बेनीद्विज

+

जाल मैं आनिकैं फँसे हैं खजरीट किधौं,
कैधौं ए सरोजन की कलिका बिराजी हैं,

कहिये, कितना सुरस मय नेत्रों पर घोडे का रूपक रचा है यही कविकी प्रतिभा है। धन्य, कवि औ चरणों धन्य!

कैधौं हैं चकोर कैधौं मोर मतवारे किधौं,
बारि मैं निहारे कोऊ झान्यी मीन ताजी है।
"श्रीनिधि," भनत कैधौं छौना हरिनी के बेस,
कैधौं इन्हें देखिकैं गयद-गति लाजी है,
कैधौं जहरीले-कारे-नाग छिति मंडल के,
नैन राधिका के किधौं "नैन भूप-बाजी है।" ॥

× × ×

जीन-हग अचल कसे तें रहैं चंचल है,
अचल सुथान पै रहत नित राजी हैं,
भाल बरुनी के, बरनी के सुख देत भलैं,
कोर स्तुति ऊँचेह निहारैं दुति साजी है।
अजन के चाबुक सौं चाबुक सदाँ ही रहैं,
कुटिल कटाच्छ खुद पौन 'गति लाजी है,
रंग सित असित सुरंग सुखकारी भारी,
प्यारी तेरे नैन किधौं "नैन भूप-बाजी है।"—काई भी

×

हेरि कैं अनन्ना कमल मद ही मैं ढुरे,
औरि मै भीत बन ही की मग साजी हैं,
गगन निहारि निज खजन अदीठ होति,
पीठ दै सकुचि मीन-पौन बन राजी है।
भारे कजरार वृजराज ही कौ प्यारे जिन्हैं,
उपमा निहारि पुहुमी की सब लाजी है,
दैन-चैन, पैन की करति गति मैन मौर,
प्यारी तेरे नैन किधौं "नैन भूप-बाजी है।"—कोई

मौन कवि की भी वाचालता देखने लायक है, नेत्र और तुरंग की तुलना आपने कैसी उत्तमता से निवाही है कि कुछ कहा नहीं जाता। जैसे कि —

बार-बार कोयन कनौती बदलत थर,
बिमल बिसाल-भाल छिति पर फेरे हैं।
चूकत न चौंप भरे चौकरी चलाइबे मैं,
चतुर चलाक चित्त चातुर के चेरे हैं।
"मौन कवि" कहैं, बाग मोहन के ठाँसे नैकु,
नाँचति नटा से नट निविर निवेरे हैं,
मैन आतुरी से उड़यौ चाहैं चातुरी मे वीर!
करत खुदी से ए तुरी से नैन तेरे हैं।
—मौन कवि

कटाक्ष रूपी कनौती बदल-बदल कर, चञ्चलता की चौकड़ी भरे और भौंह रूपी कड़ी-लगाम से दब कर, काम की आतुरता से उड़ना चाहते हुए भी भाल की भूमि पर नैन-तुरंग खूँद सी कर रहे हैं।

मौन कवि की वाचालता तो देखी किन्तु इसी भाव पर विहारी लाल की बहादुरी भी देखने लायक है, यथा —

करे चाहसौं चुटकि कैं, खरे उड़ौहैं मैन।
लाजे नवाए तरफरत, करत खूँद सी नैन। ×
—विहारी

---

× देखिये इस दोहे पर "भारतेन्दु जी" क्या कहते हैं।
करत खूँदसी नैन, मैंह गुरु-जन की तोरत।
रोक-टोक नहि गनत, उतैहीं हरि मुख जोरत॥

## आँसू और कविगण

कामरूपी सवार के प्रेम का चाबुक खाकर, ऊँचे उठते लाज की बाग से तनकर, नैन तुरंग तड़फड़ा कर रहे हैं, अर्थात् नाच से रहे हैं।

> लगा है इश्क का कोड़ा, उठाकर सर को चलते हैं।
> इमाने शर्म से रोके, सिमिटते हैं, उछलते हैं॥
> —प्रियतम

---

> मन सहीस, "हरिचन्द" बुद्ध बागहि के पकरे।
> खरे बिनस मे रहत, न लाज लगामन अकरे॥

×

व्यास जी की बानगी भी देखिये —

> करत कूँद सी नैन, दोऊ, मनमथ के घोरे,
> लाज सईस न रोकि सकत ऐसे मुँह जोरे।
> पुलक-बुन्द के फेन गिरावति भरि उमाह सौं,
> उझन सकत न तऊ सुकवि बल करे थाह सौं॥

किसी और कवि ने भी बिहारी के इस भाव को अपनाया है। यथा —

> नैन नवनागरि के तन्मे तुरग अंग,
> छवि की तरंग इहि रंगम धरैं धरैं,
> मदन प्रवीन तिन्हैं फेरिबो सधावत हैं,
> घूँघट की ओट ऐसे- कौतुक करैं-करैं।
> कीन्हें चाह चाबुकी सौं चूकि कै चपल तीखे,
> पइ हैं उड़ौंहि ते उमग सौं भरैं-भरैं,
> लाज-बाग-बस सरफरत साई करैं,
> करत कुँदीसी पग भरत हरैं हरैं॥
> —कोई कवि

देखिये कविवर बिहारीलाल, पुनः तुरग पर कैसी उत्तम सूक्ति सूझते हैं कि दिल बाग बाग हो जाय। यथा —

लाज लगाम न मानहीं, नैना मो बस नाहिं।
ये मुँहजोर तुरङ्ग लौं, ऐंचत हू चल जाहिं॥ †
—बिहारी

अजी! लाज-लगाम को खींचनाही फिजूल है, भला, ये मुँहजोर-जबर्दस्त—नेत्र-रूपी घोड़े किसके बस के हैं! जाने भी दीजिये, देखिये कहाँ जाते हैं।

---

† इस दोहे पर व्यास जी की बहार भी देखिये। यथा —

ऐंचत हू चल जाहिं, चाह-चाबुक सटकाए,
मानहुँ मदन-सवार, ऐंड़ दै "सुकवि" उड़ाए।
अँसुआ फेन गिराइ रहे, काँपैं थर-थर तन,
घूँघट-टाटी लाँघत मानत लाज-लगाम न।

×

बिहारीलाल जी के इस भाव को कोई कवि कितनी उत्तमता से अपनाता है। यथा —

कानन-कुटुम्बी घने कटक "बवाई" लोग,
भारे नँदवारे दुख-सुख चहुँ ओर सों,
"रसिक बिहारी" अति अगम सनेह पथ,
सुगम न जाइबो निबाह तेही छोर सों।
मेरो बस नाहिं गहे फेर ना रहाहीं नैकु,
रुकति न रोकैं करौं जतन करोर सों,
नैना नहीं मानत हैं लाज की लगाम रंच,
ऐंचे चले जात हैं "तुरंग मुँह जोर सों"।
—रसिक

बिहारीलाल जी के इस भाव को विक्रम जी ने भ
प्रकार व्यक्त किया है। यथा —

चपल-चलाकिन सौं चलत, गनत न लाज-लगाम,
रोकै नहिं क्यौंहू रुकत, दृग-तुरङ्ग गति-वाम।
—विक्रम-सतसई

ये टेढ़ी चाल वाले (जबरदस्त) नेत्र तुरंग किसी प्रकार
नहीं रुकते और लाज लगाम को जरा भी नहीं गिनते।

सवार खाक हूँ, बेअख्तियार बैठा हूँ,
—कोई शायर

प्रियतम जी बिहारी के उक्त दोहे का यों तर्जुमा
इस तरह "दाद" देते हैं। यथा —

लगामे-शर्म ये मानें नहीं, दादे हैं बे काबू,
समन्दे बदइनाँ माँ उफ, ? तडफ जाते हैं ये बदखूँ।
—प्रियतम

सुकवि मतिराम जी भी कुछ कुछ बिहारी लाल के ...
भाव को यों अपनाते हुए कहते हैं। यथा —

मानति लाज-लगाम नहिं, नैंकु न गहति मरोर,
होति लाल लखि नाल के ? "दृग-तुरङ्ग मुँह जोर"।
—मतिराम

कविवर ग्वाल जी को भी "तुरंग" तुलना ने तडफड़ा दिया,
आप कहने लगे कि —

सोहत, सजीले सित असित सुरङ्ग रङ्ग,
जीन सुचि अजन अनूप रुचि हेरे हैं,

सील-भरे लसत असील-गुन माल दैकै,
लाज की लगाम, काम कारीगर फेरे हैं।
घूँघट-फरस सार्वे फिरति फबन फूले,
"ग्वाल कवि", लोक अविलोक भए घेरे हैं,
मोर वारे मन के, त्यों पन के मरोर वारे,
त्यौर वारे तरुनी तुरङ्ग दृग तेरे हैं।
—ग्वाल कवि

गुनन-गरुले गग कवि की भी तुरग तुलना अवश्य देखिये और सराहिये। यथा —

दीरघ दरारे, आछे डोरे रतनारे लगे,
कारे तहाँ तारे अति भारे जे सुरङ्ग हैं,
कहैं "कवि गग", जनु दूध ही के धोए पुनि,
कीए निकमत सित असित दुरङ्ग हैं।
पारद-सरस-चीर, थिर मैं थिरक जात,
तिरछे-चलत मानौं कूदत कुरङ्ग हैं,
रौंचे ना रहति अनुराग हूँ की बागदर,
भामिनी के नैन किधौं मैन के तुरङ्ग हैं। †
—गग

† कवियर गग के इस भाव को "श्रीपत जी" की सरल रसना ने भी सरसाया है। और खूब सरसाया है। यथा —

परई-अमोल सार्वे बरनी-सवा सी लसत,
लाज-धारी कोरैं पग परम सुरग हैं,
"श्रीपति" सुकवि, ठौने पाखरवने हैं कौने,
रविपवि विधना सँवारे सब अंग है।

कवि लच्छीराम जी की भी ललना के-लोचन-तुरग-
ललित-रचनावली का रसास्वादन कर लीजिये। यथा—

सुन्दर-सुरङ्ग-स्याम, करन , निसद बूँदे,
कानन की छोरलौं अटेरनि भिरत हैं,
रुकत सँकोच तरफरत मजीले-मौज,
सराबोर स्वेद प्रेम चाबुकै छिरत हैं।
बाग-पलकन के मरोरे "लछिराम" कोरे,
पी-मन कबूतर कुरंग त्यौं घिरत हैं,
चपल-तिरीछे प्यारी लोचन-रिसालर मनौं,
मार-चरछैत के बछेरे ये फिरत हैं।
—लच्छीराम

## मतंग अर्थात हाथी

रेंचे अंकुस-लाज के, रूप-पलक कर हैन,
धीरज-द्रुम तोरत फिरैं, गज कोमल तुव नैन। †
—रसनिधि

---

जापै चढ़ि रूप के सुभट प्रेम राज काज,
बिरह गनीमन सौं जीत लेति जग हैं,
दिन-रैन पिय मन-बीथिका में नाँचति हैं,
भामिनी के नैन किधौं मैन के तुरग हैं। —[illegible]

† रसनिधिजी ने दृग-मतंग पर और भी कई दोहे कहे हैं। यथा—

नेही-दृग तन क्यों सकैं इनकी झाँकैं ओट,
मत-वारे दृग-बान कहूँ, प्रेमैं दीजतु चोट।

कुरग ( मृग ) और तुरग के बाद मतग (हाथी) लोचनों का भी मजा मनन कीजिये। देखिये, सुकवि आलम इस पर कैसी अनोखी उपज उपजाते हैं। यथा —

झूमैं झुकै उमकै फिर झूमि, महा-मद-मॉते खरेई रहैं,
टारे टरै न मदान्ध भए फिर, ठौर अरेई रहैं।
कुजर से दृग तेरे भट्ट !, गुन के गुन-माल गरेई रहैं,
खून करै सब "आलम" को, फिर लाज के आँदू परेई रहैं।

—आलम

आलम-दुनियाँ-का खून कर के भी लाज की बेडियों के वस पड रहते हैं। वाहजी ! आलम सुकवि ! कमाल कर दिया, और फिर "आलम" को श्लेष में रग कर तो और ही अनोखा-जादू भर दिया है।

आलम कवि के इस भाव को रसनिधि जी यों अपनाते हुए कहते हैं कि —

अजन आँदू सों भरे, जद्यपि तुव गज-नैन,
तदपि चलावत रहत हैं, झुकि-झुकि चोटैं सैन।

—रसनिधि

❀ ❀ ❀ ❀

नैन-महावत दृग गजन हूलसत वाही ओर,
रावन में हगि देत हैं, हियहीं कौं चित-चोर।

❀ ❀ ❀ ❀

जब छूटत भए थान तैं, मतवारे गज-नैन,
नेहिन-दए कौं चलत हैं, देकर ठोकर सैन।

❀ ❀ ❀ ❀

छूटे दृग-गज मीत के, दिच यह प्रेम-बजार,
दीजो नैन-दुकान के, महकम-पलक-किवार।

आलम की अनोखी उपज के साथ, देवजी भी लोचनमतंग पर मचल पड़े और कहने लगे कि —

> लाज के निगाड़-गड़दार, अड़दार, चहूँ,
> चौंकि चितवन चरखीन चमकारे हैं,
> बरुनी अरुन-लीक पलक-झलक-मूल,
> झूमत सघन-घन घूँमत घुमारे हैं।
> रंजित-रजोगुन सिंगार-पुंज कुंजरत,
> अंजन सौं सोहत मन-मोहक वतारे हैं,
> "देव" दुख-मोचन सकोचन सकति चलि,
> लोचन अचल ए मतंग-मतवारे हैं॥ —देव

लोचन मतंग पर श्रीपतिजी की सिफारिश भी सुन लीजिये यथा —

> झूमत झुकत उझकत फेरि झूमति हैं,
> झूम-झूम उठै अति काजर तै कारे हैं,
> ऐंड़ायल, ऐंडदार, ऐंडति, अडति अति,
> अगड परे तै नैकु टरति न टारे हैं।
> गह-गहे गुननि गहीले गरबीले महा,
> "श्रीपति सुजान" मैंन परम सुखारे हैं,
> जग-प्रान-प्यारे, सब भाँतनि सुधारे,
> प्यारे, लोचन तिहारे किधौं गज-मतवारे हैं॥ —श्रीपति

मान कवि की भी मतंग पर मनोहर-उक्ति मनन करने योग्य है। यथा —

भारे-कजरारे, दोऊ काजर सौं कारे,
लाल सैंदुर सौं चींते डोरे राजत सुपथ के,
"मानकवि" कहत, पाँइ नरुनी-जजीर-डारि,
करत कटाच्छ गति डोल झूल नथ के।
पूतरी-महावत विराजै आडि नासिका पै,
पीतम के प्यारे हैं लिवैया जग-नाथ के,
मौंहन पै मौंहन हैं सोहैं तीरे लरिवे कौं,
नैंना तेरे दोऊ जैसे हाथी मन-मथ के ॥
—मान कवि

मद-मोकल जन खुलत हैं, तेरे दृग-गजराज,
आइ तमासो जुरत है, नेही-नैन-समाज।
—कोई कवि

## मीन

नैंनै-निकाई निरखि, नीर मँह मरन दुरि जाती,
—कोइ आ० क०

थलचरों के बाद जल-चरों का नम्बर आता है। जल-चरों में कवियों को नेत्र निरूपण पर मीन की समानता सुन्दर जँची। कारण, मीन की चञ्चलता नामी है। बस यही चञ्चलता कवि-हृदयों में गड़ गयी। फिर क्या था कहने लगे कि —

चमन्चमात-चचल नयन, बिच घूँघट पट झीन।
मानौं सुर-सरिता त्रिमल, जल उछरत जुग-मीन। †
—बिहारी

† बिहारी की इस सरस सूक्ति पर भारतेन्दुजी यों जड़ाव-जड़ते हैं। यथा —

झीनि ( महीन ) पट ( वस्त्र ) के घूँघट में चञ्चल-नयन चम चमा रहे हैं अर्थात् चमक रहे हैं, मानों सुर-स

विमल-जल में दो मीन ( मछलियाँ ) उछल रही हों।

वाह ! कितनी उत्तम-उत्प्रेक्षा है। कैसी अनुपम है। कवि ने क्या सहज सलोनी-सूझ में—सूक्ति को सरसाया है। धन्य बिहारी लाल, धन्य !

बिहारी लाल के इस भाव को एक कवि, यों अपनी प्रतिभा से रँगकर, रखते हैं। यथा —

अति अनियारे, अरुनारे, कजरारे मञ्जु,
कज, अलि, खञ्जन लजात हिय हीन हैं,
इनकी अनूप रीति रसिक-सुजान जानैं,
"रसिक-बिहारी", सुखदाइक प्रवीन हैं।
चञ्चल चपल चारु चलत चमाके नैंन,
बीच-पट घूँघट के सारी सेत झीन हैं,
मानौं सुर-सरिता विमल-जल आनन्द सौं,
उछरत आइ फेरि-फेरि जुग-मीन हैं।
—रसिकबिहारी

जल उछराति जुग मीन, रूप धारा हलधारे,
झलकति मुख तिमि निरखि, न पिय मन रहति ठिकाने।
सेत-बसन "हरिचन्द" धहिय तन उपमा केहि सम,
प्रगटति बाहर प्रभा धार सुख, चमकति चम-चम।

श्यामजी की कारीगरी भी देखिये। यथा —

जल उछरत जुग-मीन, मनहुँ नहिं ऊपर आवत,
पलक परैं जनु डूब-डूब निज देह छिपावत।
सुखि कबहुँ थिर रहति कबहुँ चञ्चलता नहिं कम,
पर फरात यह ओट एसैं चमकीले चम-चम।

बूढ़े बाबा-तुलसीदासजी की भी मीन-उपमा तबीयत को फड़फड़ाये देती है। देखिये न, क्या सरस-सूझ के साथ सूक्ति सृजन करते हैं कि —

> प्रभुहिं चितै पुनि चितै महि, राजति लोचन-लोल ,
> खेलति मनसिज-मीन-जुग, जनु विधि-मंडल-डोल ।
>
> —तुलसीदास

स्वयम्वर की रंग भूमि पर श्री सीता माता खड़ी हैं, एक तरफ मञ्च पर लक्ष्मण सहित श्रीराम विराजमान हैं, अस्तु सीताजी बार बार प्रभु की तरफ देखकर पुन लज्जा से भूमि की ओर देखने लगती हैं। उस समय आप के चञ्चल नयन ऐसे दीखे, मानों काम की दो मछलियाँ चन्द्र-मण्डल पर हिंडोला झूल रही हों।

कहिये कैसी अनोखी उक्ति है। समझिये, अनुमान कीजिये, और मज़ा लीजिये।

> वो उसकी शर्म आलूदह, निगाहों में यह शोखी है ,
> इसे देखा, उसे देखा, जिसे देखा उसे मारा ।
>
> —दाग

मीन की समता पर सब ने सब कुछ कहा, किन्तु बिना आँख वाले कवि कुल शिरोमणि श्रीसूर ने जैसी "मीनोपमा" निबाही वैसी क्या कोई निबाहेगा। सब उपमायें रद्द कर दीं, केवल मीनता ही आपको जँची। यथा —

> उपमा नैननि एकु रही ,
> कवि जन कहति कहति सब थाके, सुधि कर नाहिं कही।
> कहुँ चकोर बिधु मुख बिनु जीवति, भँवर नहीं उड़ि जात ,

हरि-मुख-कमल-कोस बिछुरे तैं, इत उत कत मँडरात।
ऊधो-वधिक व्याधि ह्वै आए, मृग-सम क्यौं न पलात,
भाजि जाँहि वन-सघन-स्याम पै, जहाँ न कोऊ घात।
खंजन मन-रंजन न होंहि ए, कबहूँ नहिं अकुलात।
पख पसारि न छिन चपला-गति, हरि समीप मकुलात।
कमल न होहि कौन विधि कहिए, झूठै ही तन आड़त,
'सूरदास' मीनता कछू इकु, जल-भरि कबहुँ न छाँड़त।

—श्री सूर

नैनों की उपमा केवल एक ही रही, कविजन कहते-कहते थक गये पर किसी ने भी सुधि करके नहीं कही। देखिये न, ये "चख" चकोर कैसे हो सकते हैं, क्योंकि ये मुख चन्द्र से बिछुड़ कर भी जीवित रहते हैं, और भँवर भी नहीं जान पड़ते, क्योंकि, कृष्ण-कमल मुख से बिछुड़ कर भी इधर-उधर कहाँ फिरते हैं। मृग भी ये नहीं हैं क्योंकि हत्यारे उद्धव व्याध को आया देखकर भी श्याम सघन वनमें क्यों नहीं भाग गये और ये खंजन भी नहीं हैं, क्योंकि न तो ये कभी अकुलाते हैं, और न बिजली के समान क्षण में पंख पसार कर हरि के समीप ही उड़ कर जाते हैं। ये कमल भी नहीं हैं क्योंकि ये तो व्यर्थ ही शरीर में आड़ (डफ) की तरह गड़ रहे हैं। लेकिन हाँ, मीन (मछली) की समानता इन में कुछ-कुछ जरूर है, क्योंकि ये अश्रु-जल से विलग अलग कभी नहीं होते। सदा उसमें ही बसा करते हैं।

कहिये, वियोग वह्नि से विकल विरहिणी ब्रजांगना की, कैसी मार्मिक उद्गारपूर्ण हार्दिक अनुपम उक्ति है, जोकि कलेजे को मसलने के लिये काफी है,। अश्रु पूरित नेत्रों पर मीन की उपमा भी सूरने कैसी फबायी है कि वाह!

और भी मेरे लिये आफत का सामाँ होगई
हाय वह मस्तमूर-आँखें जब पशेमाँ होगई।

—जिगर

अजी महाराज ! यह तो सब कुछ है, पर इन चचल-चखों की चपलता को देख कर तो बडे-बडे मच्छ भी पूछ पटक पटक कर इनकी समता पाने का असफल प्रयास करते हैं, किन्तु विधि की विडम्बना से लाचार हैं। देखिये न –

डारी-अनियारी तुरी तीर के तुनीर परे,
मृग-धुग मान वन, वन भटकत हैं,
भ्रम-भ्रम भ्रमुल के कञ्ज तेऊ नायौ सीस,
लज्जित चकोर ह्वै अनल गटकत हैं।
सौतिन कै सूल, फूल लाल दिए "हनुमान",
नित्त खञ्जरीटन-करेजे खटकत हैं,
तेरे अच्छ स्वच्छ लच्छ निज घच्छ तुच्छ,
कच्छ अच्छ अच्छ मच्छ महि पुच्छ पटकत हैं। †

—हनूमान

† कवि हनूमान की इस मनोहर-भूमि पर "बेनी द्विज" की तबीयत भी मचल पडी। अस्तु आप कहने लगे कि –

अजन बिना ही मद-गजन हैं खजन के,
पकज पराजै मानि पक सटकत हैं,
दीन भए भँवर मलीन से भ्रमोई करैं,
चकित चकोर ह्वै अँगार गटकत हैं,
खूबी कौन-कौनसी बखान करैं "बेनी द्विज",
हार मान हरिन अरन्य भटकत हैं,

# कमल

मौंचे कमल से नैना, निमि दिन फूल,
निना ताल के तौने, सुतिहिं दुकूल।

—रसराज कवि

कज-मुखी कामिनी के कमलाक्षों की कल्पना पर भी कविगण कमल का कीर्त्तन करते हैं। यथा –

बन्धु-विधु कोर में चकोर कौंसों जोरा बैठ्यो,
कैधौं मृग, मीन बाल हित कै पढाए हैं,
कैधों मैन राज के जुगल-मीन जग जुरे,
खञ्जरीट रासि मानौं पिंजरा पढाए हैं।
मिलति जियाइने कौं बिछुरति मारिबे कौं,
बानिक पियूष बिष बोरि कै कढाए हैं,
कैधौं निधि पूरन-मयङ्क-मुख पूजा करि,
अलिन सहित मानौं नलिन चढाए हैं।

—कोई कवि

उस कामिनी के कमलाक्ष क्या हैं, मानों विधि ने—उसकी सुन्दरता से स्तम्भित हो—पूर्ण-मयङ्क-मुख की पूजा हित अलिन भौंरा रूपी पुतली के साथ नलिन-कमल चढ़ाये हैं। कहिये कितनी मनोहारिणी, मनन-योग्य उक्ति है। कैसी कलेजे में खटकने वाली कल्पना है।

रघुनाथ कवि की रहनुमाई कुछ और ही रस का आविर्भाव करती हुई कहती है कि —

एरि-राचि वच्छ तरे तुच्छ जान अपने कौं,
जच्छ अच्छ मच्छ महि पुच्छ पटक्त है।

ापने हाथन सौं करतार, करे अति ही जग-बीच उजारे,
ात ही रहिए "रघुनाथ", जुदे नहिं कीजै लगै अति प्यारे।
ौरभ सौं परि पूरन पुष्ट, पवित्र भरे रस आँनद वारे,
ारि बिना उपजे अति सुन्दर, प्यारी के लोचन वारिज न्यारे।†

—रघुनाथ

यद्यपि वारि-जल बिना वारिजों-कमलों की अति आश्चर्य से लकृत उत्पत्ति रघुनाथ कवि ने उपजायी, पर दिल न भग अस्तु ुन बोले कि —

रस-भरे, जस-भरे, कहै "कवि रघुनाथ",
रंग-भरे, रूप-भरे, खरे-अग कल के,
कमला निवास परि पूरन सुवास आस,
भाँवते के चञ्चरीक लोचन चपल के।
जग-मग करत भरत द्युति दीह पोरे,
जोबन-दिनेस के सुदेस भुजबल के,
गाहबे के जोग भए ऐसे हैं अमल फूले,
तेरे नैन-कमल अमल बिनु जल के।

—रघुनाथ

† शृगार-सतसईकार कवि रामसहायजी ने भी कमलाक्षों पर दो दोहे अपूर्व कहे हैं। यथा

बानन-बारी बचर हैं, कजरारे-छवि ऐंन,
ताते अमल कमल सुखी, कमल सही ए नैंन।
कौन कहै बलि अमल से, छवित अमल से हैन,
ए न रानरे! कमल से, चकित कमल से नैन। —रामसहाय

घासीरामजी की घिस घिस भी कमलाक्षों को घसी ‹ और कमल के अन्य नामों से तुलना करती हुई बोली कि –

पुडरीक, पकज, औ पुस्कर पद्म-सत,
पत्रसत, सीरुह नलिन नीरवारी के,
ताम-रस, अबुज, अभोज औ सरोजपत्र,
सारस सु अवरुह, मदजुत चारी के।
"घासीराम" इन्दीवर, नीरज, जलज, बिंन,
कुनलै, कुजिन्द, रमरन्दड हितकारी के,
कोकनद, कमल, अमल, अरविन्द-चर,
कज से लसति मजु एरी । दृग प्यारी के।
—घासीराम

लेकिन मुबारकजी कहते हैं कि कमलाक्षों की तुलना । उपमानों से कुछ-कुछ उपयुक्त है, पर इनकी सामर्थ्य कहाँ सुन्दरी के नेत्रों की समानता का प्रबल प्रयास करें। क्या उनकी सुन्दरता की जरा भी हमशरी कर सकते हैं। नहीं। देखिये न —

ताम-रस, इन्दीवर, वारिज, सरोज, मजु,
पुडरीक, पकज, कुसैसे सतपात हैं,
कोकनद, नीरज, नलिन, कज, कुवलय,
पाथिज, अरविंद, श्री मदन सुहात हैं।
अम्बुरुह, अबुज, सनेही-भौर, पकरुह,
पक्ज, जलज, वारि-जात सरसात हैं,
एते नाम नीरजहूँ "मुबारक" निहारे नैंन,
पद्-पन्न महर वारि जात जलजात हैं।
—मुबारक

मुबारक-महोदय की हाँ में हॉ मिलाते हुए शम्भुराजजी कहते के कामिनी के नेत्रों की उपमा कमलों से हो ही नहीं सकती, ा यह मधुराई इन नीरसों में कहाँ। यद्यपि ये उन नेत्रों की ानता पाने का बड़ा प्रयास करते हैं, पर उन डहडहे लोचनों देखकर कमल मुँद-मुँद जाते हैं। यथा —

मीन ह्वै अधीन जाइ जल मैं छिपाने, मृग,
बनन पराने त्रिन टोतन चबाति हैं,
"समुराज" भारे निन काजर के कारे देखि,
खजन नचति ना कँपति हाहा खाति है।
भौरै हूँ जु प्यारी कहूँ अजन सजति मार,
बौन हूँ लजित ह्वै के नीरन समाति हैं,
केहूँ विधि दृगन सकत नहिं तूल यातै,
फुल-फूल कज-पुरज मुदि-मुँदि जाति हैं।

—शम्भुराज

कामिनी के कमलाक्षों पर किसी संस्कृत कवि ने भी क्या ही अनूठी उपज उपजायी है। यथा –

नयन तव देवि। वर्णरीते, विपरीतेपि विपर्यय न एते,
कमलन्तु तमेति कञ्जगेहे कथमाहु समिताङ्कविन्द्रा।

—कश्चित्कवि

हे देवि! तेरे नयन× विपरीत वर्ण रीति से भी विपर्यय को

---

× नयन, शब्द की व्युत्पत्ति पर रसनिधि जी ने अपने रतन हजारा में दो दोहे बहुत ही उत्तम कहे हैं। यथा –

"आपु रुगत बेचात मनहिं, "रसनिधि, "कर बिनु दाम,
नैननि में नय नाहिनै, यातैं नयना नाम।

प्राप्त नहीं होते, अर्थात् "नयन" ही रहते हैं, फिर न कवि गण क्यों कमल और कंज के समान नयनों को हैं। अर्थात् नयन शब्द को उल्टा पढ़ने पर भी 'नयन' हो जायगा, विकृत न होगा, और कमल-कंज आदि उल्टे पढ़े कमल कंज आदि न पढ़े जाँयगे, अर्थात् विपर्यय को जाँयगे, उनका स्वरूप बिगड़ जायगा।

कवि कुल गुरु कालिदासजी भी कमलाक्षों पर क्या विचित्र उक्ति कहते हैं। यथा —

> कुसुमे कुसुमोत्पत्तिः श्रूयते न च दृश्यते,
> बाले! तव मुखाम्भोजे, कथमिन्दीवर-द्वयं।
>
> —शृङ्गारतिलक

अर्थात् फूल में फूल की उत्पत्ति सुनी तो जाती है, किन्तु देखी नहीं गयी। किन्तु हे बाले! तेरे मुख कमल पर नेत्र-रूपी सुन्दर नील कमल किधर से पैदा हो गये।

धन्य, कालिदास जी धन्य! यह आपकी ही परम पुनीत प्रताप है कि ललना के मुख-रूपी कमल पर नेत्र-नील-कमल की क्या उत्तम-उपज उपजायी है।

> रूप-सरोवर माँहि ए, फूले नैन-सरोज।
> ता हित अलि-नेही इहाँ, आवति दौरे रोज॥
>
> —रसनिधि

---

×

> छीनी छवि मृग, मीन की, कही कहाँ की रीति।
> नाम द्वै में नहिं नीत सौ, करै "नयन" का नीति॥

# खजन

चचल नैंनि चहूँ दिसि चितवति, जुग खजन अनुहारि।
मनहुँ परस्पर करति लराई, कीर वचाई रारि॥
—श्री सूर

कामिनी के कमलाक्षों की कारीगरी कवि-जगत द्वारा निरख नभ चरों में पहिले खजन और आँख की खूबियाँ भी खयाल जैये। यथा –

खजन-नैंन रूप-रस-माते,
ातिसै चारु चपल-अनियारे, पल-पिंजरा न समाते।
लि-चलि जाति निकट स्रवनन के, उलट-पुलट ताटक फदाते,
'सूरदास", अजन-गुन अटके, नतरु अबहि उडि जाते।
—श्री सूर

कहिये कितनी सरस सूक्ति है। कितनी उच्च-उत्प्रेक्षा है। तनी पवित्र प्रणय परीक्षा है। अजन की अनोखी रस्सी कवि-सार में कितनी मजबूत होती है कि क्या कहा जाय! भला जन उडकर जायँगे ही कहाँ, क्योकि एक तो अजन की रसीली सी से अटक रहे हैं, और दूसरे रूप-रस दाना भी यहीं पडा फिर क्या ताकत जो कहीं चले जाँय।

कविवर रघुनाथ जी भी आँख और खजन पर खूबही नैयाँ खचित कर-कर कहते हैं कि –

ई हौं देखि सराहे न जाति, सो या निधि घूँघट मे थिरके हैं।
तौ ये जानी मिले दोऊ पीछे है, कान्ह लखै उनकौं हरके हैं॥
ान तै रुचितै "रघुनाथ", वे चारु चितै चित ताक तके हैं।
ञ्जनवारे, किधौं दृग-प्यारी के, खञ्जन प्यारे बिना पर के हैं॥
—रघुनाथ

## आँख और कविगण

अञ्जन से अलकृत आँखें उस प्यारी की ऐसी अनोखा होती थी, मानों बिना परवाले दो प्रिय-खजन खचित हों।

रघुनाथ जी के साथ सुकवि श्रीनिधि जी की भी सरस सराहने लायक है। आप कहते हैं कि –

श्रीनिधि अति छवि देहिं, अँखियाँ यौं अलकन तरैं,
खञ्जरीट गहि लैहिं, मदन-वधिक जनु जाल तै।

—श्रीनिधि

अर्थात् काली-काली कुटिल अलकावली के तरे-नीचे ऐसी छवि शोभा दे रही हैं, मानों मदन-कामराज-वधिक अल्कावलि-रूपी जाल द्वारा दो खजन पकड रक्खे हों।

एक दूसरे कवि की भी खजन पर अजूबी उपज का मु जा फर्माइये। यथा –

कैधौं बिधि चातक सिंगार-रस बोरे वीर,
कैधों स्याम सारस की स्यामता सु छोरी है,
कैधौं री मलिन्दन कौं मान बरजोरी लखु,
भोरी मति भोरी भई मृग-सुख थोरी है।
स्याम-रग चोरी करि लोचन निगोरी किधों,
किधौं दृग आँजि वह कीरत किसोरी है,
पद्मन चटोरि बसे पीवन सुधा कों किधों,
अङ्क में मयङ्क के सुखञ्जन की जोरी है।

—कोई कवि

अर्थात् ये आँख नहीं हैं, किन्तु सुधा के पीने की चाह ...ने वाले पलों को बटोरे मयक (चन्द्रमा) के अङ्क (गोद) में ...ञ्जन की जोडी सुशोभित है। और कुछ न समझना।

बरशीजी की बहादुरी का भी सिलसिला देखिये, और देखिये
न और आँख की तुलना का तिलस्माती वर्णन। यथा —

हसति दिपति देहि दामिनि सी, चमकत चचल नैन,
घूँघट-बिच खञ्जन से खेलति, उडि-उडि दीठ लगै न।

—बरशीजी

यह सब कुछ है, पर अरुण-कोयों से कलित चञ्चल चखों पर
लीनजी ने खञ्जन की समता कैसी सुन्दर सजाई है कि वाह!
ा —

राते-डोरन तै लसत, चख-चचल इहि भाइ।
मनु बिनि-पूनो अरुन मैं, खञ्जन × बाँधे आइ।

—रसलीन

अर्थात् लाल लाल डोरों से रञ्जित चख-चञ्चल इस प्रकार

---

† रसनिधिजी ने खञ्जन और आँख पर अपनी सूझ यों
डायी है। यथा —

बरजे बुध-बल ना रहैं, खञ्जन नैन भुलाइ,
अटके तिल-मुनि-लालचन, जुलफ-फँदा मैं जाइ।
दृग-खञ्जन औचक फँसे, बीच जुलुफ के आट,
भावै इनकौं करि जिये, भावै इन कौ पाट।
रकत न खञ्जन-नैन ए, जतन कीजियतु कोर,
प्रीतम मन-तन चरति हैं, पर पिजरन कौ तोर।
बिधिवत छबि के फद सौं, नेही मन अभिराम,
खञ्जन दृग ए लखि मीत के, करत बधिक के काम।
थिरकत सहज-सुभाव सौं, चलत चपर-गत सैन,
मन-रञ्जन सिंगार ए, खञ्जन तेरे नैन।

शोभा दे रहा है, मानों पूर्णिमा के नवीन उदित
में दो खञ्जन लाकर बाँध दिये गये हों।

लेकिन सुकवि श्रीपतिजी को खञ्जनाक्षों पर बड़ा भ्र
रहा है। आपकी समझ शरीफ में ही नहीं आ रहा है
दृग हैं या दृग-से खञ्जन हैं, अस्तु आपकी मुखरता का
हिजा फर्माइये। यथा —

काम-कटारे से कारे हैं नैंन, कि कारे हैं नैंन से काम-कटार
मोती-ढरारे से नैन ढरारे, कि नैन ढरारे से मोती-
"श्रीपति" राइ, लुभाइ लुभाइ रह्यो लखि कै इहि भावुक ला
खञ्जननारे से नैन तिहारे कि नैन तिहारे से खञ्जनना

—श्रीपत

तोषनिधिजी कहते हैं कि श्रीब्रजेश्वरी राधिका के ल
नेत्रों को देखकर बिचारे खञ्जनों को बड़ी-बड़ी खराबियाँ सहनी
पड़ती हैं। फिर भी ललित लोचनों की बराबरी तो क्या, उनक
पासंग भी न पा सके। यथा —

देखि अरुनाई, करुनाई लगै कंजन कौं,
मृगन गुमान तजि लाज लहिबे परी।
"तोषनिधि" कहैं अलि-श्रौनन हूँ दीनताई,
मीननि अधीनताई हारि हहिबे परी॥
खरचा चकोरन की, कोरनारे कोरन सौं,
कवित्त हूँ कवित्त में गरीनी गहिबे परी।

आई चोर चपलाई राधिका के नैननि मैं,
रास खञ्जरीटनु गराबी महिबे परी ॥ *
—तोषनिधि

संस्कृत-साहित्य शिरोमणि, कवि-कुल गुरु कालिदासजी नेत्र खञ्जन पर क्या ही उत्तम उक्ति कहते हैं। देखिये —

एकोहि खञ्जनवरो नलिनीदलस्थो,
दृष्ट करोति चतुरंगबलाधिपत्य।
किं मे करिष्यति भवद्वदनारविन्दे,
जानामि नो नयन खञ्जनयुग्ममेतत्।
—शृङ्गार तिलके

आप कहते हैं कि हे अरविन्द चन्द्रमा के समान वदनवाली! [illegible]ली अर्थात् कमल दल पर बैठा हुए एक ही खञ्जन को देखने —मनुष्य चतुरंगिनी सेना का अधिपति हो जाता है, किन्तु [illegible]) तेरे मुख-कमल पर दो नेत्र रूपी खञ्जनों को बैठा देख [illegible] हूँ, न मालूम यह क्या करेगा, सो मैं नहीं जानता।

* तोषनिधिजी के साथ साथ एक दूसरे कविजी भी इस [illegible]न को अपनाकर, यों विभूषित करके कहते हैं कि —

ऊघौं रहत अरविन्द की सु आभा,
महबूबी मृग छौनन की छाम करियतु है,
दूबी बन-बीथिन चकोर-चारताइ मन,
सूषी सुरगा की तमाम करियतु है।
दूबी जल जोरन सौं मीन बरजोरी सोम,
और मगरूरी बदनाम करियतु है,
देखि देखि तेरी अँखियानि की अजूबी प्यारी,
रायी खञ्जरीट का [illegible] करियतु है।

सगुन शास्त्र के विद्वानों का यह अभिमत है कि यदि कोई मनुष्य कमल-दल पर खञ्जन को बैठा हुआ देख ले तो वह चक्रवर्ती राजा हो जाय, अथवा संसार प्रसिद्ध पुरुष हो जाय। अस्तु इसी बात को कवि-कुल-गुरु ने अपनी अति उत्तम अनूठी उक्ति के सहारे प्रसिद्ध प्रतिभा के साथ रंगकर दुहराई है।

पुनश्च —

येऽन्ये- खञ्जनमेकमेव कमले, पश्यन्ति दैवात् क्वचित्,
ते सर्व्वे मनुजा भवन्ति सुतरां प्रख्यातभूमिभुजः।
त्वद्वक्त्राम्बुज-नेत्र खञ्जन-युगं, पश्यन्ति येऽये जना
स्तेते मन्मथबाणजालविकला, मुग्धे किमत्यद्भुतं।
—कालिदास

जो मनुष्य अकस्मात् भी कमल पर बैठा हुआ एक ही खञ्जन देख ले, वह संसार प्रसिद्ध पुरुष अर्थात् राजा हो जाता है, किन्तु तेरे मुख-कमल पर दो-दो खञ्जनों को देखने वाले जो मनुष्य हैं, वे हे मुग्धे ! सब मन्मथ-कामदेव-के बाणों से व्याकुल हो जाते हैं, यह क्या आश्चर्य है।

निकाल अब तीर सीने से, कि जाने पुर अलम निकले,
जो यह निकले तो दम निकले, जो दम निकले तो जाँ निकले।
—दाग

## चकोर

देखन दै मुख-चन्द कौं, नैंन चकोरन नैंकु
—रसनिधि

खञ्जन की खूबियों के बाद चख-चकोरों की चर्चा-चलाना कुछ अनुचित न होगा। अस्तु श्री "सूर" की सरस-सूक्ति चख चकोरों पर सुनिये।

यथा —

मेरे नैंन चकोर भुलाने,
अह-निसि रहति पलक सुधि बिसरैं, रूप-सुधा न अघाने।
पल, घट, घरी, जाम, दिन, निसि, मस, जुगहौ जुग बर जाने,
स्वादु पर्‍यौ निमियौ नहिं त्यागति, ताहीं माँझ समाने।
हरि-मुख-सिंधु पीवत है व्याकुल, नैंकहु नाँहिं थकाने,
"सूरदास", प्रभु निरखि ललित-तन, अंग-अंग अरुझाने।
—श्री सूर

इस पर टिप्पणी व्यर्थ है। इस रस के अधिकारी सहृदय सज्जन ही हैं।। क्षमा करियेगा।

## काग

'नैन काग लखि री ! ललित, ठानत अपनी ठानु,
—रसिक

श्री सूर ने चकोर-चर्चा के बाद, काले कलूटे-काग को भी कमलाक्षों की समानता देने के लिये नहीं छोड़ा। अस्तु आप आँख और कौए पर कितनी सुन्दर उपमा उपजाते हैं। यथा —

नैन भए री ! हित के काग,
उड़ि उड़ि जाति पार नहिं पावैं, फिरि आवैं इहिं लाग।
ऐसी दसा देखु री इनकी, लागि लगे पछितान,
मो बरजति बरजति उठि धाए, नहिं पायौ अनुमान।
वे समुद्र ओछे बासन ए, धरैं कहाँ सुख-रास,
सुनहुँ सूर ए चतुर कहावति, वह छबि महा-प्रकास।
—श्री सूर

# मधु-मक्खी

हित-रस-लालच-पगीं, वेधु मधु-मखियाँ अँखियाँ,

—गाकुल

कवि-[illegible] ने आँखों पर जो-जो अपूर्व-उपमायें उपजायीं [illegible] और उनका जैसा कुछ साम्य सरसाया है वह सब हृदय [illegible] को हर्षोत्पादन पर्याप्त हैं। श्रीयुत देव जी इन्हीं नेत्रों की तुल[ना] कुरंग, हरिण, मतंग, मीन, कमल, खञ्जन, चकोर, आदि के [illegible] उन्हीं सी मधु मक्षिका से भी करते हैं। कैसी विषम-कल्पना है, कैसी रहस्यमयी अनूठी उपज है। कितनी आश्चर्य-मयी उप[illegible] है। यह सब कवि सम्राट को ही सम्भव हैं। उन्हीं के अनो[illegible] [illegible] अति सुरम्य अखाड़ा है। देखिये —

[illegible] धाइ धँसी निरधार ह्वै, जाइ फँसी उकसीं न अँधेरी,
[illegible] गिरी गहरी गहि, फेरे फिरीं न घिरीं नहिं घेरी।
[illegible] रस लालच लाल चितै भईं चेरी,
[illegible] बूड़ि गईं, दरिया, अँखियाँ मधु की मखियाँ भईं मेरी।

—देव

चाहिये रस-लालची मधु मक्षिका के साथ आँख का क्या [illegible] अद्भुत साम्य सरसाया है! वाह क्या कहना है, और फिर रस लालच का फन्दा अलग ही गजब [illegible] रहा है। हृदय [illegible] फुल सा रहा है।

उस चश्मे-मै परोश से, कोई न बच सका
[illegible] था।

—निगार

# सम्मिलित उपमायें

कञ्जन, खञ्जन, मिरग, मज, मद गञ्जन छवि ऐन,
लसत मैंन-मद मैन से, तरुनी तेरे नैंन।

—रूपनारायण

कुरंग, तुरंग, मतंग, मीन, मरवी, कमल, खजन, चकोर दे न जाने क्या-क्या उपमायें कवियो ने आँखों पर दी हैं। ई क्या थीं, मानों भगवान का विराट् स्वरूप था, कि जिसमें राचर समा दिया। नुमायश सी लगा दी। मीना बाजार ल दिया है। आप भी देखिये और उसका मीठा-मजा लूटिये। ा —

छवि बाल धर, सील-माहव के घर,
पीय-मन मीन-सर सर कामदेतन के,
चातुरी के, पारके, सिंगार के कुमार किधौं,
खञ्जन के अवतार रंजन श्रवन के।
रथ हैं मनोरथ के, वाहन से ऐंन-मैंन,
"नीलकंठ" ऐसे नैन कोम के वरन के,
भौरन के भूप, चारचक्र वेस कारन के,
हरिन के हाकिम, कुटम्बी कमलन के।

—नीलकंठ

इसी भाव पर मुबारक की मन मानी का मनोहर मजा मनन कीजिये और सराहिये। यथा —

पानिप के पुंज, सुघराई के सदन-सुरस,
सोभा के समूह, सावधान मन-मौज के,

लाजन के लाडिले, पिरोहत प्रमोदन के,
नेह के नकीब, चक्रवर्ती चितचोज के।
दया के दिवान, पतिव्रत के प्रधान पूरे,
नैन ए "मुबारक" विधान नव-रोज के,
सफरी के सिरताज, मृगन के महाराज,
साहिब सरोज के, मुसाहिब मनोज के। *

—मुबारक

देव जी की भी दूरन्देशी पर दृष्टि डालिये और देखिये कि श्रीमान् क्या अपूर्व छटा छिटकाते हैं। यथा —

चन्दमुखी तेरे चख, चितै, चकि, चेति, चपि,
चित-चोर चले सुचि सोचन डुलत हैं,
सुन्दर, सुमद, सविनोद, "देव" सामोद,
सरोज सचरत हाँसी लाज-निलुलत हैं।

---

* मुबारक जी के मनोविनोद के साथ 'वल्लभ' की वाचालता देखिये। यथा —

आरु-नैन आज हैं रुचिरताई के निलय,
सोभा के अवार अमीर मनमोज के,
नेह के निधान औ निधान पतिदेवन के,
गुन के वजीर, औ मुनीम चितचोज के।
मीनन के राज, सिरताज हरिनी मन के,
"वल्लभ" नण-नण प्रधान रति फौज के,
राज के जहाज, महाराज सुभ-दजन के,
खञ्जन के नायक, मुसाहब मनोज के।

—वल्लभ

हिरन, चकोर, मीन, चञ्चरीक, मैन-बान,
खञ्जन, कुमुद, कञ्ज-पुञ्जन तुलत हैं,
चौंकत, चकित, उचकति औ छकित चले,
जाति कल्लोल सङ्कलति मुकलत हैं।
—देव

शिवनाथ जी की सिफारिश भी सुन लीजिये। यथा —

कैधौं खञ्जरीटन की चपलताई छीनीं हैं,
कैधौं चञ्चरीकन-कजराई छाइए,
कैधौं प्रात-कञ्जन की स्वच्छता ललित छीनीं,
लाज कौं समेटि विधि लोचन ललाइए।
चतुर-चलाके, चाँके, सहज ही उभकि-भाँके,
पै नई सरस किधौं मैन-सर पाइए,
हँसि-हँसि हेरि-हेरि फेरि-फेरि "सिवनाथ",
हरि सौं हिरन-नैंन नैंकु ना दुराइए।
—शिवनाथ

नवी कवि का निनाद भी निरखिये। यथा —

मृग के से, मीन के से, खञ्जन-प्रवीन के से,
अञ्जन सहित सित-असित जलद से,
चर से, चकोर से, कि चोखे कढे कोर से,
कि मदन-मरोर से, कि मोंति राते रद से।
"नवी कवि", नैंन से कि औरें नैंन-चैंन से,
कि सीपडे सलौंना मधि राखे मृग-मद से,

पय से, पयोधि से कि औरै सोवि-मोधि से,
कि कारे भौंर के से कि अनियारे कोक्नद से।
—नवी

श्रीपति जी की सफलता भी सराहिये। यथा —

खञ्जन के प्रान, पिय-बिरह-तिमिर-भान,
मीनन के मान, धनमान मनमथ के,
सोभा के सिंगार, रूप-थार के दरार मौंती,
सील-सरदार, फौजदार प्रेम पथ के।
"श्रीपति सुजान", लौंने-लोचन गुमान भरे,
सुघर बहल-यान रति-रानी-रथ के,
रस बहुरंग-जाल, जोति के कुरंग-माल,
कञ्ज से बिसाल, महिपाल मनमथ के।
—श्रीपति सुजान

एक और कवि की कल्पना को खयाल फर्माइये। यथा —

सुखमा के घर पूरे, पानिप के सरवर,
आसन-अनूप हर-रूप निसराम के,
चातुरी के चार कला, केलि के अपार हाव,
भाव के भँडार पाये इन्दीवर दाम के।
रति के रतन-जाल, मोहन के मूल-माल,
राजत रसाल, हैं बिसाल नैन बाम के,
मीन के महीपति हैं, खञ्जन प्रभा के पति,
मृग के सलामत, सतावत हैं काम के।
—कोई कवि

श्री सूर ने भी-आँखों पर-सब उपमाओं का अपूर्व अर्क खींच कर एक ही पद के प्याले में भर दिया है। गागर में सुधा-सागर को सँमाने का सरजाम कर दिया है। देखिये न —

देखि री ! हरि के चचल-नैंनि,
खजन, मीन, मृगज-चपलाई, को पटतर इन-सैंनि।
राजिव-दल, इन्दीवर, सतदल, कमल कुसैमे जाति,
निसि मुँदि, प्रात पाइ पुनि विकसति, ए विकसति दिन-राति।
अरुन, स्याम, सित झनक पलक पै, को बरनै उपमाइ,
मनौं सरसुती जमुन गगमिलि, पावन कीन्हों आइ।
अवलोकन, जलधार-तेज अति, तहाँ न मन ठहरात,
"सूर स्याम" लोचन अपार-छवि, उपमा सब भरमात।
—श्री सूर

श्रीसूर के साथ साथ श्री भट्ट जी की सरस सूक्ति भी भुलाने लायक नहीं है। देखिये कैसी अनुपम उक्ति है। यथा —

नागरी ! नैंन तेरे अनियारे,
अति अनूप-निजरूप निहारे, परम-प्रानप्रिय प्रीतम प्यारे।
भृकुटि-मरोरनि, गूढ-भाव-भरि, डोरा कोर प्रैम-फँद धारे,
अरुन-बरनि, पैंने रस-भीने, चिकने ललित प्रीत पत-वारे।
पलक-ललक, मनु अलिन-नलिन ए, प्रात सुदिन-हित परस-पसारे,
अजन अमिल-रेखु ईषद लसि, बस नागिन मनौं खजन-वारे।
चचल, चमता-अमल परिफुल्लित, अद्भुत-गति निरखत रस-भारे,
"श्रीभट" सुरत-समर में कोविद, मुरति न नैंकु समर-रति-प्यारे।
—श्री भट्ट जी

नारायण स्वामी भी नंद नंदन के नैनों का निरूपण, अतिहि मिठास भरी शिकायत के साथ, अपूर्व अदा का करते हैं। जैसे कि

नंद-नँदन के ऐसे नैंन,
अति-छवि-भरे, नाग के छौंना, डसति उभै करि सैंन।
इन सम साँवर-मंत्र न होई, जादू, मंत्र, जंत्र नहिं कोई,
तनक-दृष्टि मैं मन हरि लेहैं, चरि डारैं वे चैंन।
चितवन सौं घाइल करि डारैं, इन पै कोटि बान लै वारैं,
अति-पैंने तिरछे हिय चसकैं, देति स्वास नहिं लैंन।
चंचल-चपल, मनोहर-कारे, खंजन मीन-लजावन हारे,
"नारायन", सुन्दर मतवारे, अनियारे दुख-दैंन।

—नारायण स्वामी

## रूपक और उत्प्रेक्षायें

कवि-कलाधरों ने आँखों को अनेक रुचिर रूपक और अनुपम उत्प्रेक्षाओं से रंजित कर व रमणीय बना कर रसिक-हृदयों के हरने को हाजिर कर रखी है। उनमें सबसे प्रथम यादगाही का बखान देखिये, और सराहिये उनकी परमोज्ज्वल प्रतिभा को जिनकी सूझ की सराहना सहृदय सौ-जान से कर रहे हैं। अस्तु देखिये —

सिपर सुपूतरी कृपान-कल-कज्जल त्यौं,
दल-बरुनीन के छबीले-छैल-छाजे हैं,
"कहैं पदमाकर", न जानी जाति कौन पै धौं,
भौंहन के धनुष-चितौंन सर साजे हैं।

घेर-दार घूँघट-घटा के छाँह-गीर तरें,
मदन-वजीर के लिऐं ही मंजु-माँजे हैं,
बखत-बुलन्द मुख-चन्द के तखत पर,
चारु-चख-चंचल-चकत्ता है बिराजे हैं।
—पद्माकर

सम्पूर्ण-पृथ्वी पर चकत्ता अर्थात् बादशाह ही बड़े होते हैं। चक्रवर्ती ही आदरणीय हैं। अस्तु पद्माकर जी ने अपनी अपूर्व प्रतिभा का परिचय बादशाह, और नेत्र की समता के सहारे कैसा सुन्दर दिया है। बादशाही सारा सामान नेत्रों में ही सुसज्जित कर दिया है। यही कवि की अनोखी-उपज है। यही उसकी प्रगाढ़ प्रतिभा है। यही उसकी सजीवता है।

पद्माकर जी का प्रताप तो परखा ही, अब जरा बेनी द्विज के बादशाही वर्णन का मजा लीजिये। यथा —

कोए जनु तखत बिछे हैं चारु-हीरन के,
मानिक से मानौं लाल-डोरे ए घनेरे हैं,
मरकत-मनी सी राजैं पूतरी-प्रवीन-जादी,
भौंहैं सुलतान की कमानैं लिऐ नेरे हैं।
"बेनी द्विज" पलक-पियादे उठैं जाही ओर,
ताही ओर काँपत मुवाल बहुतेरे हैं,
आलम-पनाह औ उछाह-भरे आठौं जाम,
प्यारी-प्रवीन बादशाह नैन तेरे हैं। *
—बेनी द्विज

* कविवर रामानन्द जी रीवाँ निवासी ने भी "बेनी द्विज"

इसी भाव पर हरिऔध जी का आनन्द भी उमड़ पड़ा। अस्तु आप का अपूर्व बादशाही वर्णन भी देखिये। यथा —

उडिगे चकोर, मोर, खज, सिली सुख जोर,
जगल गे उरग, तुरग, मृग-दीप-नाह,
झख मारि, मन हारि, कज कारि बूडे नाह,
ऊपर परीन की परीन की परीन आह।

---

की इस समस्या "बादशाह नैन तेरे हैं" को अपनाया है और खूब अपनाया है। यथा —

सीस फूल गार सोई सूरज सुगर सँवारे,
अरी! अलक पताका फहरावत घनेरे हैं।
घूँघट पँदोला चार, मोतिन की झालरैं,
कपोल गुम्बादी दिपैं मिमल बसेरे हैं॥
"रामानन्द" परदे पलक अधखुले राखे खूब,
मदभरे कोए लाल सुखमा के घेरे हैं,
चाह भरे पालत हरत सिरजत नेह,
सजुत उमाह बादशाह नैन तेरे हैं॥

×

नीमजाँ हैं सैकड़ों, हजारों बिस्मिल देखे,
आये जो निगाह तले सामत के घेरे हैं,
लाल डोरे फाँसी हैं, कमान भौंहें खम खाए,
तिरछी निगाह तलवार सान फेरे हैं।
जादू का असर है इशार में तुम्हारे जान!
"रामानन्द" काकुल ये काहे को निखेरे हैं,
मिजगाँ सिपाह की कतार परा बाँधे खड़ी,
जालिम जरूर बादशाह नैन तेरे हैं।

"औध" कल कल यौं बहाल हरि हाल-लाल,
सौति-साल बोल-चाल आह, आह, वाह, वाह ,
लसत, सरसत, दमसत एलसत, भाव,
बसत-बलन्द प्यारी तेरे नैन-पातसाह।
हरि औध

## नवाब

कोएन की कुरसी किए, बैठे नैन-नवाब ,
—रसिक

आँख और बादशाह का तो विश्व विदित साम्य भरा रुचिर-रूपक देखा ही, अब जरा नैन नवाब का निराला ढंग निरखिये। यथा—

सुजनी-चिकन की बिछाएँ डोरे-लाल-लाल ,
तकिया-महातम को सोभा अपार है ,
चचल-चितौन-अरज-बेगि बेगि आवै जाइ ,
पलकै दुआर ठाडे बरुनी-चोबदार है।
बक्सी, दिवान दोऊ कोए बान लागत है ,
अजन के दमसत सौं सिद्ध कार-बार हैं ,
लाज औ सकुच ही हजूर के खवास खासे ,
प्यारी के नवल-नैन नवाब नामदार है।
—कोई कवि

आँखों में जो लाल लाल डोरे हैं वह मानो सुजनी ( एक प्रकार का बिछौना ) है, महातम का तकिया है, चचल चितवन ही अर्जीनवीस हैं, और पलक-रूपी दरवाजे पर बरुनी ही चोबदार हैं,

दोनों कोये बख्शी और दीवान हैं, काजल रेख ही हुजूरी हुक्म के दस्तखत हैं, लज्जा और संकोच खिदमतगार हैं, अस्तु इससे जाना जाता है कि प्यारी के नवल नैन क्या हैं मानों नामी नामदार-नवाब हैं।

कहिये नवाब होने में कुछ कसर है, साजो-समान भी सुसज्जित है। अस्तु आइये और झुक झुक कर नैन-नवाब को तीन तीन बार कुर्नसें बजाइये।

सुकवि परमेश भट्ट जी भी, नैन नवाब की निराली प्रभा पर विमुग्ध हो, कहते हैं कि —

> कोएन की कुरसी पै करकैं कुमाच बैठी,
> बरुनी वरीप वीर बिलसन वेरे हैं,
> पूतरी प्रवीन सोई पातुरै बिलोकियतु,
> पलकन प्यादेन के पेखियतु फेरे हैं।
> चारु-चपलाई चोपदार हैं महेश वेस,
> कहैं "परमेस", डिठि भौंहन के डेरे हैं,
> आब-महताब-भरे किम्मत-किताब धरै,
> मानति न दाब ए नवाब नैन तेरे हैं। †
>
> —परमेश भट्ट

† 'नवाब नैन तेरे हैं', इस सरस पूर्ति पर पजनेसजी का प्रताप भी परखिये। यथा —

> लाल-लाल डोरे राजैं तीछन कटाच्छ बान, भृकुटी कमान सी हरति मन मेरे हैं,
> कैधौं अनियारे, चटकारे, सुख कारे, भारे, अति हित कारे नन्दलाल मन-चेरे हैं।
> "भनैं पजनेस" कजरारे अति सान धरैं, अंजन बिराजैं ऐंन मैंन छवि घेरे हैं,
> लाज-भरे सैंन, सुखदैंन अनुराग-भरे, सुख महताब सौं नवाब नैंन तेरे हैं॥

नवाबी के दिन गये, समय की शोहरत के साथ मामला ही
ट गया। नवाबों को यू घिसपनी पड़ी, और ठीक भी है, क्यों-
जो ऊँचे चढ़ते हैं वह किसी न किसी दिन नीचे अवश्य ही
रते हैं। बस यही हालत हुजूरेवाला नैन नवाब की हुई, आप
नवाबी के बजाय सिपहगीरी में तबदील होना पड़ा। यथा —

काजर-कवच किएँ बरुनी के सर लिएँ,
भौंहें-धनु तानें जैतवार जग-ऐन हैं,
बाँकी, सुधी-चितवन की तीछन तरवार बाँधें,
करैं आधौं-आध प्रान मारत डरैं न हैं।
इनकी कजाकी आगैं कछु ना कजा की चलै,
दोऊ-हाथ एतौ बाहू दुख-दैन हैं,
"उद्धव" कहति, ऐंठे ग्वैंठे से रहति नित,
काम-बादसाह के सिपाही दोऊ-नैंन हैं। †

—ऊधोराम

† 'सिपही दोऊ नैन हैं', इस भूमि पर अन्य कवियों ने अपने
पने मनोहर महलात खड़े किये हैं। उनका भी मुलाहिजा
र्माइये। यथा —

जोमवारे आलिम, जहाँन, जहरीले बर,
बाँके सान-सौकत में बीरता के ऐन हैं,
बाँधे स्याह, सिफर,सुफेद, पोस रूनी खूब,
काजर की काती लियें कातैं करि सैन हैं।
भौंहन-कमान बान-बरुनी चढ़ाइ तान,
मारत हिए में आन मानों तीर-चैन हैं,
जाही ओर हेरति, हवाई होति ताही ओर,
साही-जोवन के सिपाही दोऊ नैन हैं।

—कोई कवि

अरे भाई सिपाहियों का तो काम ही पैंठना और मरना मारना है, जहाँ देखिये वहीं इसकी चटपटी चर्चा है, और फिर ठहरे काम-बादशाह के सिपाही, इनका तो कहना ही क्या, ये तो जो न करें वही थोड़ा। अच्छा ऊधोरामजी महाराज अगर ये पैंठते हैं तो पैंठने दीजिये, क्योंकि यहाँ तो श्रीमान् —

×

फजर इलाही हैं जवान आन-बानवारे,
बाँके बदे बीरता के मानों खास-ऐन हैं,
नौकदार बरनी सी बरछी लिये हैं बेस,
अजन-अनूठी-तेग धारैं करैं सैन हैं।
पलक पकैती सी करीया कट लरन में,
आलम "निवाज" देनहारे सुख-चैन हैं,
बादशाही-जोबन के जगी हैं जुलसदार,
सुघर-सलाही सो सिपाही दोऊ नैन हैं।

—निवाज

×

भृकुटी कमान निगाह मारत हैं बान गोया,
पलकों के मोरचे बँधे ही दिन-रैन हैं,
पुतरी की ढाल बाँधी सेत-तरवार कोए,
सुरमई धरैं हैं बाद मानों ऐन-मैन हैं।
चितवन चमक-चार फौज मानों हैं सिंगार,
लड़िबे को सूर-बीर कहिबे कों ऐन हैं,
"रुस्तम" कहति, यार मन में बिचार देखि,
जोबन बादशाह के सिपाही दोऊ नैन हैं।

—रुस्तम

फूपहि में सब भाँग परी है,

—कोई कवि

वाली कहावत चरितार्थ हो रही है, अर्थात् आपके समान इस शिकायत के सब शिकार हो रहे हैं।

नैन नवाबों ने समय के फेर से सिपहसालारी भी करी, पर यों भी काम न चला। शिकारियों को शिकार इस रूप में भी न ला, तब और और वसीलों को छोड़ नैन सिपाही*-वजाजी ही बसर करने लगे। यथा —

---

* कवियों ने नैन सिपाहियों को आधुनिक सभ्यता के अनुार तिलंगी और फिरंगी भी बना डाला है। यथा —

सेतताई साज मधि स्यामता बिरच रचि,
भरन-कोर शुगदै दुबाज सी सुरंगी है,
भृकुटी-कमान मधि पलकन-कशा साधि,
बाँधि नव-नेह लौं चढ़ाई सो उतंगी है।
रूप उचकत उचराइ डोरी लगन-वायु,
प्रीतम खिलारी पै मारी पेच जंगी है,
कुटिल-कटाच्छ-कोर करत-कटासी जाति,
कामिनी की आँखि किधौं काम के तिलंगी है।

×

स्याम,सेत,अरुन,अनौरबीआन-सानवारी,
चञ्चल, छबीली चारु सोहत सुरंगी हैं,
भौंहें-बङ्क विकट कमानैं सीसजी है मनौं,
काजर की रेख राजै कना से सुढंगी हैं।
नेह नस बाँधि के चढ़ी हैं चन्द्र-मण्डल पै,
करी राह घूम घूम मारैं पेच जंगी हैं।

"आमरवाँ", लखि होत "गुलाब", कै,
"चीकन", "मखमल", हूँ सौं दराज हैं;
"डोरिया", लाल परे हैं मुलाइम, जे,
"तनजेब", बढ़ावन-काज हैं।
"मल-मल", हाथ रहे लखि लालन,
"गाढे", फँसाव फँसे तजि लाज हैं,
आवत हैं "कमखाब", निलोकत,
नैन नहीं नए नौंसे—बजाज हैं।

—गुलाब कवि

कहिये (अनोखे) बजाज हैं, और हैं न बजाजी के सारे सामान से सुसज्जित! कवि-कल्पना ने आबरवाँ, चिकन, मख मल, डोरिया, तनज़ेब, मल-मल, गाढ़ा और कमख्वाब आदि शब्दों को श्लेष के सरोवर में किस उत्तमता के साथ सराबोर किया है कि जिससे मजा चौगुना हो कर चित्त को चुरा रहा है।

---

काट करि जात ढील-पाइ कैं कटारी सम,
कामनी की आँख किधौं काम की तिलगी है। ॐ

×

सेत-सुच्छ कोयन के कागद पै फेरैं लगीं,
चारौं ओर डोरी सी तनाव बँधि घेरी है,
कारी कारी-पूतरी विचित्र मध्य राजैं धर,
पलकैं-चमाँच दोऊ कानन-अभेरी हैं।
काजर के कवा में बँधी है मरा-नेह बारी,
सुन्दर-सुरगी ऐमी आजलौं न हेरी हैं,
एडत-हगा पै चढ़ी सुरकें करत पेच,
जोरदार जगी ए तिलगी आँख तेरी हैं।

# दरजी

दग-दरजी, गहि मन-बसन, ब्यौंतति हट के हाट,
कतर, ब्योंत जानति नहीं, सीरो-सूधी-काट।

—प्रेमघनजी

---

परम तरगी तेग तकनि उमग भरी,
किरिच-कटीली कारी-कोरल सुरगी हैं,
बड़-बरछी सी बाँकी बेधत है बान-तान,
बल्ली-बुलन्द भौंहें काम कर सगी हैं।
कैधौं सरदार, सूर समर सलौने महा,
बीर-बर मौज-भरे लसत त्रिभगी हैं,
जगी जोर जालिम जलूस जोति वारे तेरे,
सजत-सजीले प्यारो नैंन ए फिरगी हैं।

×

पलक पियादे खडे हाजिर कतार बाँधे,
डोरे-लाल सग में सवार बहु घेरे हैं,
काजर की किरिच कटीली कसें बानिक सों,
कीने वार के के जौन घाइल घनेरे हैं।
कोंट-पतलून-सेत जाकट पहिर स्याम,
जोबन सहर-मध्य डारे आनि डेरे हैं,
ठगी बड़े पूरन, प्रतापी रन रगी बडे,
जगी जोर जालिम फिरगी-नैंन तेरे हैं।

उक्त दोनों कवित्त में यद्यपि "तिलगी" का ही रूपक है किन्तु हमारी समझ में यहाँ तिलगी शब्द "पतग"—जिसे आजकल "कनकौवा" कहते हैं और जो बच्चे उड़ाया करते हैं—के व्यवहार में आया प्रतीत होता है। पाठक भी इस पर विचार करें।

विपुल बजाजी की बहार भी नेत्रों को अपनी तरफ न अटका सकी, तब दृग, दरजी की दुनियाँ में दर्शन देने लगे। जैसे कि—

कतर-कतर ज्योंति काढ कैं करेजा-रेजा,
वसक हिये की टूक-टूक करि उतारे हैं,
हेरि-हेरि सूत, मजबूत फेरि-फेरि वरि,
बारिक-बरौनी-सूई नरम से सुधारे हैं।
"भौंन कवि", कहै लाल-मगजी लगाइबे कों,
फरजी फिराइ नैंन-मरजी निचारे हैं,
वरजी न मानें करैं हरजी अनेक भाँति,
गरजी अजब नैंन-दरजी तिहारे हैं।
—भौंन कवि

रसनिधिजी की तबीयत भी दृग दरजी बनाने को मचल पड़ी अस्तु, आप भी अपनी अपूर्व प्रतिभा का पता देते हुए कहते हैं कि -

दृग-दरजी बरुनी-सुई, रेसम-डोरे-लाल,
मगजी ज्यों मो मन सियौं, तुव-दामन सौं हाल।
—रसनिधि

## दिवालिया

दूकानदार कभी-कभी अपने दीने ईमाँ को दिवाल्ये ताक रख कर, और साथ ही माल मार कर दिवालिया बन जाते हैं। अस्तु नैंन-महाराज भी बादशाह से नबाव, सिपाही, बजाज, दरजी दिखलाने के बाद अब दिवालिया के रूप में दर्शन देते हैं। यथा—

साहु कहावत फिरत हैं, चित सरसाए चाव,
तेरे नैंन-दिवालिया, मन लै देवि न पाव।
—रसनिधि

अरे भाई ? दिवालिया भी कभी-कभी चौथाई या दो आना दे देते है, पर यहाँ का तो रास्ता ही उलटा है। चोरी और सीना-जोरी का सा मामला है।

यह कौन धों पाटी पढे हौ लला ! मन लेत हौ देन छटाँक नहीं,

—कोई कवि

हग, दिवालिया होने के बाद कौडी के तीन तीन बिकने लगे। सारी साख रुखसत हो गई। अब सिवा मजदूरी के और हाथ ही क्या था, झट हम्माल यानी मजदूर होकर रूप मजदूरी माँगते हुए हाथ पसारने लगे। यथा —

पल-पल्लौ भर इन लियौ, तेरौ नाज उठाइ,
नैंन-हमालन दै अरी ! दरस-मँजूरी आइ। †

—रसनिधि

## ठीकड़ा

उर्दू साहित्य के शिरोमणि अर्थात् प्रधान शायर आतिश ने इन चंचल चश्मों को ठीकडे के रूप में भी रखा है, और कैसी नाजुकता से रखा है कि दिल बाग बाग हो जाता है। यथा —

† रसनिधिजी ने नेत्र महाराज का ब्रह्म रूप में भी वर्णन किया है यथा। —

हग द्विज ए उठि प्रातहीं, करि अँसुवन-असनाँन,
रूप भूप पै जाँचिहा, छबि मुस्ताहल दाँन

× ×

भरन नगा के नैंन जनु, गरै जनेऊ डारि,
रूप-दाँन माँगति रहैं, एपट करन पसारि।

आँखें नहीं हैं चेहरे पर, तेरे फकीर के,
दो ठीकड़े हैं भीख के, दीदार के लिये।

—आतिश

तेरे आशिक़-फकीर के चेहरे पर ये आँखें नहीं हैं। ये तो तेरे दीदार-दर्शन की भीख के लिये दोनों हाथों में दो ठीकड़े हैं।

## नाट्यशाला

बादशाह, नवाब, सिपाही, बजाज, दरजी, दिवालिया, मजदूर ठीकड़ा के रूप में तो आपने आँखों का आलम देखा ही, किन्तु अब जरा महाकवि-केशव की करतूत से नैन नाट्यशाला का निराला और नया नजारा भी निरखिये। यथा —

काछैं सितासित-काछनी "केसव", पातुर ज्यों पुतरीन निचारौं,
कोटि कटाच्छ नचैं गति-भेद, नचावति नाइक नेह निहारौ।
बाजत हैं मृदु-हास-मृदंग, दीपत सुदीपन कौ उजियारौ,
देखति हौं हरि देखि तुम्हें, इहाँ, होति है आँखिन-बीच अखारौ।

—केशव

इसपर टीका टिप्पणी व्यर्थ है। केशव की अपूर्व उपज का कैसा अच्छा दिग्दर्शन है। धन्य महाकवि केशव धन्य, हैं, कितना अलौकिक आँख और नाट्यशाला का नवीन रूपक रचा है!

कवि-सम्राट बिहारीलालजी की व्यापक दृष्टि से यह केशवजी का रसीला रूपक न बचसका। आपने भी अपनी अगाढ़ प्रतिभा के सहारे ऐसा ही एक सुन्दर रूपक रच दिया। जैसे कि —

सब अँग करि राखी सुघर, नाइक-नेह सिखाइ।
रस-जुति लेति अनत-गति, पुतरी-पातुर-राइ॥ ※
—बिहारी

नेह नायक (उस्ताद) ने सब प्रकार से सिखाकर—नृत्य के सब
गों में—चतुर कर रक्खा है। अत पुतली पातुर (रण्डी) रस-
त अनत गति ले रही है।

धन्य है, बिहारीलाल तुमको और तुम्हारी प्रतिमा को!

## काम-नौका

उद्धवरामजी कामिनी के कमलाक्षों को काम नौका की
ल्पना से कल्लोलित कर कहते हैं कि —

जोबन प्रवाह तामें पानिप-तरंग उठैं,
भौंह की मरोरनि सों भौंर-मतवारे हैं,

※ बिहारी के उक्त दोहे पर भारतेन्दुजी की भुवन विजयी
के देखिये। यथा —

पुतरी-पातुर राइ, नँचति मन हरति सुहावति,
अतिही चतुर-गुन भरी, अनेकन भाव दिखावत।
मनहि हरति "हरिचन्द", हठनि नित रँगी मदन रँग,
को जोहति नहि मोहत यह छवि, पूरति सब अँग।
व्यासजी का भी इस भूमि पर का रँग देखिये, यथा —
पुतरी पातुर राइ, नँचति ठठकति ठमकति पुनि,
झुमि वाहवा करति मनहुँ, जुग भौंह परन गुनि।
दरस इनामहि देहु लाल! रिझवारि-पागि रँग,
सुकवि तुमहि बिनु वृथा, भाव सौं पूरे सब अँग।

> बालम की मूरति मलाह बनीं बैठी सुचि,
> लाल-लाल-डोरे वेई गुन-रतनारे हैं।
> पूतरी छलत सोई पतवार "ऊधोराम",
> लाज-बादवान पाल-बरुनी सँवारे हैं,
> रूपके सरोवर मे पैर-पैर डोलति हैं,
> अँखियाँ न होंहि ए तौ काम के निवारे हैं।
> —उद्धवराम

यौवन ही प्रवाह अर्थात् बहाव है, सुन्दरता की तरंगें है, भौंहों का मरोरना ही भँवर का रूप है, मन मोहन की मनोहर मूर्ति ही मन भावन मल्लाह बनी हुई बैठी है, और लाल-लाल डोरे ही नाव के खींचने की रस्सियाँ हैं, पुतलियों का सचालन ही पतवार है, लाज ही बादबान हैं, और बरुनी ही पाल है, रूप ही सरोवर है, अस्तु, ये आँख नहीं हैं ये तो काम की नौका अर्थात् नाव—हैं जो पैरती तिरती हुई डोल रही हैं।

कहिये कितना सुन्दर रूपक है, अस्तु, पूर्व पुण्य के प्रताप से ही प्रियतम को प्रेम रूप सरोवर में पैराने वाली मनोहारिणी-हरिण नैंनी नौका मिलती है। बस अनेकानेक-जन्मों का सुफल चाहिये।

## आँख और चौदहरत्न

> नाहक मथ्यौं-समुद्र, रतन-चौदह तिय-नैंननि,
> —रसिक

पुराणों से पता लगता है कि देवताओं ने समुद्र को मथकर चौदहरत्न विष, घोडा, हाथी, कौस्तुभ मणि, कामधेनु, कल्प वृक्ष, रम्भा, मदिरा, लक्ष्मी, चन्द्रमा, अमृत, धनवन्तरि आदि—

भक्त भव-भय हारी भगवान, रमणीय-रत्नमयी-रमणी को भूल गये थे, इसी लिये "रत्नाकर" मथने का प्रबल प्रयास देवताओं के साथ किया और स्वयं भी कच्छप बन, कल्पना-तीत-कष्ट उठाया। किन्तु मालूम होता है कि श्रीमान् के समीप उस-समय रुचिर रमणी रत्न न था, क्योंकि वह तो पीछे से न मिला है!

श्रीयुत् "श्रीपति जी" ने तो प्रभाव बताकर उपमा का सहारा लिया था, पर आलम ने वस्तु वर्णन कर रूपक का रसीला-रस भर दिया है, गजब गुजार दिया है—दिल को बेकरार कर दिया है।

## अलसौंहीं—आँखें

अरसाने घूँमति, झुकति, सरसौंने, छविऐंन,
निहँसि ढुरौंने पिय पै, नींद-घुरौंने नैंन। †

—नागरीदास जी

---

मन कौं हरत "रंभा" थहरत "हय" ओप होय,
ऐंड मौंन डारें "गज" जोति मन गाए हैं,
द्वन्द-सुखदानी "पारिजात" सील "सुरभी" तें,
सीतल प्रकास "इन्दु" लोलसा भपाए हैं।
घूमैं "मद" दरद जान "बैद" मार "गरल" ज्यौं,
'बसुधा सेत "कंबु" कोए "धनु" ठहराए हैं,
"गोप कहैं" काहे कौं सिन्धु-मथि कीनौं स्रम,
चौदह-रतन तिय नैंननि मैं पाए हैं। —गोप कवि

† अलसौंही आखों पर नागरीदास जी की निरुक्तियाँ भी निरखिये और उनकी अद्भुत काव्य-कुशलता को सराहिये। यथा —

जब पल आँनै झुकति पिय दरपन देति दिखाइ,
तब अपनी अँखियाँन पै, अँखियाँ रहति लुभाइ।

अलसौंहीं आँखें भी "कवि जगत्" को खूब ही भायी हैं। उनपर भी अनुपम-उपमायें उपजायी हैं—अनोखी-उत्प्रेक्षाओं से अलंकृत की हैं। उनकी सुन्दरमयी शोभा पर सर्वस्व सहित न्यौछावर हो गये हैं, हुलसाये-हृदय के साथ, बरबस बिक गये हैं—अर्ध विकसित सरोज सी आँखों के शिकार हो गये हैं। देखिये और सराहिये। यथा —

अँगराति, जम्हाति प्रभात उठी, परिजक पै प्यारी के अग मुरे परैं,
अलसौंहि भरे दग खोलैं कछू, तन-सुन्दर स्वेद की बूँद ढरे परैं।

---

❀

नींद भरी पल निरखि पिय, देति सु पान बनाइ।
उत नैननि के खुलति ही, इत बीरी गिर जाइ।

❀

भौर निवारति मदन लखि, मन मन वारति जाति।
फूँकि जगावति लाल तब, खुले-नैन मुसिकात।

❀

धरैं चिबुक-तर हाथ दग देखति नींद खुमार,
लगे रूप के रहचट, नहि पौंढति रिझिवार।

❀

अरसानी निरखति प्रिया, जाति बिहानी रैन,
नैननि लखि पिय के भए, रौंम-रौंम मैं नैन।

❀

लखि अरसैं सुरसैं नहीं, सब निसि गई बिहाइ,
आरस उरझे दगन मैं पीय! रहे अरसाइ।

❀

सखी! लखैं दुरि द्रमन तैं, ह्वै रहे चित्र सरीर,
निसि उनदौहैं-दगन पै, भई दगन की भीर।

मानिक-मध्य तरौंननि के चरा, मींजति यौं उपमा उभरे परैं ,
पाइ सहाइ प्रभाकर की ज्यौं सुधाकर सौं जल-जात लरे परैं ।

—मानि कवि

कोई नायिका प्रात पर्यंङ्क पर अँगडा और जम्हा रही है । आलस्य से अलकृत आखें कुछ कुछ खुली हुई हैं । स्वेद(पसीने) की बूदों से सुन्दर-शरीर सुशोभित हो रहा है । दोनों कर्ण-फूलों के बीच अलसौंही आँखों को, अगडाइयाँ लेती हुई "अगना" अपने कर-कमलों से, मींज रही हैं, अत उस मनमोहनी के इस मन मोहक मान भगी पर कवि अपनी "हृदय हारिणी-उपज" के साथ सजा कर कहता है कि उस समय ऐसा मालूम हुआ कि मानों प्रभाकर ( सूर्य ) की सहायता पाकर "जलजात" (कमल) सुधाकर ( चन्द्रमा ) से लडे पडते हों ।

श्री सूर भी उनींदी और अलसौंही आँखों के अलौकिक आनन्द में निमग्न हो कहते हैं कि —

नैंन-उनींदे भए रँग-राते,
मनहुँ सुरग-सुमन पै सजनी ! फिरत भृग मद-माँते ।
प्रेम-पराग पाँखुरी पल-पल, प्रफुलित मदन-लता ते ,
सुभग-सुवास, बिलास, बिलोकनि, प्रगट-प्रीति करि ताते ।
तैसोई मारुत मद, जम्हावनि, मिली मुदित-छबि याते ,
सींचे "सूर"-स्याम मानिनि कर, हित सौं केलि-कला ते ।

—श्रीसूर

इस पर टीका टिप्पणी व्यर्थ है, श्रीसूर की "सरस-सूक्ति" समझिये और सराहिये ।

अलबेली अली जी भी, अलबेली अदा से अलकृत अलसौंही-आँखों के अलौकिक आनन्द का अनुभव पा कह रहे हैं कि —

बड़ी-बड़ी अँखियँनु नींद घुराँनी,
अति अनुराग भरी सँग पिय के, जागति रैंन बिहाँनी।
रग-भरीं रातीं, मद-मातीं, अरुन-डोर सरसाँनी,
झपि झपि परति झुकीली-पलकैं आरस-जुत अरसाँनी।
निरखि छकीं छबि-रूप छबीली, तन-मन रहत लुभाँना,
"अलबेली अलि" चित्र रहीं सब, नैंनि निमेख भुलाँना।

—अलिबेली अलि

नागरीदास जी भी अलसौंही आँखों पर निछावर हो गये, अस्तु आप का भी निनाद निरखिये। यथा—

सोहति हैं अलसौंहे-नैंना,
लटकि-लटकि पिय पै अरसावति, सिथिल कहति मुख आधे-बैंना।
बहुत गई निसि प्रिया जम्हावति, चुटकी देति लाल सुख-दैंना,
"नागरी दास" भरी छबि निरखत, निसरि निसरि जाति उपरैंना॥†

—नागरीदास

---

† नागरीदासजी ने और भी पदों से अलसौंही आँखों को अलकृत किया है। उन में से कुछ यहाँ रसिक-जनों के विनोदार्थ उद्धृत करते हैं। यथा—

नाद भरी अँखियाँ जु बड़ी-बड़ी।
लाल-लाल डोरे कजरौंही कोरैं पिय हिय माँझ गड़ी-गड़ी॥
सूचित रैंन चैंन की बातें, रग पीक छबि छाइ मढ़ी मढ़ी।
"नागरिदास" मदन मोंहन करि बहु भाँतिन निसि लड़ी-लड़ी॥

❀

हैं माँती नींद की अँखियाँ सोहैं लाल।
काम-केलि करि रग रससमी, छुटी-अलक, तुटि-माल॥

आलस्य-भरी आँखों पर, भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रजी भी नेछावर हो गये हैं। उनकी अनुपम माधुरी पर हृदय हार गये। यथा —

रस-भसी सरस-रँगीली अँखियाँ मद सौं भरी,
मुँदि-मुँदि खुलति छकीं आलस सौं, ढुरि ढुरि जात ढुरी ॥
झूमति, झुकति रंग-निचुरति मनौं, मीन-मजीठ-परी,
"हरीचन्द्र" पिय छकति लखति रहि, सबहि भाँति निखरी ॥

—भारतेन्दु

## अधखुली आँखें

किये आधीन, अध-चितवन से, जिन्होंने स्याम मन-रंजन,

—प्रियतम

अलसौंही के अनन्तर, अकर्मण्य कवियों को अधखुली आँखों की अजूबा खूबी भी अच्छी लगी है। कवि-कुल को कामिनी के जगाने में आनन्द नहीं आता। हृदयहीन उद्योग को आप लोग दूर से ही सलाम कर अलमस्तता के हाथ बिक जाते हैं, जभी तो अधखुली आँखों के अधीन हो जाते हैं। सचमुच अध-खुली आँखों में अनोखी मादकता है। यथा —

रपटाने पनवारी प्यारी, अरुझे बाहु मृनाल।
"नागरिया" ढिंग भँवर निवारति, लीनै हाथ-रुमाल ॥
अँखियाँ भरन रस भसी घुरहीं।
लाज भरी छबि-भार भरी ए, रूप छकीं आलस-जुत ढुरहीं ॥
सूमित बदन पिय चिबुक उठावति, कहीं न परति जब हँसि हँसि मुरहीं।
रही घरी द्वै रात, जुन्हैया, "नागरी" छैल तऊ न बिछुरहीं ॥

अधर-मधुप ऐसे वदन अधिकानी छवि,
मानौं निधु विनिध कीन्हीं रूप कौ उदधि कै,
कान्ह देखि आवति अचानक मुरछि परे,
वदन छिपाइ सखियौंन लियौ मधि कै।
मार गई "गग" दृग-सर बेधि गिरधर,
आधी-चितवन सौं अधीन कीन्हे अधिकैं,
बान-बधि वधिक वधे कौं खोज लेति फिरि,
वधिक-बधुना खोज लींनीं फेरि बधिकैं ॥
—गग—

बधिक भी बान से बेधकर—मारकर—अपने बेधे (मार) हुए की खोज खबर लेता है, पर उस बाला-बर वधू ने अध-खुले दृग-शर से बेध, भूलकर भी खबर न ली। क्यों ले! क्या गरज!

पियूष वर्षी बिहारीलालजी भी विष मयी अधखुला दृग-दृष्टि से बेहाल हो कहते हैं कि —

वारौं बलि तो दृगन पैं, अलि, खजन, मृग, मीन,
आधी दीठ चितौन गिनि, किए लाल आधीन। *
—बिहारीलाल

* बिहारी के इस दोहे को व्यासजी जड़ाव में यों जड़ते हैं। यथा —

किए लाल आधीन, छिनक म देखति देखति,
जिनकौं दोउ-दृग भृकुटी मध्य, है जोगी पेखति।
मैननि पै राखत जिहि कौं, कमला जुग चारौं,
"सुकवि" तिनहिं बस करत, जगत तुव दृग पै वारौं।
—बिहारी विहार

वाह, अध-खुली दृष्टि में भी कैसी अनोखी अद्भुतता है कि जिन के जरा से इशारे में लाल—अर्थात् प्राण-वल्लभ, वश में हो गये। तन, मन, धन निछावर कर दिया—सर्वस्व ही लुटा दिया।

दिल पर मेरे हुजूर की शर्मीली-आँखों ने,
ऐसी निगाह डाली कि, बेकार हो गया।

—कोई शायर

अधखुली आँखों की खूबियों के खादिम, एक दूसरे कवि भी अपना अनोखा ही अलाप अलापते हैं। सुनिये और सराहिये। यथा—

साँझ तै भोर लौं प्यारे जगाई, जगैने कौ ब्यौंत कछू फिर नाँधे,
धोवत ही मिसि खेलनि के, कर-दोऊ लै फूल की माल सौं बाँधे।
सेज ही पै अँगराति, जम्हाति, अनेकु-तमासे बतावति राधे,
आधे-खुले दृग, आधे-मुँदे, अरसरा मुरा तै कहै आधे ही आधे।

—कोइ कवि

कविवर पद्माकरजी अधखुली आँखों के साथ साथ, अध-खुली अन्य वस्तुओं की निराली ही नुमाइश लगाते हैं। देखिये न—

अध-खुली कचुकी, उरोज-अध आधे-खुले,
अध-खुले-बेस 'नख-रेखन की झलकैं',
"कहै पदमाकर" नवीन अध-नींवी खुली,
अध-खुले-छहर-छरा के छोर छलकै।
भोर जगि प्यारी अध उरध इतै की ओर,
झाँकि,-झुकि, झमकि उघारि अध-पलकै,
आँखें अध-खुली, अध-खुली-खिरका हू खुली,
अध-खुले आनन पै अध-खुली-अलकै।

—पद्माकर

# लड़ैते—लोचन

लड़ैं, लड़ै पुनि लड़ि लड़ैं, लाड़-लड़ैते-नैन

—

अलसौंहैं और अध-खुले, अम्बुजाक्षों का आनन्द तो लि ही, अब जरा लड़ैते लोचनों की लीला भी स्वन लीजिये। यथा

कहा लडैते दृग करे, परे लाल बेहाल,
कहुँ मुरली, कहुँ पीत-पट, कहूँ मुकट, बनमाल।†

—बिहारी लाल

अरी! वाहरी वाह, क्या अजब तू ने लड़ैते—प्यारयुक्त लाड़ले लोचन बना रखे हैं कि जिनके मारे लाल बे हाल हो रहे हैं। बेचारों को अपनी मुरली, मुकुट, बनमाल, पीत पट अर्थात् पीताम्बर तक की भी जरा सुध नहीं।

क्या निगाह थी बलाये, होश-रुबा साकी की,
उठ गई आँख तो कोसो कोई हुशियार न था।

—दाग़

लडाके लोचनों की शिकायत सुकवि सुन्दर जी से भी सुन लीजिये। देखिये कितना विदग्धताभरा वर्णन करते हैं। यथा—

---

† इस दोहे पर व्यासजी यों कहते हैं कि —

कहुँ मुकट बन-माल, कहूँ पुनि लकुट गयौ परि,
कहुँ भुजा कौ हाथ, कहूँ कलगिया गई ढरि।
बोलति अट पट-बात, सुनति कछु नाहि कहे तें,
सुकवि मोहनी मरे, करे-दग कहा लडैते।

—बिहारी बिहार

कहूँ बनमाल, कहूँ गुंजन की माल कहूँ,
सग सखा ग्वाल नाहिं ऐसे भूलि गए हैं,
कहूँ मोर-चन्द्रिका, लकुट, पट-पीत कहूँ,
मुरली, मुकट कहूँ न्यारे हरि दए हैं।
कुंडल-अडोल कहूँ, "सुन्दर" न बोलैं बोल,
लोचन-अलोल मानौं काहू हर लए हैं,
घूँघट की ओट ह्वै कै चितवन की चोट करी,
लालन तौ लोट-पोट तब ही तैं भए हैं।
—सुन्दर

घूँघट की ओट से चारु चितवन की, चपल-चित्त में चुभने-वाली ऐसी चोट चलाई कि लाल तब ही से लोट-पोट हो गये। सारे होशोहवाश हवा हो गये।

दिल गया दम पर बनी, आँखें-लड़ीं कहती हैं हाल,
बेकरारी, आहो-जारी, अश्कें-वारी आप की।
—मोमिन

बिहारी और सुन्दरजी की लड़ैते लोचनों पर सरस रचना देखी ही, अब जरा "श्री सूर" की इसी मजमून पर सफलता को सराहिये और देखिये कि श्रीमान् किस अनोखी-अदा से व्यास रूप में वर्णन करते हुए कितना सु रस भरते हैं। यथा —

चितई, चपल-नैंन की कोर।
मनमथ-वान दुसह अनियारे, निकसे फूटि हिए वहि ओर॥
अति-व्याकुल धुकि धरनि परै जिमि, तरुन-तमाल पवन के जोर।
कहुँ मुरली, कहुँ लकुट-मनोहर, कहुँ पट, कहूँ चन्द्रिका-मोर॥
छिन बूडति, छिन हीं छिन उछरति, विरह-सिन्धु के परे झकोर।

प्रेम-सलिल भीज्यौ पियरौ-पट, फट्यौ निचोरति अँचरा-छोर॥
फुरैं न वचन, नैंनि नहिं उघरत, मानहुँ कमल भए बिनु भोर।
"सूर" सु-अधर-सुधा-रस सींचहु, मेटि मूरछा नन्द-किसोर॥
—श्री सूर

महाराज "नागरी दास" जी भी लड़की के-लोचनों की शिकायत करते हुए फर्माते हैं कि —

तेरे नैंन-बान उर मोंहन के लगे आँनि,
तन तैं न थाकै बीर धीर ठहराइ है।
पलकन मूँदि-मूँदि गहरे-उसास लेति,
होति न सचेत मुख रटैं हाइ-हाइ है।
जमना कौ कूल, कुंज, सीतल-कुसुम-पुंज,
लगै तन ता तैं तेज बिसम बलाइ है,
एरी चलि नागरि ! तू सींचि सुधा-चाँहनि सौं,
आँखिन के घाइल कौं आँखैं ही उपाइ है।
—नागरी दास

आह, जब से तेरे ये नैन-बान मोहन के हृदय में आन कर लगे हैं, अरी बावली ! तब से ही उन को जरा भी धीर नहीं है—पलकों को मूँदे हुए गहरे-उसास ले रहे हैं। चेत तो होता ही नहीं, केवल मुख से हाय-हाय की रटना रट रहे हैं। यद्यपि यमुना के कूल की कुञ्जें शीतल कुसुमय-पुञ्जों ( फूलों के समूह ) से अधिक सुशीतल हो रही हैं, तथापि उनके तन को तो वे एकदम गरम और तेज विषमय-सी मालुम हो रही हैं, इस से हे नागरी !, तू शीघ्र चल कर प्रेम से (दर्श)-सुधा का सिंचन कर, क्योंकि आँखों के घायल को उन आँखों का देखना ही बचने का केवल उपाय है, जिन ने उन पर ये गजब गुजारे हैं।

बेनी कवि की बहादुरी भी बिना विलम्ब लख लीजिये, क्योंकि आप भी लड़ैते लोचनों के कायल हैं। यथा —

गोरे से भाइ भुजान खुलो, कुसुँभी-अँगिया की रही गडि गोटैं,
तक नई सी परै कच भार, मनोहर-हार परी त्यों घरोटैं।
"बेनी" रँगें मेंहदी पग पानि, करी अँखियानि कटाच्छ की चोटैं,
लौटे न हैरी भटू! घर कौं, कन के लटू कान्ह परे मग लोटैं।※

—बेनी कवि

कैसे लौटें!, कुटिल-कटाक्षमय चञ्चल-चखों की चोटें, क्या कुछ ऐसी-वैसी होती हैं। मनुष्यों की तो बात ही क्या, पशु पक्षी तक नहीं बचने पाते। साक्षी हैं—नागरीदास जी। यथा —

नैनों दा मान्या पछी मरजाँदा, मानस कौन विचारा।

दोहा—पडित, पूजा, पाक-दिल, ये दिमाग मत ल्याइ,
लगै जरन अँखियाँन की, सबै गरब उडि जाइ।

---

※ सुकवि नन्दराम जी ने बेनी कवि के कुछ इसी भाव को इस प्रकार अपनाया है। यथा —

ईच्छन तिहारे तीर, तीच्छन से जाने जाति,
"नन्दराम" तैसे भौ-सरासन मैं जोरे हैं,
स्रवन लौं सलौने तानि ताकि नँद-नन्दन कौं,
छोडि कुलि कान लोक-लाज के चितोरे हैं।
जा दिन तैं औचक अनोखी तैं निहान्यौ नैंकु,
हौ हूँ पछिताति हाइ नाँहक निहोरे हैं,
ता दिन तैं लाल, मेरी उलटि उसासैं लेति,
मैं न जानी तेरे नैन-बान विष-बोरे हैं।

—नन्द राम

नैनीं दा मान्या पछी मरजादाँ, मानस कौन विचारा।
दोहा—चश्म जरर से क्या रहै, दीन-गरर की तान,
छूटि गिरै सब पास सैं, तसवी, असा, किताब।
नैनो दा मान्या पछी मरजाँदा, मानस कौन विचारा।
दोहा—लगि बरछी तिरछी-निगह, होवै दिल बेहाल,
रहैं धरे ही जहाँ अवस, चलवै बखतर ढाल।
नैनो दा मान्या पछी मरजादाँ, मानस कौन विचारा।
दोहा—गरब उडावै सरब के, अजब जरब के नैन,
लगै सोइ कहि-नहि उठै, हाइ, हाइ दिन रैन।
नैनो दा मान्या पछी मरजाँदा, मानस कौन विचारा।
दोहा—चश्म तेग "नागर" चले, इश्क तेज की धार,
और कटैं नहिं वार सों, कटै कटे-रिझवार।
नैनीं दा मान्या पछी मरजादाँ, मानस कौन विचारा।

अनोखी-अँखों का आखेट ऐसा ही अलौकिक हुआ करता है—सारी शरारतें भुला देता है। तभी तो सागर-कवि ने कहा है कि—

जाके लगैं गृह-काज तजै, अरु मात-पिता हित तात न राखैं,
"सागर" लीन है चाकर चाह कै, धीरज-हीन अधीन है भाखैं।
व्याकुल-मीन ज्यों नेह-नवीन मैं मानों दई बरछीन की साखैं,
तीर लगै, तरवार लगै, पै लगे जनि काहू की काहू सौं आँखैं।
—सागर

पर 'सागर' जी यह कब मानने वाले हैं। इनको बिना लड़े (लड़े) चैन कहाँ!, सिवा लड़ने के इन्हों ने और कुछ सीखा ही नहीं। देखिये न—

खून करें लडि बावरे, महबूबो के नैंन,
आशिक-सिर की गेंद से, खेलैं तब ही चैंन।
—नागरी दास

नारायण स्वामी जी भी श्याम-सुन्दर की सरोज सी सलोनी आँखों के आखेट हो कहते हैं कि —

स्याम-दृगन की चोट बुरी री !,
ज्यौं-ज्यौं नाम लेति तू वाकौ, मो घाइल पै नौंन-पुरीरी।
ना जानौं अब सुधि-बुधि मेरी, कौंन बिपिन मैं जाइ दुरी री।
"नाराइन", नहिं छूटति सजनी, जाकी जासौं प्रीत जुरी री।
—नारायण स्वामी

## लगौंहे-लोचन

जब तैं लागैं नैंन नहिं, जब तैं लागे-नैंन,
—रामसहाय दास

सब कोई कहते हैं कि आँखे किसी की आँखों से न लगें, पर ये ललित-लोचन तो स्वय ही लगौंहे होते हैं। कहना मानते ही नहीं; झट उरझ जाते हैं। जैसे कि —

होति मरि ! ए उरझौंहे नैंन,
उरझि परति सुरझौ नहिं जानति, सोचति, समुझति हैंन।
कोऊ नहिं बरजै री इन कौं, बनत मत्त जिमि गैंन,
कहा करौं इन बैरिन पाछैं, होति लैंन के दैंन।
—भारतेन्दु

बेशक, इन के पीछे लेने के देने पड जाते हैं। पर ये कहीं उलझने के बाद सुरझे भी हैं और फिर गुनन-गरूले-गोपाल से लगे-लोचन। कौन सुरझाये, किसे जरूरत पडी है। यथा —

नलिनी रचि मध्य में ओटि करैं, जुग-फूटैं जुराफा उडावहि को,
मन-चचुक चीच कौ लोह भयौ, वहाँ दूसरौ रूप दिखावहि को।
"कवि मभु" सनेह की रीति यही, निछुरैं जल मीन जियावहि को।
गुनवारे-गुपाल की आँखिन सौं, उरझी अँखियाँ सुरझावहि को।†

—शम्भु

अरी बावली !, सुरझाने की जरूरत ही क्या है। गुन-वारे गोपाल से आँखें तो सात हाथ चौडी लिलारी हो तब लगती हैं। यह तो बडे सुपुण्य का सेहरा है। किन्तु इन अनोखी आँखों की अकथ कहानी है। यथा —

आशिक-दिल-अँखियों की जग मे, सब से अकह-कहानी हैं,
फिर न फिरैं महबूब करें जब, हँसि चितवन-महमानी हैं।
बेशक बदन परहेज निहायत, इन हि न लालच है जी का,
हुश्न-जहर का गिजा मुकर्रर, ऐसी अजब अयानी हैं।

† "गुनवारे गुपाल की आँखिन सौं, उरझी अँखियाँ सुरझावहि को", इस समस्या पर ललित किशोरीजी ने भी सरस सूक्तियाँ रची हैं। यथा —

जब रूप के रग रँगी सजनी, तब पौढि पलोटि सुभावहि को,
मुख-कज मनोज पै भृगिनि सी, लिपटी चिपटीन उडावहि को।
अब मादक-माधुरी पान पगीं, तब घूँघट-ओट दुरावहि को,
गुन वारे-गुपाल की आँखिन सौं, उरझी अँखियाँ सुरझावहि को।

×

चख-कोर चकोर बनाइ भटू, ससि आनन सौं सरसावहि को,
मृदु-बोलन गाढ कपोल-धँसी, फँसी रूप-सरोवर पावहि को।
सुर-तान सें मोही मृगी ज्यौं अली, बहुरौ बन-बीथि मिलावहि को,
गुनवारे-गुपाल की-आँखिन सौं, उरझी अँखियाँ सुरझावहि को।

उन बिन सनम और नहिं सूझै, हरदम एक उसीको बूझै,
इस मतलब में निपट सयानी, और न कहीं लुभानी हैं।
मस्त हाल सब सुधि बिसरानी, प्यासी मरैं परी बिच पानी,
ऐ-गरीब, उस रूप-दिवानी, वह "नागर" अभिमानी हैं।

—नागरी दास

लगौंहे लोचन कुछ और ही होते हैं। उन की लीला कुछ निराली ही होती है। देखिये न —

लगौंहो-चितवन औरहि होति,
दुरति न लाख, दुराऔ कोऊ, प्रेम-झलक की जोति।
घूँघट मैं नहिं थिरत तनकहू, अति ललचौंही बानि,
छिपति न कैसैंहुँ प्रीति-निगोडी, अब जाति सब जानि।

—भारतेन्दु

लगी हुई निगोड़ी प्रीति और चितवन को भले ही छिपाइये पर वह इन्हीं दृग-दर्पण द्वारा दीख ही जाती है—प्रतिबिम्ब भासित हो ही जाता है। लाख छिपायो, पर वह छिपती ही नहीं, सब जानहीं जाते हैं। यथा —

छिपाऐं छिपत न नैंन-लगे,
उघर परत सब जान जाति हैं, घूँघट मैं न खगे।
कितनौंऊ करौ दुरान दुरति नहिं, जब सौं प्रैंम-पगे,
निडर-भए उघरे से डोलति, मोहन रंग-रँगे।

—भारतेन्दु

लगौंहे लोचनों को "श्री सूर" ने भी पानी पी-पी कर कोसा है; क्योंकि ये धीमान् (लोचन) कुछ विचारते तो हैं ही नहीं, झट लग

जाते हैं। चाहे फिर दुख की दीवार ही क्यों न उठायें; पर वे नहीं मानते ! नहीं मानते !!, यथा —

नैंना नाहीं कछू विचारत,
सनमुख-समर करत मोंहन सौं, जद्यपि हैं हठि हारत।
अवलोकति, अलसात, नवल-छवि, अमित-तोष अति आरत,
तमकि-तमकि तरकति, मृग-पति ज्यौं, घूँघट पटहि विदारत।
बुध, वल, कुल-अभिमान, रोस, रस, जोवत तुरत निवारत,
निदरे पै हूँ सरस-स्याम-अँग, पेखि पलक नहिं पारत।
स्रमित सुभट सकुचित, साहस करि, पुनि पुनि सुरत सम्हारत,
"सूर" सरूप मगन झुकि व्याकुल, टरत न कैसैहुँ टारत।
—श्री सूर

पुन भारतेन्दु जी क्या ही अनूठा प्रेम पगा उलाहना इन अविचारिणी और बिगरैल(बामा के) अम्बुजाक्षों को देते हैं। यथा

भई सखि ! ए अँखियाँ बिगरैल,
बिगरि-परी मानति नहिं देखें, वही साँवरौ छैल।
भई मतवारि धरति पग डग-मग, नहिं सूझत कुल-गैल,
तजि कैं लाज, साज गुरु-जन की, हरि की भई रखैल।
निज-चवाव सुनि औरहु हरसति, करति न कछु मन मैल,
"हरीचद" सब सक छाँडि कैं, करहिं रूप की सैल। †
—भारतेन्दु

---

† भारतेन्दुजी की भुवन विदित काव्य-माधुरी सुरसरि के बा कुछ-कुछ इसी भाव पर रसिकेशजी की रसिकता-रंजित अपू उक्ति भी सुन लीजिये। यथा —

प्रीति की रीति ही अजब है--लगोहे-लोचनों की लीला ही नेराली है। जन्म भर तरसा कीजिये, बाट हेरा करिये, दिन गिनते गिनते उँगलियों में छाले पटक लीजिये, पर यहाँ क्या !, जैसे कि —

आँखड़ियाँ झाईं परी, पथ निहारि-निहार ,
जीभड़ियाँ छाला पऱ्या, राम पुकारि-पुकार !

—कबीर दास

# वियोगिनी-योगिनी आँखे

हास सतो-गुन, रज अधर, काजर तम, दुति रूप ,
मेरे-दृग जोगी भए, लयें समाधि-अनूप ।

--कोई कवि

प्रियतम की प्राप्ति न होने पर, वियोग वन्हि से विलुलित-वर-बाला की बडी-बडी अनियारी-आँखें, जोगिन हो जाती है। बन-बन प्राण प्रियतम के नाम का अलख जगाती हुई फिरती हैं, पर दर्शन दुर्लभ। ऐसी ही अलबेली--नायिका की वियोगिनी योगिनी आँखों पर "देव जी" कैसा रुचिर-रूपक रचते हैं। यथा -

बरुनी-बघम्बर मैं गूदरी-पलक दोऊ ,
कोए राते-बसन भिगौंहि-भेस रखियाँ ,

---

दुईं नैन न मानहिं नैकहु सीख, किती समुझाइ कही इन सौं ,
टुक हेरति धाइ कै आगैं मिलैं, पुनि क्यौंहूँ न धीर धरैं छिनसौं ।
अपनी दिसि तैं हम प्रान औ अंग, निछावरि की है घने दिन सौं ,
तन औ मन हारेहु रूसे रहैं, "रसिकेस" बस्याइ कहा इन सौं ।

—रसिकेश

बूडी जल ही में, दिन जामिनिहूँ जागै भौंहैं,
धूम-सिर छायौ बिरहा नल बिलखियाँ।
अँसुवाफटिक-माल, लाल-डोरे सेल्ही पैन्हि,
भई हैं अकेली तजि चेली संग-सखियाँ,
दीजिए दरस "देव", कीजिए सँजोगिन ए,
जोगिन ह्वै बैठी वा वियोगिन की अखियाँ।
—देव

वियोगिनी-बाला के योगी-नैनों का कैसा साम्यता युक्त वर्णन हैं। योगियों के उपयोगी सभी पदार्थ इन खञ्जनों सी आँखों के खजाने में देवजी पा गये। जैसे कि—बाघम्बर, गुदडी (पहले का भिगोंहा वस्त्र) जल, धूम्र, अग्नि, स्फटिक की माला, स्वच्छ सेल्ही, आदि सब को कविवर "देव जी" ने अपनी अद्भुत-प्रतिभा और अलौकिक कल्पना के सहारे बरुनी, पलक, कोये, आँसू, भौंहें, लाल-लाल डोरे, आदि में अनोखी रीति से पलट दिया—गजब का भाव भर दिया और फिर वियोगिनी-बाला की योगिनी-आँखों के लिए दरस दिलाकर सयोगिनी बनाने की "अपील" करना तो और भी हृदय को हरनेवाला है।

कवि-कृष्णसिंह जी की कल्पना भी राधिका महारानी के रमणीय नैन योगियों पर कैसी कलेजे में कसकने वाली है। यथा—

कानन-गभीर सनै भृकुटी अपांग अंग,
आसन-अंजन मृग-गजन-अराधा के,
वस्त्र भिगोये कोर, सिसद विभूति अंग,
त्यागी-नींद विषै निमेख विष बाधा के।

"कृष्ण सिंह" काम-कला विविधि कटाच्छ ध्यान,
धारना समाधि मनमथ सिद्ध-साधा के,
प्रेम के प्रयोगी, सुख-सम्पति सँयोगी,
अति स्याम के वियोगी भए जोगी-नैंन राधा के।
—कृष्ण सिंह

"मुबारक" महोदय भी वियोगी योगी-नेत्रों के निरूपण पर चल पडे। देखिये कैसी हृदय द्रावक उक्ति से अलंकृत कर कहते। यथा —

डोरे-ललौंहि भिगौंहि समाजन, अंजन-अंजित सेल्ही बनाएँ,
कोए-पटील जटा पुतरी, पलकैं भईं खप्पर जोग प्रचारैं।
उज्जलताई-विभूति "मुबारक" अंग-अँगार सिंगार बनाएँ,
सीकर आस की माल जपैं, अँखियाँ भईं जोगिन जोग-जगाएँ।
—मुबारक

नैनों की योग-कल्पना पर बिहारीलाल जी की काव्य प्रतिभा है न मानी। देखिये कैसी उत्तम और अनोखी सरस सूक्ति कहते हैं। यथा —

जोग जुगति सिखए सबै, मनौं महा-मुनि-मैंन,
चाँहति पिय-अद्वैतता, काँनन सेवत नैंन। †
—बिहारी

† बिहारी के इस दोहे पर भारतेन्दुजी की भव्य-बुद्धि का विकास भी देखिये। यथा —

काँनन सेवत नैंन, रहति नितही लौं लाएँ,
हरि मद-रस सौं छके, छबीले उँमग बढ़ाएँ।
सेली डोरे-लाल रखति, गुदरी-पल अनमिख,
क्यौं न लहैं अद्वैत सिद्धि, पिय जोग-जुगति सिख॥

जिस प्रकार कोई, सद्गुरु महामुनि से दीक्षित मुमुक्षु पुरुष, प्रिय परम प्रेमास्पद ब्रह्म से अद्वैत (अभेद) चाहता हुआ कानन (वन) का सेवन करता है उसी प्रकार कामिनी के कमला भी महा-मुनि मदन से योग-युक्ति अर्थात् प्रिय-संगम की युक्ति सीखकर कानों (वन) का सेवन कर रहे हैं।

कवि ने योग, अद्वैतता, कानन पदों को श्लेष के सहेत में सरायोर कर जो सरस-सूक्ति की रुचिर रचना की है, वह अकथनीय है—अद्वितीय है, कवि संसार की जान है। दस्तये बिहारी के कर्त्ता ने उक्त-दोहे का अनुवाद इस प्रकार किया है, जैसे कि —

> महा-मुनि-मैन ने गोया, जुगत हठ-योग सिखलाई,
> रहे से नैन कॉनन चाहते हैं, पी की इकताई।
> —प्रियतम

बिहारी की इस भाव भंगी पर "रसिकेश" भी रपट पड़े। मुँह से लार टपक पड़ी। भूरि-भूरि प्रसंसनीय भाव को झट अपना लिया और खूब अपना लिया। जैसे कि —

> मैन-महामुनि नैननि कौं, दृढ कै यह जोग की जुगति सिखाई,
> द्वैत-विसिष्ट बिहाइ दुहूँ, "रसिकेस" अनन्य सु एकु लखाई।

---

बिहारी विहार कर्त्ता व्यासजी की भी सुनिये। यथा —

> कॉनन सेवत नैन, पलक की सेली धारैं,
> काजर सौं जनु कृष्ण सार, मृग चरम पसारैं।
> भ्रकुटि-कुटी के तरैं, बैठि कर लई मुकति सी,
> "सुकवि" रसीले-नैन, करत हैं जोग जुगति सी।

...कि निवास कछू न भलो, सँग मुकतनि के अति है कठनाई,
...य अद्वैतता चाहिवे हेतु, मनौं दृग काँनन सेन जाई।
—रसिकेश

...एक दूसरे कवि भी, वियोगी के होनेवाले परम-यागी नेत्रों ...ी चर्चा चलाते हुए कहते हैं कि —

तपें बिरहानल मैं पलक उठाएँ भुजा,
ध्यान लीन मन निसि बासर बिहात हैं,
डोरे-लाल सेल्ही साज, असुवा फटिक-माल,
कोए सोई बसन-भिगोंहि दरसात हैं।
आठौं-जाम जागैं अग बिसद बिभूति भरे,
बोलत न मुख दुख सहैं सीत-घात हैं,
तेरे मिलबे के काज जोगी होंन हेतु प्यारी,
जोगी जुग-लोचन वियोगी के लखात हैं। †
—कोई कवि

भारतेन्दु बाबू "हरिश्चन्द्र" जी भी निराले-ढग से नैंन-फकीरों का निरूपण करते हुए कहते हैं कि —

---

† नैंन-योगियों को देखकर ही किसी "कवि" ने कामिनी के कुच-युगलों को भी योगी होने का सार्टिफिकट अपने "फुल-बेञ्च" से दिया है। यथा —

ठाढे रहैं इग आसन कै, कुटी-कचुकी के पट खोलति ना,
भाल सु गग प्रवाह बहै तिहि मैं उठि नैकु ढिलेरति ना।
कारे भए करि कृस्न कौ ध्यान, डुराए तै काहू के टोलति ना।
ए तपसी—द्वै गरूर भरे, दुनियाँ तै दयानिधि बोलति ना।
—कोई कवि

भए नैंन फकीरिनि हो रामा, अपने सैयाँ के करन वा।
रूप-भीख माँगन के कारन, छाँन फिरत वन-वन वा॥
प्रेम-दिवानी कल न परत कछु, बाहर क्वहुँ अँगनवा।
"हरीचन्द", पिय-प्रेम उपासी, छोड धाम, धन जनवा॥
—भारतेन्दु

कहिये भगवन् !, इन नैनों की योग-युक्ति साधना में अब ! कुछ कसर है, यदि न होतो ऐ मेहरबान ! दीदार दिखला दीजि न। नाहक क्यों तरसाते हो, क्योंकि ये आप के प्रेम की प्यास वियोगनी की योगिनी-आँखें, (आप के) दरश के सिवा औ कुछ देखने की इच्छा ही नहीं रखतीं। यथा —

बिछुरैं-पिय के जग सूनौं भयौ, अब का करिए औ पेखिए का
सुख छाँडि कैं सगम कौ तुम्हरे, इन तुच्छन कौं अब लेखिए का
"हरिचन्द जू", हीरन के व्यवहार कै, काचन कौं लै परेखिए का
जिन आँखिन मैं तुव रूप बस्यौ, उन आँखिन सौं अब देखिए का
—भारतेन्दु

भला, जिन आँखों में आपका रूप बसा हुआ हो, फि उन से औरों को क्या देखना हैं। क्योंकि, दूध के आगे छाछ की क्या पूछ—कलाकद के आगे गुड की क्या गिनती, दाख के सन्मुख निबौरी की क्या निस्वत। पर उस बे परवाही को क्या परवा यथा —

नैंना लागे बे-परवाही दे नाल,
एक-पलक भी कल नहिं पावौं, रहदाँ हरदम-हाल।
दिन दिन जांदा ज्याँन असाढा, उस नागर दे ख्याल,
"नागरिया" वसीवाले दाँ, इश्क नहीं जजाल।
—नागरीदास

उसका इश्क नहीं, खासा-जंजाल है। इस से री—अनकही-आँखों! अब रो-रोकर नाहक प्रान तजती हो, अब अपने किये का फल क्यों न चाखो!, क्योंकि —

> धाइ कैं आगैं मिलीं पहिलैं तुम,
> कौन सौं पूछ कैं सो मोहि भाखौ।
> त्यौं सब लाज तजी छिन मैं,
> केहि के कहैं एतौ कियौ अभिलाखौ।
> काज बिगार सबै अपुनौं,
> "हरिचन्द" जू धीरज क्यों नहिं राखौ,
> क्यौं अब रोइ कैं प्रान तजौ,
> अपने किए को फल क्यौं नहि चाखौ।
>
> —भारतेन्दु

ललित-किशोरी जी भी इन अनकही-आँखों की भारतेन्दु जी के समान ही शिकायत कर रहे हैं। यथा —

> हटकिन-हटकित हियो हटि, धर्यौ नुकीली-सैंन,
> का करिए कोउ गैरु ना, बैरी अपनेई-नैंन।
>
> —ललित-किशोरी

हर पल समझाया, बुझाया—बराबर ही हटकना रहा, पर ये निगोड़े-नैन न माने, न माने। घर के ही बैरी हो गये, कोई और को था ही नहीं। अस्तु, इन्हीं की ही लगाई आग लगाई हुई है—बैर है, इन्हीं की ही पहिले लगन लगाई। इसे हम ही नहीं कहते, ऐसे "भारतीदास" जी भी साखी हैं, यथा —

माई ! इन अँखियन लगन लगाई,
पहिलैं आपु जाइ कें उरझीं, फिरि मो कों उरझाई।
बिनु देखें मुख-कमल कान्ह कौ, अब नहिं परत रहाई,
"नागरि दास" आग-रूइ बिच कै, बैंद-बैंद निदकाई।

—नागरी दास

ये ही तो सारी करतूतों की कारण हैं। अस्तु, इन्हीं सब कर तूतों से श्रीमान् "नारायण स्वामी" पूछते हैं कि —

नैनों रे ! चित-चोर बतावो,
तुम ही रहत भवन रखवारे, बाँके-बीर कहावौ।
तिहारे-बीच गयौ मन मेरौ, चाहैं सौंहैं खावौ,
अब क्यौं रोवत हौ दई-मारे, कहूँ तौ थाँग-लगावौ।
घर के भेदी बैठि द्वारि पै, दिन में घर लुटवावौ,
"नाराइन" मोहिं बस्तु न चहियें, लैंन हार दिखरावौ।

—नारायण स्वामी

किन्तु स्वामीजी !, जब ये कच्चे चोर हों तब तो बतावें, ये तो पक्के से भी पक्के पूरे-चालाक चोर हैं। भले ही आप, वस्तु न लेने का लोभ दिखलाइये, लेकिन ये मानने के नहीं। इन्होंने तो बैर सा बाँध लिया है। फिर भला ये क्यों बताने लगे। जैसा कि "सूरदास जी" कहते हैं। देखिये न —

अँखियन तब तैं बैर धर्‌यौ।
जब मैं हटिकति हरि-दरसन सौं, सो रस नहिं निसर्‌यौ॥
तब ही तैं तन मोहि भुलाई, गई उतहि कौं धाइ।

अब तौ तरकि-तरकि ऐंठति हैं, लौनी लेति बनाइ ॥
भई जाइ वे स्याम-सुहागिन, बड-भागिन कहिवावैं ।
"सूरदास" वैसी प्रभुता तजि, हम पै कब वे आवैं ॥

—श्री सूर

भला !, जब वे श्याम के दीदार से सुहागिन हो रही हैं, तब इधर क्यों आने लगीं—अलौकिक प्रभुता तजने की क्या जरूरत । आह, इन निर्दयों की कुछ बात ही मालुम नहीं पडती । मिली भी रहती है और नहीं भी । साखी हैं ललित माधुरी जी । यथा —

नैंन हमारे निरदई, सब कुल-कौंनि लुटाइ,
मिले रहैं अरु ना मिलै, तिनसौं कहा बस्याइ ।

—ललित-माधुरी

देखो, इन सारी कुल कान लुटाने वाले नैन निर्दयों की अनोखी-रीति । ऐसों के साथ क्या किया जाय । फिर और भी देखिये कि कसूर भी करें और रोयें भी । चोरी भी करें, दिखाई भी दें, पर पकडे न जायँ—सज़ा भी न पायें । वाह रे अनीति !, यथा —

पहिलैं बिनु जाने-पिछाने बिना,
मिली धाइ कैं आगैं बिचारे बिना,
अपुनेनु सौं तुर तै जुदी जो भई,
निज लाभ औ हानि सम्हारे बिना ।
"हरिचन्द जू" दोष सबै इन कौ,
जु कियौ सबै पूँछि हमारे बिना,

बरिआई लखौ इन की उलटी,
अन रोवहिं आपु निहारे बिना।
—भारतेन्दु

सच-मुच इन दुखियारी अनियारी आँखों के लिये सुख तो सिरजा ही नहीं गया। जैसे कि —

इन दुखिया-अँखियाँनि कौं, सुख सिरजौही नाहिं,
देखै बनै, न देखिते, अनदेखै अकुलाहिं।*
—बिहारी

---

* भारतेन्दु-बाबू हरिश्चन्द्र जी ने बिहारी के इस "रत्न" को इस प्रकार जड़ा है। यथा —

अनदेखें अकुला हिं, बिकल-अँसुयन झर लावैं,
सनमुख गुरुजन लाज भरी न दरसन न पावैं।
बिरहु लखि "हरिचन्द" नैन भरि आवत छिन छिन,
सुपन नींद तजि जाति, चैन न कबहूँ पायौ इन।

*

अनदेखें अकुलाहिं, बिरह-दुख भरि-भरि रोवैं,
दुखी रहैं दिन रैन, कबहुँ सपने नहि सोवैं।
"हरिचन्द" सजोग बिरह सम दुखित सदा हीं।
हाइ निगोड़ी अँखिन सुख सिरजौही नाँहीं।

*

अनदेखे अकुला हिं, बावरी ह्वै ह्वै रोवैं,
उघरी उघरी फिरैं, लाज तजि सब सुख खोवैं।
देखैं "श्रीहरिचन्द" नैन भरि देखैं न सखियाँ,
कठिन प्रेम-गति रहति सदाँ दुखियाँ ए अँखियाँ।

इन दुखियारी-आँखों के लिये मानों सुख सिरजा ही नहीं गया--पैदा ही नहीं हुआ, क्यों कि जब प्राण प्रिय पास होते हैं, सामने ही सुसज्जित होते हैं और देखने का मनोहर-मौका भी होता है, तब इन आँखों से---लज्जावस (स्वेच्छा से) देखते भी नहीं बनता और जब वे इन आँखों की ओट (विलग) हो जाते हैं तब प्रेम के आधिक्य से---विना देखे अतीव वर्णनातीत-व्याकुलता होती है।

कहिये कैसा व्यगमय स्नेह में सरसाया हुआ चित्त-चुराने वाला सुन्दर-चमत्कार है। कितनी उत्तम-उक्ति है। ललित-पदावली में कितना माधुर्य भरा है। वाह ?, "देखें बनें न-देखतें" यह एक ही पद ऐसा है, जिसका जवाब ही नहीं।

> नहीं मकसूम इन मगमूम-आँखो के लिये राहत,
> न देखे देखते बनता, न देखे दिल को है हसरत।
>
> —प्रियतम

---

व्यासजी की बहार भी देखिये। यथा —

> अनदेखें अकुलाहिं, हाइ अँसुवाँ बरसावत,
> नेह भरें हू रूखे है, अति जिय तरसावत।
> "सुकवि" रुखति हू पलक, कलप-सत सरिस सुहाइ न,
> प्रान जाइ जो तऊ दोऊ दृग की दुख जाइ न।

×

> अनदेखें अकुलाहिं, ललकि पुनि देखनि चाहत,
> इक-टक टकटकि बाँधि, तृषित से अधिक उमाहत।
> पलक परे पै कोटि-कलप से, बीतत हैं छिन,
> विधि क्यों रचे निमेष, सुकवि दुखियाँ-अँखियाँ इन।

बरिआई लखौ इन की उलटी,
अब रोवहिं आपु निहारे विना।
—भारतेन्दु

सच-मुच इन दुखियारी अनियारी आँखों के लिये सुख तो सिरजा ही नहीं गया। जैसे कि —

इन दुखिया-अँखियाँनि कौं, सुख सिरजौही नाहिं,
देखै बनै, न देखितै, अनदेखै अकुलाहिं। *
—बिहारी

---

* भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी ने बिहारी के इस "रत्न" को इस प्रकार जड़ा है। यथा —

अनदेखें अकुलाहिं, बिकल अँसुवन झर लावैं,
सनमुख गुरुजन लाज भरी ए लखन न पावैं।
चित्र लखि "हरिचन्द" नैन भरि आवत छिन छिन,
सुपन नींद तजि जाति, चैन न कबहूँ पायौ इन।

*

अनदेखें अकुलाहिं, बिरह-दुख भरि-भरि रोवैं,
खुली रहैं दिन रैन, कबहुँ सपने नहिं सोवैं।
"हरीचन्द" संजोग बिरह सम दुखित सदाँ हीं।
हाइ निगोडी आँखिन सुख सिरजौही नाँहीं।

*

अनदेखें अकुलाहिं, बावरी ह्वै-ह्वै रोवैं,
उघरी उघरी फिरैं, लाज तजि सब सुख खोवैं।
देखें "श्रीहरिचन्द" नैन भरि लखैं न सखियाँ,
कठिन प्रेम-गति रहति सदाँ दुखियाँ ए अँखियाँ।

इन दुखियारी-आँखों के लिये मानों सुख सिरजा ही नहीं गया--पैदा ही नहीं हुआ, क्यों कि जब प्राण प्रिय पास होते हैं, सामने ही सुसज्जित होते हैं और देखने का मनोहर मौका भी होता है, तब इन आँखों से--लज्जावस (स्वेच्छा से) देखते भी नहीं बनता और जब वे इन आँखों की ओट (विलग) हो जाते हैं तब प्रेम के आधिक्य से--बिना देखे अतीव वर्णनातीत-व्याकुलता होती है।

कहिये कैसा व्यगमय स्नेह में सरसाया हुआ चित्त-चुराने वाला सुन्दर-चमत्कार है। कितनी उत्तम-उक्ति है। ललित-पदावली में कितना माधुर्य भरा है। वाह ?, "देखें बनैं न-देखतैं" यह एक ही पद ऐसा है, जिसका जवाब ही नहीं।

> नहीं मकसूम इन मगमूम-आँखो के लिये राहत,
> न देखे देखते बनता, न देखे दिल को है हसरत।
>
> —प्रियतम

---

व्यासजी की बहार भी देखिये। यथा —

> अनदेखैं अकुलाहिं, हाइ अँसुवाँ बरसावत,
> नेह भरैं हू रूखे ह्वै, अति जिय तरसावत।
> "सुकवि" लखति हू पल्क, कल्प सत ससि सुहाइ न,
> प्रान जाइ जो तऊ दोऊ दृग की दुग्व जाइ न।
>
> ×
>
> अनदेखैं अकुलाहिं, ललकि पुनि देखनि चाहत,
> इक-टक टकटकियाँ बाँधि, तृषित से अधिक उमाहत।
> पल्क परे पै कोटि-कलप से, बीतत हैं छिन,
> विधि क्यों रचे निमेष, सुकवि दुखियाँ-अँखियाँ इन।

सुकवि शिरोमणि बिहारीलाल के इस मनोहर-मजमून पर, रसीले 'रसनिधि' जी इस प्रकार सुरस वर्षाते हुए कहते हैं कि-

> भर-भराँइ देखे बिना, देखै पल न अघाँइ,
> 'रसनिधि' नेही नैंन ए, क्यों समुझाए जाँइ।
>
> —रसनिधि

भला रसनिधिजी !, नेह पगे नैंन किसी के समझाये कभी समझे भी हैं, जो श्रीमान् के समझाये समझेंगे ! अस्तु समझ लेना चाहिये कि ये ज़िद्दी-बच्चों की तरह किसी प्रकार न समझ सकेंगे।

## अश्रु-वारि-वर्षा †

> मजा बर्सात का देखो, तो इन आँखों में आ बैठो,
> शियाही है, सफ़ैदी है, सफक है अब्रे-वारां है।
>
> —कोई शायर

---

† आधुनिक-कवि प्रभाकर श्रीखण्डेजी (प्रेम) ने अश्रुवारि वर्षा पर एक अच्छी उक्ति कही है। यथा —

> जा कर तुम को हृदय में, दी जगह है प्रेम से,
> रूठ कर जाते कहा हो, प्रेम घन तुम आँसुवों।
> ओट काजल की सलौनी, दे रही थपकी तुम्हें,
> क्यों बरसते क्षोभ की, कारी घटा घन आँसुवों।
>
> ×
>
> कर रहा पलकें तुम्हारी, भाव से हैं सुघुपा,
> कनमों से लोचनों में, बद हो तुम आँसुवों।
> ललित-लीला व्योम के, नक्षत्र की चिनगारियाँ,
> स्वाधीन-जीवन पुष्प के, मकरन्द हो तुम आँसुवों।

कवि कोविदों ने अश्रु-वारि-वर्षा पर भी बड़े-बड़े अनूठे अनुमान उठाये हैं। अश्रुवारि की विविध बहारें बखानी हैं—झड़ी ही लगा दी है। जैसे कि कोयों की ज्योति ही चपला, भ्रू विलास ही सुर चाप, पलकों का घन (बादल) काजल की कीच, पुतली ही आकाशी तारे, माने हैं। यहाँ तक कि तन-ताप जुगनू, उसास ही समीर, उधर जवासा वर्षा आगमन के कारण झुरस ने लगता है, तो इधर छातियाँ झुरस ने लगती हैं। कहाँ तक कोई गिनाये वर्षात का सारा सामान विरहणी की अश्रुवारि-वर्षा में विरमा दिया है। देखिये न —

जौ लौं उतै जुगनू दरसै, तन-ताप इतै तन लौं दरसै लगी,
जौ लौं समीर उतै सर सै, "नँदराम" उसास इतै सरसै लगी।
जौ लौं जवास झुरी-झुरसै उत, तौ लौं इतै छतियाँ झुरसै लगी,
जौ लौं घनेरी-घटा बरसै उत, तौ लौं इतै अँखियाँ बरसै लगी।†

—नन्द राम

---

यू मचलना हर घड़ी है, वे सबब किस काम का,
किस ने जलाया दिल तुम्हारा, दिल जले तुम आँसुवों
मोतियों की बन लड़ी ढरका किये किस रज में,
क्यों उमड कर बह रहे हो, मन चले तुम आँसुवों

×

लौट आवो क्यों विरह को, छोड़ते सतस कर,
क्यों भटकते दर बदर, होकर निरादर आँसुवों
है हृदय मन्दिर खुला, इस में जगह लो शान्ति से
कञ्ज-कलिका-कुञ्ज के, कोमल-कलाधर आँसुवों

(कर्मवीर से उद्धृत)

† इसी भाव पर किसी कवि ने कैसी अपूर्व-उक्ति कही है कि वाह यथा —

नद राम जी का वर्षा निरूपण निरखा ही, अब एक और कवि का भी अश्रु वर्षा और वारि-वर्षा का साम्यता युक्त वर्णन देखिये। यथा

उत कारी-घटा, इत में अलकैं, बक-पाँति उतै, इत मोती-लरी।
उत दामिनि, त्यौं तिय-दंत इतै, उत चाप, इतै भ्रू बंक धरी।
उत चातक लौ पिय-पीय रटै, बिसरै न इतै पिय एकु-घरी।
उत बूँदैं-अगाध, इतै अँसुवा, विरही घन होडा होड़ परी।

—कोई कवि

कहिये, कितना समानतायुक्त सुन्दर-वर्णन है। उधर काली काली घटायें हैं, तो इधर काली-काली विलुलित कुटिल-अलकावली हैं, उधर बकों की पंक्तियां हैं तो इधर कम्बु ग्रीवा में पड़ी मनोहर मोती लड़ी है। उधर दामिनि दमक रही है तो इधर दिव्य-दंत-श्री छटा छिटक रही है। उधर सुर चाप है तो इधर वर-भ्रू का विलास है। उधर चातक पिय पिय रट रहा है तो इधर भी पिय एक-घड़ी नहीं भूलता। उधर अगाध-बूँदें हैं तो इधर आँसुओं की झड़ी लग रही है, अस्तु, इससे ऐसा मालूम होता है मानों विरही-जनों में और घन (बादल) में बरसने की होड पड (लग) रही है।

ब्रजभाषा के सूर्य श्रीसूर ने भी नैंन घन का अपूर्व रूपक बाँधा है—सरस रचना रची है। यथा —

नैंन-घन रहत न एकु घरी।
कबहुँ न घटत सदाँ पावस इहिं, लागी रहति झरी॥

---

आँगन बरसै मेह, नैंना-बरसैं सेज पै,
उत साँवन, इत मेह, होडा होडी झर लग्यौ।

—कोई कवि

बिरह-इन्द्र बरसावत निसि-दिन, ब्रज पै अधिक करी।
ऊरध-साँस-समीर, तेज, जल, उर भुवि उँमग-भरी॥
बूड़ति-भुजा रोम-द्रुम अवर अरु कुच-उच्च धरी।
चलि न सकति पग पथिक रहे थकि, चदन-कीच खरी॥
रस ऋतु मिटीं भई अब एकै, इहि विधि उलट परी।
"सूरदास" प्रभु तुमरे मिलन बिनु, ऋतु-मरजाद टरी॥ ❀

—श्रीसूर

देखी आपने साहित्य—गगन के सूर्य की सुन्दर-सफलता। कितना सरस और विपुल वर्णन है, कल्पनातीत कल्पना है। एक एक शब्द में कितना माधुर्य भरा है वाह।

नैन घन वर्षा पर देव जी भी बड़ी ही हृदय द्रावक दाद देते हैं। कितनी साम्यता से संयुक्त सूक्ति सुजाते हैं। यथा —

कोयन जोति चहूँ चपला, सुर-चाप सु भ्रू रुचि कज्जल कादौं,

❀ ❀ ❀ ❀

❀ नैन घन पर श्रीसूर की एक और सूक्ति सुनिए। यथा —

सखी! इन नैननि तैं घन हारे।
बिनहीं ऋतु बरसति निसि-बासर, सदाँ मलिन दोऊ तारे॥
ऊरध-साँस-समीर तेज अति, सुख अनग द्रुम डारे।
दिसन-दसन करि बसे बचन खग, दुख पावस के मारे॥
ढुरि-ढुरि बूँद परनि कचुकि पै, मिलि मिलि अंजन कारे।
मानौं परन-कुटी सिव कीनीं, बिबिधि रूप धरि न्यारे॥
सुमरि-सुमरि गरजति जल छाँडति, अँसुवा-सलिल कि धारे।
बूड़ति-ब्रजहि "सूर" को राखै, बिनु गिरवर धर प्यारे॥

❀ ❀ ❀ ❀

तारे खुले न खुलीं वरुनी, घन-नैंन दोऊ भए सॉवन-भादौं ।।†

—देव

ब्रम्ह जी की वर्षा-बहार भी विलोकिये। यथा —

काल के कान्ह गए मथुरा, मनौं बीत गए जुग बारहवै,
बिरहागिन काम लगाइ-दई है, दसौं-दिसि देखि बढ़ा दरवै।
"कवि ब्रह्म" भनैं मोहि जान जरै सखि ? स्याम घटा-नलसौं परवै,
बिरही वरि बारहि-बार उठैं, दृग-नीर किधौं घन धौं बरवै।

—ब्रह्म (बारहमासा)

आँनद घन जी की भी पावसमयी आँखें अवलोकिये। यथा

"घन-आँनद" जीवन-मूरि सुजान की, कौंधन हूँ ना कहूँ दरसैं,
नहिं जानिए धौं कित छाइ रहे, इत चातक-प्रान परे तरसैं।
बिनु पावस तौ इन पावस होइ न, सु क्यों करिऐ अब सौं परसैं,
बदरा बरसैं ऋतु मैं घिरि कै, नितु पावस ए अँखियाँ बरसैं।

—आँनदघन

घन घोर घटायुक्त घन तो वर्षा ऋतु में और कभी-कभी अन्य ऋतुओं में भी बरस कर सुख देता है, किन्तु नेत्राम्बुद प्रवाह अर्थात् अश्रु-वारि-वर्षा से तो अहर्निसि आँखें अलंकृत रहती हैं। यथा—

---

† देव जी के इसी भाव से मिलता हुआ एक उर्दू-शायर का सुन्दर शेर भी है। यथा —

दोनों आखें मेरी, रोने में हैं सावन-भादों,
एक भादों की घटा, एक घटा सावन की।

—वजीर अली (सबा)

निसि दिन बरसत नैन हमारे ।
सदाँ रहति पावस-ऋतु हम पै, जब सौं स्याम सिधारे ॥
अंजन थिर न रहति अँखियन मैं, कर कपोल भए कारे ।
कंचुकि-पट सूखत नहिं कबहूँ, उर-बिच बहत पनारे ॥
अँसुवा-सलिल भए पग-थाके, बहे जाति सित-तारे ।
"सूरदास" बूडत है ब्रज अब, काहे न लेति उबारे ॥
—श्री सूर

ब्रज डूबे या न डूबे, इस से श्रीमान को क्या गरज क्योंकि –
कारौ कृतहि न मानैं,
—श्री सूर

श्री सूर की इस सरस और भावमयी सूक्ति के साथ-साथ रघुनाथ कवि भी कहते हैं कि —

मनमोहन के बिछुरैं मन मोहन, बीती अबहि घरी-एकु कि द्वै है,
ऐसी दसा इतने मैं भई, "रघुनाथ" सुने तैं बडौ भै है है ।
लाड़ली के अँसुवान को सागर, बाढत जाति मनौं नभ छ्वै है,
बात कहा कहिए ब्रज की अब बूडौई है है कि बूडत ह्वै है ।
—रघुनाथ

श्रीमान् !, आप को लाडली से बिछुडे अभी घडी या दो घडी ही बीती होंगी, अस्तु इतने ही में उन की ऐसी दयनीय दशा हो गई है कि जिस के सुनने से बडा भय प्रतीत होता है, अर्थात् आप के वियोग पिताडित-नेत्राम्बुजों से आँसुओं का सागर मानों आकाश को छूने के लिये बढ़ रहा है और ब्रज की बात तो कहना ही क्या, या तो वह डूब गया होगा अथवा अब डूबता होगा ।

## आँस और कविगण

भक्ताग्रगण्य रसिकवर रसखान जी भी कुछ-कुछ इसी भा[illegible]
में भरी हुए ऐसी ही उत्तम-उक्ति कहते हैं। यथा —

आए कहा कहि कै कहिये, वृषभानु-लली तैं लला दृग-नाद,
ता छिन सैं अँसुवान की धार, न तोरति जद्यपि लोक निहारती।
वेगि चलौ "रसखान" चलाइ लौं, क्यों अभिमान तैं भौंह मरोरती
प्यारे! पुरन्दर होहिं न प्यारी, अभै पल आधिक मैं व्रज बोरति॥

—रसखान

सुना प्यारे?, प्यारी को पुरन्दर (इन्द्र) न समझना, जो गिरि
को उठाकर बच जाने का गुमान कीजियेगा। अभी आधा पल है
ही अपने नेत्राम्बुद-प्रवाह से सारे व्रज को बोरती है—अभा अभी
डुबोयें देती है। इस से श्रीमान् की बलैयाँ लू, शीघ्र चलकर
दरश-दान दीजिये। नाहक व्रज को क्यों डुबवाना चाहते हो॥

मुझे रोने नहीं देता, तसव्वुर तेरी आँखों का,
वगरना दोनों-आलम को, डुबाता अपनी आँखों से।

—[illegible]

गोपियों के अश्रु वारि-वर्षा का जल बहुत सा इकट्ठा हो गया
था, अस्तु वह मोरी व पनालों का पीछा छोड़, नदी नालों में
निवास करता और निकलता, सिंधु का स्वरूप हुआ जाता है।
देखिये न —

---

† रसखानजी के इस सरस भाव पर कोई कवि क्या ही
अनूठी-उक्ति कहता कि वाह । यथा —

अरे पथिक! कहियो इती, वा मोंहन सौं टेर,
अब दृग-जल भरि राधिका, व्रज हि बहावति फेर।

—कोई कवि

पिन के अँसुवान को नीर, जा मोरी बह्यौ बहि कै भए नारे,
रे भए नदिया बढि कै, नदिया-नद तैं भए फाटि-करारे।
ो चलौ तौ चलौ उत कौं, "कवितोष" कहैं ब्रज-राज-दुलारे,
नद चाहति सिन्धु भए पुनि, सिन्धु तैं ह्वै हैं जलाहल-भारे।
—तोष

इसी भाव से मिलता जुलता "शौदा" साहिब का क्या ही
भरा यह शेर है कि वाह । यथा —

समन्दर कर दिया नाम उसका नाहक, सब ने कह-कह कर,
हुए थे कुछ जमा-आँसू, मेरी आँखों से बह-बह कर।
—शौदा

नाहक ही—लोगों ने कह-कह कर उसका नाम "समन्दर"
दिया, वह तो मेरी आँखों से बहे हुए कुछ आँसू इकट्ठे हो गये
और क्या है ?।

रत्नाकर जी भी नायिका के नोकदार—नैनों से निकली हुई
नु-धारि पूरित नदी का निराला ही निनाद करते हैं। यथा —

जस, रस, मधुर-लुनाई "रतनाकर" कौं,
कानन-बरस घटा-घट लौं नदी चली,
बहि तन-पातलौं, तमाम कुल-कानि गई,
गुरु गिरि रोक-टोक ह्वै जिमि रदी चली।
लाल-अभिलाख, और ओमन गँभीर लगी,
उँमग-उमगि बढि करत बदी-जली,
धीरज-करार फोरि, लज्जा-द्रुम तोरि, बोरि,
नोंकदार नैन तैं निकसि नदी चली।
—जगन्नाथदास [ रत्नाकर ]

भारतेन्दुजी भी एक उत्तम-उक्ति द्वारा नैंनों से नदी बनाते हुए निहायत दर्द—अंगेज चामत्कारक सरस सूक्ति कहते हैं, यथा —

हमारे नैंन बही नदिया।
बीती जानि औधि सब पिय की, जो हम सों बदिया॥
अनगाहौ इन सकल—अंग ब्रज, अंजन मों धोयौ।
लोक-वेद, कुल-कानि, बड़ाई, सुख न लह्यौ खोयौ॥
डूबत हौं अकुलाइ अथाहन, यहै रीति—कैसी।
"हरीचन्द" पिय महा-बाहु तुम आछवि गति ऐसी॥
—भारतेन्दु

श्रीमान् आँसूजी ?, जब तक कि, मोरी पनालों को साबित कर नद नदियों में निनाद करते हुए सिन्धु में समा रहे थे तब तक तो खैर थी, पर अब तो आगे बढ़कर वे और गजब-ढहाना चाहते हैं। इसलिये प्रह्लाद कवि भगवान को आगाह करते हुए उद्धव जी से कहलाते हैं कि—

जोग दैन गयौ हो बियोग-बारि-बारिध मैं,
डूबति बचौं हौं नाथ ! नारी—नैंन यों बहैं
गग की सहस अधर-दुधार-धार,
इन्द्र-कोपि नाहिं जो बचौगे गिर कौ गहैं।
सागर मैं न देख्यौ ऐसौ देख्यौ ना अवनी पै कहूँ,
मुनिन पै अचैगौ नहिं कान खोलि कै कहैं,
"कवि प्रह्लाद जू" मिलाप-सेतु बाँधौ नातौ,
बट के पतौवा पै रावरे भलें रहैं।
—प्रह्लाद [illegible]

शीघ्र समझ जाइये साहिब !, बस देर नहीं है, अश्रुवारि-
हि से प्रलय ही हुई जाती है। अस्तु श्रीमान् को फिर वही बड
पत्ते के सिवा और कहीं ठिकाना न मिलेगा।

विरह-वन्हि से उत्तापित आँसुओं में कितनी बढ़ी-चढ़ी गर्मी
भी है, यह कोई द्वारिका निवासी—श्रीद्वारिका नाथ से कहता
सुनिये और अनुमान किजिये। यथा —

न्हात समैं दास के पाँइन परी हो एकु—
नर सिन्धु-तट पै निपट बेकरार मैं।
मैं कही को है तू, कहि बूझत हौ कृस्न की तौ-
कीजिए सहाइ मेरी सकट अपार मैं।
हौं तौ बड़वानल, बसायौ हरि ही कौं मेरी,
विनती सुनाउ जाइ द्वारिका के दरबार मैं,
ब्रज की अहीरिन के अँसुवा बलित आइ,
जमना जरावै मोहिं महानल-झार मैं।

—दास

अर्थात् ब्रज की अहीरियों के विरह वलित आँसू, हरि द्वारा
मुद्र मैं बसाया गया मुझ बडवानल अग्नि को यमुना से मिलकर
मुद्र में आया महा अनिल सा जलायें ही डालता है। अपनी
प्रखर-ज्वाला से भस्म करें ही डालता है।

कहिये कितनी बढ़ी-चढ़ी उक्ति है, विचारिये और अश्रु-
ताप का अनुमान कीजिये।

जब से उसबुत की देखली आँखें,
इतना रोये कि आगई-आखें।

—कासिम

किसी वियोगनी-बाला के होली के समय अश्रु-वारि पदार्थों पर "पद्माकर जी" की पुनीत प्रतिभा का प्रताप प्रकाशित है। निराली निरुक्ति से अलकृत निनाद है। यथा

फागुन में फागुन विचारि ना दिखाई देति,
एती बड़ी-गाह उन कॉनन में नाइ आउ।
"कहैं पदमाकर" जो हितू है हमारी वीर!
(तौ) मेरे कहे तें वा धाम लगि धाइ आउ।
जोरि जो धर्यो हैं वाहि बे-दरद द्वारे सु तौ,
होरी बिरहागिनि की लूकन सौं लाइ आउ,
एरी! इन नैनन के नीर में अबीर घोरि,
बोरि पिचकारी चित-चोर पै चलाइ-आउ।
—पद्माकर

विरहिणी-व्रजाङ्गना की कैसी हृदय-द्रावक दर्द-भरी उक्ति उचित है और फिर नैनों के नीर में अबीर को घोर कर चित-चोर पर चला आने की दिली दर्द की कैसी दयनीय आर्जू है कि क्या कहना है। कवि ने इस अनूठी-उक्ति के साथ अपना कलेजा निकाल कर रख दिया है। विचारिये और इसकी उत्तमता का अनोखा-अनुमान कीजिये।

अङ्गना के अविरल अश्रु-प्रपात पर "कवि आलम" अनूठा अनुमान अलकृत करते हैं। यथा —

आँनगु के दहत वाकौं अँग न महविदुर,
अँगन हि सीरी करौ अँगनहि आइ कै,
फूल, जरा, चदन, समीर तें न सीरी होति,

अति ही तपत थाकीं सकल उपाइ कै।
कहैं "कवि आलम" न डोलै औ न बोलै बाल ?
नैंन-आँसू-धार ढरै बैठी मुरझाइ कै,
मानौं बिनु नीरै ही अधार बेगि ढीली जाति,
फटिक-सलाका हू दुरासीं टेक लाइ कै।

—आलम

आप कहते हैं कि, उस अङ्गना (नायिका) के अङ्ग को अनङ्ग जला-जला कर विकल कर रहा है, इस लिये आप आँगन (मकान का खुला हिस्सा) तक चल कर ही उस की तपन बुझा आइये, क्योंकि वह इस कदर जल रही है कि फूल, चदन, जल और हवा आदि उपचार करने पर भी सीरी (ठडी) नहीं होती। सारे उपाय कर-कर के हम थक गयीं, आपकी विरह-वन्हि से विकल वह न बोलती है और न डोलती ही है, केवल अविरल-अश्रु धारा बहाती मुरझाई हुई बैठी है, सो वह ऐसी मालूम पडती है कि मानों कोई ललित-लतिका पास के आधार बिन गिरी जाती थी, जैसे दो अश्रुरूपी स्फटिक की शलाका (डडी) लगा कर स्थिर कर दी हो—उसे टेक दी हो। धन्य है आलम आपको और आप की प्रतिभा को।

कहो आँसूओ से न मूँ को वो धोयें,
अभी खाक उस दर की, मूँ से मली है।

—कोई शायर

सम्माननीय सस्कृत-साहित्य के सृजेताओं ने भी अश्रु-धारियों पर अनूठी-उक्ति कही है। जैसे कि —

अनुदिनमति तीव्रं, रोदिषीतित्वमुच्चै,
सखि ! किल कुरुषे, त्वं वाच्यतामेव मुधैव ।
हृदयमिदमनङ्गागार सगाद्विलीय,
प्रसरति वहिरम्भ, सुस्थित नैतदश्रु ॥
—कस्यचित् कवे

कोई विरह विधुरा नायिका, सखी के पूछे जाने पर कि रोज व रोज इतना क्यों रोती है, इस पर वह उत्तर देती है कि सखी! ऐसा कह कर मुझे क्यों व्यर्थ-बदनाम करती है, अरी विरह पीड़ा से अनभिज्ञ स्वस्थ चित्त वाली ! ये मेरी आँखों में आँसू नहीं हैं ये तो कामाग्नि से पिघल पिघल कर हृदय ही पानी हो कर नेत्रों के पाइप द्वारा (फिल्टर होकर) बाहर निकल रहा है।

इस भाव को कविवर बिहारी लाल जी ने भी अपनाया है और खूब अपनाया है। देखिये न कैसी दोहे रूपी दुनाली में भर कर हृदय-बेधक गोली मारी है। यथा —

तच्यौ आँच अति विरह की, रह्यौ प्रेम-रस भीनि,
नैननि के मग जल बहै, हियौ पसीजि-पसीजि।*
—बिहारीलाल

---

* इस दोहे पर व्यासजी की बहार देखिये। यथा —

हियो पसीजि-पसीजि, हाइ दृग द्वार बहत है,
काजर नहिं, जर गये, अधिक रँग स्याम गहत है।
"सुकवि" बूँद मिसि टूक-टूक है निकरि चल्यौ सब,
हाइ याहि में पीतम हैं, यह तच्यौ आँच अब।

असमप्रयाण-समये, कुरु मङ्गलानि,
किं रोदिषि-प्रियतमे ?, वद-कारण मे।
हे प्राणनाथ विरहानल तीव्र-ताप,
धूमेन वारि गलित, ममलोचनाभ्याम् ॥

—कस्यचित् कवे

—अर्थात् परदेश-गमन के समय पत्नी के रोने पर, पति पूछता कि प्रियतमे !, मेरे प्रस्थान समय मङ्गलाचार न कर के रो रही हो ? इसका क्या कारण है। इस पर नायिका उत्तर ती है कि प्राणनाथ !, आपकी विरह वन्हि का उठा हुआ धूँआ आँखों में लगा है इसी से ये आँसू निकल पडे हैं और कुछ रण नहीं हैं।

अश्रुच्छलेन सुदृशो, हुतपावकधूमकलुषाक्ष्या,
अप्राप्य मान-मङ्गे, निगलति लावण्यवारिपूर इव।

—कश्चित् कवे

होमी गयी अग्नि के धूए से धूसरित आँखवाली उस सुलो-ना का सौन्दर्य जल ( आवदार पानी ) शरीर में प्रतिष्ठा न कर, मानों आँसूओं के बहाने झर रहा है—निकल रहा है।

एक दूसरे कवि-कोविद, किसी वियोगिनी-बाला की अवि-ल अश्रु धारा प्रवाह से अभिषिंचित स्तन-मडल को देख कर, त्प्रेक्षा करता है कि —

अङ्गानिमे दहतु कान्त-वियोग-वन्हि,
सरक्ष्यता प्रियतमो हृदि वर्तते म।

इत्याराधा शशि-मुखी ? गलदश्रुवारि,
धाराभिरुष्णमभिषिञ्चति हृदयदेशम् ॥

—कवि

अर्थात् कान्त (प्रियतम) की वियोग-वह्नि मेरे अङ्गों को भले ही जला दे, किन्तु हृदय में बसे प्रियतम को वियोग वह्नि से अति-उत्तापित ताप न लगे, इस आशय से यह चन्द्र-मुखी धारा-प्रवाह अश्रु-जल बहा कर हृदय देश का सिंचन (सींच) कर रही है।

उर्दू के उस्ताद और प्रतिभा सम्पन्न शायरों ने भी आँसुओं पर अच्छे-अच्छे मजमून फर्माये हैं। जैसे कि —

तिफ्ल-अश्क-ऐसा गिरा, दामाने-मिजगाँ छोड़कर,
फिर न उट्ठा कूचये, चाके गिरेबाँ-छोड़कर।

—

तिफल (बालक) आँसू ?, मातृ रूपी पलकों का पल्ला छोड़ कर ऐसे गिरे, कि फिर फटे हुए दामन के कूँचे से न उठे।

दिखलाये हम ने लेके जो दामन पै दुर्रे-अश्क,
कायल हमारी आँख के, सब जौहरी हुए।

—

मैं ने अपने मोती रूपी आँसू दामन पर गिरते हुए (दामन पर रख कर) दिखलाये, तो उनको देख कर, सब जौहरी उनकी पुनीत प्रतिमा के कायल हो गये, अर्थात् आँसूओं में मोती के समान ही प्रभा पाई। अप भी कम नहीं।

अश्क के कतरे जो मिजगाँ पर इकट्ठे हो गये,
ख़ोश ये अँगूर के भी, दाँत खट्टे हो गये।

—और

पलकों पर इकट्ठी हुई आँसुओ की बूदों को देख कर अगूर
गुच्छों के भी दाँत खट्टे हो गये।

तजश्री साहिर की तबीयतदारी भी आँसुओं पर निहायत
अनोखा अनुमान वर्षा कर रही है। यथा —

यहाँ तक गिरिया में रोये सहर तक,
गली-कूचे में पानी है कमर तक।

—तजली

मैं उसकी जुदाइगी ( विरह ) में सुबह यहाँ तक रोया कि
गली-कूचों में मेरे आँसुओं का पानी कमर-कमर तक हो गया।
खुदा ने खैर की ज्यादह अश्क न बहाये वरना, रोजे हसर प्रलय-
का दिन नजदीक ही आ जाता।

हम जेरें ख़ाक लेके जो यह चश्म-तर गये,
अन्धे कुए भी जितने थे पानी से भर गये।

—तजली

महाकवि दाग की भी आँसुओं पर दर्द भरी दाद देखिये
सराहिये उनके दर्द अगेज कलाम को यथा —

लक ने खूब खिदमत ली, हमारे दीद-ये तरसे,
हर आँसू ने मुँह धोया, शने-मेहताबे हिजराँका।

—दाग

आश्मान ने मेरे आर्द्र आसुओं से समालकृत नेत्रों से अच्छी सेवा ली कि—मित्र के विरह में जो रात भर रोया किया था और मेरी आँख के हर-एक अश्रु-कण से निशाधिपति चन्द्रदेव का मुँह धोया किया, तभी तो वह अधिक उज्ज्वल होता जाता था।

> शफक खिली हैं जिमीं पर भी अश्कें खूँ से मेरे,
> यह रङ्ग तूने दिखाया है, चश्मे-तर कैसा।*
>
> —दाग

पृथ्वी पर खून नहीं पडा है, यह तो मेरी आँखों ने आँसू रूप खून बरसा कर, उषा-काल उपस्थित कर दिया है।

> मेरे अश्कों मे हैं, या तेरे दन्दानें-तबस्सुम में,
> गुहर की आब, हीरे की तजल्ली, नूर तारे का।
>
> —दाग

तुझे अपनी दातों की सफाई का बडा अभिमान है, पर यह तो बता कि, मेरे आँसुओं से बढ़कर क्या वे साफ हैं। मोती की आभा, हीरे की दमक, और तारे का प्रकाश तेरे दाँतों में है या मेरे आँसुओं में ?

---

* महा कवि गालिब भी आँख से लहू न टपकने के कायल हैं, यथा —

> रगों में घूमने फिरने के हम नहीं कायल,
> जो आँख ही से न टपका तो फिर लहू क्या है।
>
> —गालिब

गालिब साहिब भी अपने दुर्भाग्य की शिकायत के साथ कुछ अनोखे ढग से आँसुओं का तस्किरा करते हैं। यथा --

घर मेरा, गर मैं न रोता भी तो वीराँ होता,
वहर गर वहर न होता तो बयानाँ होता।
—गालिब

लोग कहते हैं कि मैंने रो-रोकर अपने घर को बहा दिया। मुझे अपनी आँख के आँसुओं की इस शक्ति से इन्कार नहीं, किन्तु मैं ने उस के कारण अपनी ही हानि की है इस बात को मैं नहीं मानता। बेशक ! मेरी आँखों ने आँसू बहा कर घर को साफ कर दिया, पर यदि वह (आँसू) ऐसा न भी करते तो भी मेरी बरबादी में कुछ शक न था। क्योंकि पृथ्वी के दो ही भाग जल और थल हैं। यदि आँखें आँसू न बरसाती तो जल न होता बियाबाँ होता। बरबादी में तो फिर भी कसर न थी।

नजीर की भी निराली अदाँ से अलकृत अनोखे आँसुओं की अनूठा-बहार देखिये। यथा--

कल जो टुक रोया किसी की, याद मे वह गुल बदन,
अश्क थे आँखों में या मोती कुचल कर भर दिये †
—नजीर

रोऊँगा आके तेरी गली मे, अगर मैं यार,
पानी ही पानी होगा, हरेक घर के आस-पास। †
—नजीर

† नजीर के उक्त दोनों शेरों का अर्थ स्पष्ट है। इस से उन पर टीका टिप्पणी लिखने की जरूरत नहीं।

—सम्पादक

पुकारा कासिदे अश्क़ आज, फौजे गम के हाथों से,
हुआ ताराज पहिले शहरे-जाँ दिल का नगर पीछे।
सुनो मैं खूँ को अपने साथ ले आया हूँ और बाकी,
चले आते हैं उठते बैठते, लख्ते जिगर पीछे।

—नज़ीर

विरह में प्रेमी के नेत्रों से आँसुओं के साथ-साथ लहू आने लगा है, उससे यह जान पडता है कि अगर कुछ दिन यही हालत रही तो कलेजा भी टुकडे-टुकडे हो बहकर आने लगेगा। इसी भाव के प्रदर्शन में कविवर नजीर साहब फर्माते हैं कि हरकारा रूपी अश्रु यह सन्देसा लाया है कि, आज प्रियतम के विरह की सेना ने पहिले जान--शरीर रूपी नगर को और उसके बाद दिल हृदय पुर को लूट मार कर के चौपट कर डाला। अत लहू को तो मैं अपने हमराह—साथ लिवा लाया हूँ। अब पीछे उठते बैठते जिगर—कलेजे के टुकडे, चले आ रहे हैं। लूट मार के भय से विह्वल चुटियलों—चोट खाये हुए की भगदड का कैसा हृदयपूर्ण दृश्य है। धन्य नजीर ।

अश्क़ आँखों से पल नहीं थमता,
क्या बला दिल ही दिल में आब हुआ।

—सोज़

उर्दू-साहित्य के महारथियों की कुछ उडाने देखीं, अब ज़रा गुण-ग्राही और कविवर अब्दुल रहीम खान-खाना साहिब की सूझ को सराहिये देखिये कैसा आँसुओं को हृदय मंदिर का भेदिया बताकर अपनी प्रखर प्रतिभा का परिचय देते हैं यथा —

"रहीमन" अँसुवा नैंनि ढरि, जिय-दुख प्रगट करै हि ,
जाहि निकारौ गेह तैं, कस न भेद कहि दहि । *
—रहीम

ठीक भी है, भला जिसे घर से निकालियेगा, वह घर का
क्यों न कहेगा। इसी से "श्री सूर" ने इनको कपटी के कँलक
कलकित किया है। यथा —

कपटी नैंननि तैं कोऊ नाहीं ,
घर कौ भेद आनि के आगैं, खोलति ना सकुचाहीं।
आप गए निधरक है, उन पै, वरजि वरजि मैं हारी ,
मन-कामना पाइ परि-पूरन, ढरि रीझे गिरधारी।
इनहि बिना वे, उनहि बिना ए, तरफरात ज्यौं मीन ,
"सूर दास" कलजुग की महिमा, कुटिल करम-फल लीन।
—श्री सूर

अयोध्यासिंह जी उपाध्याय ने आधुनिक हिन्दी-भाषा में
आँसुओं पर बहुत कुछ उक्तियाँ कहीं हैं। उन में से कुछ मद्दे-नजर
रखते हैं। इस रस का भी रसास्वदन कीजिये। यथा —

---

* रहीम जी की इस सूक्ति पर "नवनीत जी" की जिल्हे
लिये। यथा —

कस न भेद कहि देहि, दसानन भ्रात निकारे ,
तासौं मिल रघुनाथ, निसाचर सब हीं मारे।
कहैं "नीत कविरान" साज सैना जीत्यौ रन ,
घर तैं काढ़ौ जाहि, भेद क्यौं कहै न रहिमन।

आँख का आँसू ढलकता देखकर,
जी तडफ कर के हमारा रह गया।
क्या गया मोती किसी का है निखर,
या हुआ पैदा रतन कोई नया।



ओस की बूँदें कमल मे हैं पडी,
या उगलती बूँद हैं दो मछलियाँ।
या अनूठी—गोलियाँ चाँदी मढी,
खेलती हैं खञ्जनों की लडकियाँ।



या जिगर पर जो फफोला था पडा,
फूट कर के वह अचानक वह गया।
हाय ? था अरमान जो इतना-बडा,
आज वह कुछ बूँद बन कर वह गया।



पूछते हो तो कहो मैं क्या कहूँ,
यों किसी का है निराला-पन गया।
दर्द से मेरे-कलेजे का लहू,
देखता हूँ आज पानी बन गया।



प्यास थी इन आँख को जिसकी बनी,
वह नहीं इस को सका कोई पिला।
प्यास जिस से हो गई है सौ गुनी,
वाह ?, क्या अच्छा इसे पानी मिला।

ठीक करलो जाँचलो धोखा न हो,
वह समझते हैं, मकर करना इसे।
आँख के आँसू निकल कर के कहो,
चाहते हो प्यार जतलाना किसे।



आँख के आँसू समझलो बात यह,
आन पर अपनी रहो तुम मत अड़े।
क्यों कोई देगा तुम्हें दिल मे जगह,
जब कि दिल में से निकल तुम यों पड़े।



हो गया कैसा निराला यह सितम,
भेद-सारा खोल क्यों तुम ने दिया।
यो किसी का है नहीं खोते भरम,
आँसुओं ?, तुम ने कहो यह क्या किया।

—अयोध्यासिंह उपाध्याय

## आनन्दाश्रु

पीतम आवत जानि कै, भिस्ती-नैन सिताब,
हित-मग में [illegible] देति हैं, अँसुवन कौ छिरकाव।

—रसनिधि

अति निरहासक्ति से तो आँसू बहा ही करते हैं—नेत्रों से निकला ही करते हैं, पर आनन्दाश्रुओं का आनन्द भी कुछ कम निराला नहीं है। यह लुत्फ भी कुछ और ही है। देखिये न कोई

कामिनी ?, कान्त (प्राण प्रिय प्रियतम) की कमनीय रूप-माधुरी को निरख निरख कर आनन्दाश्रु पलक रूपी अञ्जुली द्वारा उलीच रही है, अस्तु सखी द्वारा पूछे जाने पर वह कहती है कि —

> अँसुवा होंहिं न ढीट ? डर, ए अँखियाँ रिझवारि,
> पल-अँजुरिन निज मीत पै, पानी सींचति वारि।
> —रसनिधि

अरी ढीट !, मेरी आँखों में ये आँसू नहीं हैं जो—मङ्गल-स अमङ्गल से डरती है। अरी बावली !, ये तो रिझवार म पलक-अञ्जुली में आनन्दाश्रु रूपी पानी भर-भर कर निज मं (प्यारे) पर वार रही हैं।

सुकवि मतिराम जी, संयोग और वियोग दोनों में ही श्रं रल आँसुओं के गिरने का कारण पूछते हुए कहते हैं कि —

> बिनु देखें दुख के चलें, देखें सुख के जाहिं,
> कहौ लाल ! इन दृगन के, अँसुवा क्यों ठहराहिं !
> —मतिराम

बिहारी लाल जी कुछ और ही कहते हैं, वे कहते हैं कि ! मालुम इन नेही-नैनों में क्या बलाय उपजी है कि जो नित प्रति नीर (पानी) से भरे रहने पर भी जरा प्यास नहीं बुझाती। यथा-

> नेही-नैननि कौं कछू, उपजी बड़ी-बलाइ,
> नीर-भरे नित-प्रति रहैं, तऊ न प्यास बुझाइ। †
> —बिहारी दास

† उक्त दोहा प० अम्बिका दत्त जी व्यास कृत "बिहारी बिहार" में नहीं है। —सम्पादक

आँसुवों से अलंकृत अङ्गना की आँखों को अवलोकन कर नायक पूछता है कि यह क्या मामला है, क्योंकि उस समय कोई कारण अश्रु विमोचन का न था। इस पर नायिका उत्तर देती हुई कहती है कि —

❀ ❀ ❀ ❀

❀ ❀ ❀ ❀

नीके मैं फीके ह्वै आँसू भरौ कत, औ ऊँचे-उसासन गरौ क्यौं भरौ परै,
रावरौ-रूप पियौ आँखियाँनु, भर्‍यौ सो भर्‍यौ उबर्‍यौ सो ढर्‍यौ परै।

—देव

श्रीमान् का रूप-रस जो इन आँखों ने पिया है वही भरा रहा सो भरा रहा, और जो उबरा—बढ़ा वही इन आँखों द्वारा निकल रहा है। इन्हें आँसू न समझिये। रो नहीं रही हूँ।

इसी भाव को, रघुनाथ कवि यों अपना कर, निराले ही रस से रँग-भँगा कर, इस प्रकार पेश करते हैं। देखीये —

आए कहूँ रतिमान लख्यौ तिय के अँसुवान की धार चली ह्वै,
देखि कह्यौ "रघुनाथ" कह्यौ तौ कही सकुचे इमि चातुरता छ्वै।
रावरे ? क्यौं मुख-चन्द चितै, ए कुमोदिन-आँखैं अनन्द महा भ्वै,
हौं मैं न बद सकौं करि पूल तैं ऊपर ह्वै मकरन्द चर्‍यौ च्वै।

—रघुनाथ

कवियों को अँसुवों से अलकृत आँखें अच्छी लगती हैं। वे अकारण ही छेड-छाड कर आँसुवों का आह्वान करा कर उनकी अपूर्वता का आनन्द लिया करते हैं। चाहे वे आँखें उनको इस

हरकत की सजा इन के हृदय में तीर की तरह गड़-गड़ करें। करें, पर ये अश्कों भरे तर आँखें अवलोक करने का अब उद्योग करेंगे। यथा —

साहस करि हँसि कैं रस के मिसि,
मॉंगी विदेस विदा मृदु-बान सौं,
सो सुनि बाल ? गई मुरझाइ,
दही वर-बेलि ज्यौं घीर-दवान सौं।
नैंन, गरौ, हियरौ भरि आयौ,
पै बोल न आयौ कछू वा सुनान सौं।
सालैं अजौ उर माँहिं गडी,
वे बडी-अँखियाँ उमडी अँसुवान सौं।
—कोई कवि

अर्थात् नायक ने हँस कर रस के मिस (ऊठे) से विदेश जाने की विदा माँगी। बस, वर-वल्लरी सी बाला ? विरह अग्नि से चलने लगी, कुछ कहते-सुनते न बना, केवल बडी-बडी आँखों में आँसू उमड आये, सो वे अब तक हृदय में गड रहे हैं। और आइन्दा फिर ऐसा कार्य न कीजियेगा।

अस्तु वे अनोखी-आँखें धन्य हैं, जिन से प्रेमाश्रुओं की ऐसी पुनीत धारा अहर्निश प्रवाहित हुआ करती है।

वह कलेजा ? हो कई-टुकड़े अभी,
नाम सुन कर जो, पिघल जाता नहीं।
फूट जायें आँख वह जिस में कभी,
प्रेम का आँसू, उमड़ आता नहीं।
—हरिऔध

# नैन-निकुंज

# श्लोकाः

❀ श्री ❀

# श्लोकाः

---

नूनमाज्ञाकरस्तस्या सुभ्रुवो मकरध्वजः ।
यतस्तन्नेत्रसञ्चार सूचितेषु प्रवर्तते ।

उस सुन्दर भृकुटी वाली भामिनी का, कामदेव आज्ञाकारी-किंकर है यह सत्य है, क्योंकि वह अङ्गना (स्त्री) द्वारा आँखें लाकर बतलाये हुये स्थान पर फौरन चला जाता है।

निःसीम शोभा, सौभाग्य, नताङ्ग्या नयनद्वयम्,
अन्योन्या लोकनानन्द, विरहादिव चञ्चलम्।

उस नताङ्गी के नेत्र अपार शोभा के खजाने हैं, अस्तु, आपुस दोनों (प्रिया प्रियतम) के देखने में, मानों आँनन्द और वियोग से चंचल हो रहे हैं।

आसां प्रतमती वीक्षणोर्यत्पुर परिसर्पणम्,
सह यात मनस्तत्र, त्यक्त्वा भूयो निवर्तनम्।

इन नवेली नायिकाओं के नेत्रों का यही मत है कि पहले मन को पिछाडी छोड कर अगाडी जाना और फिर मन के वहाँ जाने पर उस मन को वहीं छोडकर लौट आना।

अर्जुन कृष्णसयुक्त, कर्ण यत्रानुधावति,
तन्नेत्र तु कुरुक्षेत्रमिति मुग्धेमृशामहे ।

हे मुग्धे ! कृष्ण से सयुक्त अर्जुन अर्थात् काजल से सरसायी काली पुतली, जब कर्ण (कान) के पास जाता है तब मैं ऐसा विचारता हूँ कि तेरे नेत्र अवश्य कुरुक्षेत्र हैं।

> एकमेवाद्रि वामाचि, रञ्जयाञ्जनलेखया,
> जायतामैन्दवेबिम्बे, खञ्जनाम्बुज सङ्गम।

हे सुलोचने ? एक कमलाक्ष को ही काजल से (अनौखा) अलङ्कृत करो, जिस से चन्द्र बिम्ब में खञ्जन और कमल का सगम हो जाय—और कवि जी को राज्य भी मिल जाय।

> अमुष्य मुषिता लक्ष्मीश्चक्षुषेति न नूतनम्,
> न वेद्मि कथयत्यस्या, कर्णे लग्न किमुत्पलम्।

कोई कामिनी कानों को कमल से अलङ्कृत करे जा रही है इस पर कवि कहता है कि, यह कुछ नई बात नहीं है, जो नेत्रों ने कमल की लक्ष्मी अर्थात् श्री ( सोभा ) चुरा ली हो और वह उसकी शिकायत करता हो। किन्तु अब यह नहीं जाना जाता कि कान पर रखा हुआ कमल पुन क्या कह रहा है।

> मृगसम्बन्धिनी दृष्टिरसौ यदि न सुभ्रुव,
> धावती श्रवणोत्तस लीला दूर्वाङ्कुरे कुत।

यदि इस सुन्दर-भृकुटी वाली भामिनी की-दृष्टि मृग की सी न होती, तो कर्णाभरण से सयुक्त दूर्वाङ्कुर के ऊपर दौड़ कर कैसे जाती।

> तस्या श्रवण-मार्गेण, चलिते यदि लोचने,
> कुत प्रकामधवले, धत्त कृष्णानुरक्तताम्।

यदि उस-नायिका के नेत्र, कानों के मार्ग से चलते हों, तो त ( सफेद ) होते हुए भी काले और लाल क्यों हैं।

श्रूयता कौतुक सोऽपि, स्मर शृङ्गारिणागुरु ,
अमुष्या शिष्यतामेति, श्रवणोन्मुखयोर्दृशो ।

सुनते हैं, शृङ्गारियों का गुरु कामदेव, कामिनी के श्रवणोन्मुख नों तक फैले हुए नीरज कमल से नेत्रों का शिष्य हो जाता है अपूर्व आश्चर्य है॥

भास्वत्कुण्डल-माणिक्य, प्रभाप्रतिहतेरिव ,
नताङ्ग्या श्रवणोत्सङ्ग मारूढा नयनद्वयी ।

मणी—माणिक से युक्त प्रकाश मान कुण्डलों की कान्ति रुक (विचक) कर मानों इस नूतन अङ्ग वाली नायिका के नेत्र नों पर चढ़ गये हैं॥

नयनस्य तुला चक्रे, नलिनेन नतभ्रुव ,
ऊनेन चलिते शृङ्ग, मामरभाद्विधिर्ध्रुवो ।

न मालूम, बूढ़े विधि—ब्रह्मा ने कमान सी वक्र-भृकुटी ली भामिनी के नेत्रों की बराबरी (हमसरी) कलुषित-कमलों क्यों की।

—शायद बुढ़ापे से बुद्धि में कायी लग गयी हो, नहीं तो ऐसी ा-हर्कत कभी न करता।

अनङ्ग मङ्गल भुवस्तदपाङ्गस्य भङ्गय ,
जनयन्ति मुहुर्यूनामन्त सतापसन्ततिम् ।

कामदेव को आनन्द देने वाली, उस कामिनि के कुटिल-

कटाक्षों की कल्पना, युवा पुरुषों के हृदय में बार-बार सन्ताप पैदा करती है।

यदिस्यान्मण्डले सक्तमिन्दोरिन्दीवरद्वयम्,
तदोपमीयते तस्या, वदनं चारु-लोचनम्।

यदि चन्द्रमा के बिम्ब (मण्डल) में दो-कमल और लगा दिये जाँय तो उस सुन्दरी ललना के सुन्दर-लोचनों से सयुक्त मुख-चन्द्र की उपमा चन्द्र हो सकता है, अन्यथा नहीं।

श्रमयति शरीर मधिकं, भ्रमयति चेतः करोति सतापम्,
मोहं मुहुश्च कुरुते, विष विषमं वीक्षणं तस्याः।

उस 'वामा' का विष के समान जो विषमय देखना है वह शरीर को अधिक थका देता है, चित्त को घुमा देता है, सन्ताप कारी है और बार-बार मोहित कर देता है।

अतिपूजिततारेयं, दृष्टि श्रुतिलङ्घनक्षमा सुतनु,
जिन सिद्धान्तस्थिरिव, सवासना कं न मोहयति।

सुन्दर-तारों वाली, श्रुति (कानों) को लाँघने वाली उस कान्ता की अति तीक्ष्ण यह दृष्टि, वासना सहित जैन सिद्धान्त की स्थिति की तरह किस को मोहित नहीं करती।

नयनच्छलेन सुतनोर्वदनजिते शशिनि-कुलपतौ क्रोधात्,
नासानालनि बद्ध, स्फुटितमिवेन्दीवर---द्वेधा।

उस सुतनु (सुन्दर तन वाली) के मनोहर मुखद्वारा कुल पति (चन्द्र) को जीत लेने पर, क्रोध से नेत्रों के मिस, नासिका रूपी नाल (डण्डी) में बधे हुए मानों दो नेत्र-कमल खिल गये हैं।

आयामिनोस्तदृक्षोरञ्जन रेखाविधिं वितन्वन्त्या ,
पाणि प्रसाधिकाया प्रापद्-पाङ्ग चिरेण विश्रम्य ।

उस घर वाला के बड़े-बड़े कमलाक्षों में काजल लगाती हुई
ार करनेवाली सज्जनो का हस्त-कमल बहुत देर ठहर कर
ल-कटाक्षों के पास पहुँचा। क्योंकि ( उसे ) कटने का
था न।

प्रवातनीलोत्पल निर्विशेष -
मधीरनिप्रेक्षितमायताक्ष्या ।
तया गृहीत नु मृगाङ्गनाभ्य-
स्ततो गृहीत, नु मृगाङ्गनाभि ।

उस विपुल-नेत्रवाली वरवाला ने वायु द्वारा अतीव-विताडित
(कपती हुई) कमल समान चचल-चक्षों से अधीर होकर
ा, अस्तु यह देखना उस नायिका ने हरिणियों से सीखा,
ा हरिणियों ने उस (नायिका) से सीखा। यह विचारणीय हैं।

मुखारविन्दोपरि आगमस्थ,
नेत्रद्वय खञ्जन मामनन्ति ।
प्रफुल्लकाम्बुज पार्श्ववर्ति,
दल-द्वय भृङ्गयुत मत मे ॥

मुख-कमल पर स्थित जो ये दो नेत्र हैं, उनको कोई कोई
खंजन खयाल करते हैं, किन्तु मेरे मत से तो ये नेत्र खिले हुए
(विकसित) कमल के पास वाले, ये दो-पत्ते हैं जिन पर कि
भ्रमर भ्रमित होकर बैठा हो।

इन्दीवर लोचन योस्तुलायै,
निर्माय यत्नेनविधि कदाचित् ।
अतुल्यता वीक्ष्य ततो रजांसि,
निक्षिप्य चिक्षेप स पङ्कमध्ये ॥

किसी समय बूढे-ब्रह्मा ने नायिका के नेत्रों की निकाई निरख कर समानता अर्थात् हमसरी के लिये अतीव दुष्तर प्रयत्न से कमलों को बनाया, अन्तु बनने पर उनकी सी ( नेत्रों की सी) बराबरी न पाकर उस में रज पटक कर कीचड में डाल दिया।

इषुत्रयेणैव जगत्त्रयस्य,
विनिर्जयात्पुष्प मयाशुगेन ।
शेषा द्विबाणी सफलीकृतेय,
प्रियादृगम्भोजपदेऽभिषिच्य ॥

पुष्पों (फूलों) से निर्मित कामदेव के तीन तीक्ष्ण-बाणों में से केवल एक के ही द्वारा त्रिलोकी के जीते जाने पर दो बचे हुए बाणों से प्रिया के कमलाक्षों का अभिषेक कर (बाण) सफल किये हैं। तभी तो उन में इतनी काट है।

सेयं मृदु कौसुम-चापयष्टि ,
स्मरस्य मुष्टिग्रहणार्ह-मध्या ।
तनोतिन श्रीमद-पाङ्ग-मुक्ता,
मोहाय या दृष्टिशरौघवृष्टिम ॥

मृदु-मुट्ठी में जिस कान्ता की कमर पकडने लायक है वह कामदेव की पुष्पों से सुसज्जित धनुर्यष्टि (प्रतिच्चा) है। जो हमारे

बेहने, के लिये मत वाले कुटिल-कटाक्षों से सयुक्त दृष्टि रूपी विपुल-बाण वर्षा करती हैं।

आघूर्णित पक्ष्मलमद्रिपक्ष,
प्रान्तद्युतिश्वैत्यजिता मृताशु।
अस्या इवास्याञ्चलमिन्द्रनील,
गोलामल-स्यामल तारतारम्॥

जिसने श्वेतता से सयुक्त घुमाये हुए पलकों के प्रताप से अमृतांशु (चन्द्रमा) को जीता है, ऐसे कामिनी के चंचल-कमलाक्ष, इन्द्रनील (एक प्रकार की मणि) के समान निर्मल गोल-गोल टुकडे स्याम-तारों से सयुक्त मालूम होते हैं।

कर्णोत्पलेनापि मुख स नाथ,
लभेत नेत्रद्युति-निर्जितेन।
यदेतदीयेन तत कृतार्था,
स्वचक्षुषी किं कुरुते कुरङ्गी॥

यदि नायिका के नेत्रों की कोमल-कान्ति से जीते हुए कर्णोत्पल द्वारा ही मुख-कमल सुन्दर लगता है तो, इतने से कृतार्थ हुई हरिणी अपने नेत्रों का क्या करेगी।

चकोरनेत्रैण दृगुत्पलाना,
निमेष यन्त्रेण, किमेष कृष्ट
सार सुधोद्गारमय प्रयत्नै-
र्विधातुमेतन्नयने विधातु।

इस नायिका के नेत्र निरूपण करने के लिये ब्रह्माने प्रबल प्रय

त्रों द्वारा, चकोर के चक्षों से, हरिणी के हृदय हारी नेत्रों से, और कमलों से, निमेष-यन्त्र द्वारा यह सुलोचन रूपी अमृत भरने वाला कोई सार खींचा है।

> ऋणी कृता किं हरिणीभिरासी-
> दस्या सकाशान्नयनद्वय श्री।
> भूयो गुणेय सकलावलय
> त्ताभ्योऽनयालभ्यत विभ्यतीभ्य ॥

क्या इस हृदय-हारिणी कामनी के समीप (पास) से हरिणियों ने युगल-नेत्रों की श्री (शोभा) ऋणस्वरूप ली थी, और इस ने पुन उन डरती हुई बिचारी हरिणियों से गुनन गरूर सम्पूर्ण श्री बलकर अर्थात जबर्दस्ती छीन ली।

> दृशौ किमस्याश्चपल स्वभावे,
> न दूरि-माक्रम्य मिथो मिलेवाम्।
> नचेत्क्व स्यादनयो प्रयाणे,
> विघ्न श्रव कूप-निपात्य भीत्या ॥

चवलता से चारु स्वभाव वाले चल (नेत्र) दूर तक आकर आपस में परस्पर क्यों नहीं मिले, क्योंकि आगे जाने पर श्रवण-(कान) रूपी कुओं में गिरने का यदि भय सयुक विघ्न पैदा न होता। अर्थात् कान रूपी कुप में गिरने का भय ही इनको अलग अलग किये हुए हैं, नहीं तो फौरन पिंडुडी से मिल गये होते।

> केदारमाजा शिशिर अनेशा
> सुएयाय मन्ये मृतमुत्पलिन्या।

जाता यतस्तत्कुसुमे क्षणेय,
यतश्च तत्कोरकदक्चकोर ॥

खेत में खचित—पैदा होने वाली उत्पलनी शिशिर ऋतु के आने पर—दधीच ऋषि की दया से दयित दशा की तरह—पुण्य प्राप्ति के लिये मृत (मरी) है, यह निश्चय है और मैं भी यही मानता हूँ, क्योंकि उस से प्रफुल्लित फूल के समान नेत्र वाली (उससे) यह नायिका उत्पन्न हुई और उस के फूल की कलिका के समान चकोर जैसा चल-कोर बना।

नतभ्रुवो लोचन-खञ्जरीटौ,
विहारमानङ्गमिहार-मेते।
कथ न सानन्द हृदो युवा न
स्तारुण्यमन्तर्निधिमुन्नयन्तु ॥

कमान—सदृश भ्रू वाली कामिनी के भूरि-भूरि प्रसंनीय नेत्र रूपी खञ्जन काम से सम्बधित हो विहार करते हैं, तो फिर अङ्गना से उत्तेजित अनोखे आनन्द से भरे हृदय वाले युवा पुरुष, यौवन से उन्मत्त नैनों को अपने हृदय रूप खजाने में क्यों न रखें।

खद शोजनयन्ति सान्त्वतां, खुरकण्डूयनकैतवान्मृगा
जितयोरुदयत्प्रमीलयोस्तदसर्वक्षण शोभयाभयात्।

उस नायिका के नोखे—(पूर्ण) नयनों की शोभा से—परवस जीते गये, हरिण। अपने निद्रित नयनों को भय विह्वल हो खुर से खुजाने के मिस मानों शान्ति देते हैं। अर्थात् खुरी से खुजला नहीं रहे किन्तु शान्ति दे सुखद कर रहे हैं।

नलिन मलिन विमृएवर्वा, पृषतीमस्पृशती तदीक्षणे,
अपि खञ्जनमञ्जनाञ्चिते, विदधाते रुचिगर्वदुर्विधम्।

कमल को मलिन करते-करते गर्वीले-गवाक्ष पृषती (एक प्रकार की नदी) नदी में नहाये (स्नान किये) और काजल से कलित कमलाक्ष द्वारा खञ्जन को भी अपनी अनोखी अभिरुचि से दुर्विदग्ध करते हैं।

श्रुतिलङ्घनमीहमानयोर्मलिनाभ्यन्तरयोरधीरयोः,
स्मृतितापकरत्वमेतयोरुचितं लोचनयोर्मृगीदृशः।

कानों को उलाँघने की (तयारी) करने वाले, और जिन के भीतर का भाग कुछ-कुछ काजल से कलुषित मृदु-मलिन है ऐसे अङ्गना के अधीर मनोहर-मृगाक्षों को याद करने वालों को दुःख हो यह उचित ही है। अर्थात् मलिन-हृदय सब को ही दुखदायी होते ही हैं।

कामिनीनयनकज्जलपङ्कादुत्थितो मदन-मत्तवराहः,
कामिमानसवनान्तरचारी मूलमुत्खनति मान-लतायाः।

कामिनी के कुटिल-कमलाक्षों के कलुषित-काजल की कीच से निकला हुआ (यह) काम रूपी प्रमत्त बराह, कामियों के चित्त रूपी वन में डोलता हुआ—माननियों के मान लता की जड़ खोदता है।

रामाविलोल-नयने किमु मीन-थालौ,
नीलोत्पले किमय वा किमु खञ्जरीटौ।
किंवा जगत्त्रयजयाय, कृतिर्न जाने,
कन्दर्प-भूपरचिता नवकार्मणस्य॥

यथा, कामिनी के चञ्चल चपलाक्ष; मीन के मनोहर बालक अथवा नील-कमल हैं; या खञ्जन की खूबियों से खचित हैं, काम की कलुषित-कल्पना की करतूत का प्रबल-उद्योगरूप यह त्रैलोक विजय करने वाला धनुष-रचना का नवीन आयोजन है।

> मुखविधुपरिवृत्तोत्तानताटङ्क पाशा-
> यथिचकित-चकोरी कान्ति चौर तदक्षि।
> त्रिभुवन-युव चेतो-बन्धसङ्केत-हेतो,
> सहचरमिव कर्तुं पाशमाशङ्कय्याति॥

मुख-चन्द्र के घूमने से हिले हुए ताटङ्क (कर्णफूल) रूप पाश चकित-चकोरी की कान्ति चुराने वाली उस अङ्गना की आँखें, त्रिलोकी के तरुण-पुरुषों को अपने दाम में फँसाने को (बाँधने के लिये) ताटङ्क (पाश) की तरफ इशारा करती है।

> यान्ती गुरुजनै सार्धं स्मयमानमुखाम्बुजा,
> तीर्यग्ग्रीव यदद्राक्षीत्तन्निष्पत्रा करोज्जगत्।

गुरु-जनों के साथ मार्ग में आती हुई नायिका ने मन्द-मुसक्यान के साथ टेढ़ी-ग्रीवा (गर्दन) कर के जो देखा तो सारे-जगत को व्यथित कर दिया। जरा भी कसर न की।

> विशालाक्षी कटाक्षस्य, साक्षी-स्पष्टो-महेश्वर,
> यत्परि महर्षियाति येन विद्धो दिगम्बर।

इस विशाल (बड़े-बड़े) नेत्र वाली बर-वामा के कुटिल-कटाक्षों के बराबर कामारि काम के शत्रु तीन नेत्र वाले महादेव

भी हैं, जब ही तो कामिनी के करारे-कटाक्ष-कोरों से विष का नम्न हैं और अभी तक प्रकृति में नहीं आते।

> यासा कटाक्षविशिखै स्मर-चौरेण ताडिता,
> हृतचैतन्यसर्वस्वा, मोहान्ते मुग्धकामुका।

उस कमलाक्षी के कुटिल-कटाक्ष-बाण द्वारा विताडित भये, हुए भोले भाले मुग्ध कामियों का इस काम चोर ने सर्वस्व (चैतन्य) छीन कर और भी मोहित कर दिया है।

> अस्या कररुहखण्डित कार्पटप्रकट निर्गता दृष्टि,
> पट विगलित नि कलुषा, स्वदते पीयूष धारेव।

नखों (नाखून) द्वारा फाड़े हुए कपड़े के छिद्र से निकली हुई प्रसारित-प्रभा समान उस कामिनी के कटीले-कटाक्षों की दृष्टि, कपड़े में छन ने के कारण स्वच्छ हुई "अमृत धारा" तुल्य पान करने योग्य है। भाग्य खुल गये "लाहौर" के अमृत धारा आविष्कारक "ठाकुर प्रसाद जी" वैद्य के ?

> वसन्त नीलोत्पल षट्पदाना,
> गीतामृत श्रोतु मिवोत्तरङ्गौ।
> नवभ्रुवो लोचन-कृष्णसारौ,
> कर्णान्तिकं सततमाश्रयेते॥

विकसित-वसन्त में नील-कमल पर बैठे हुए भौरे का गीतामृत सुन ने के लिये उत्सुक जैसे—नायिका के काली पुतली युक्त जो नैन-कुरङ्ग हैं, वे बार-बार कर्णान्तिक—कानों के समीप निमित से आश्रय ले रहे हैं—अर्थात् चकाचक मिटा रहे हैं।

नयनाञ्चल चञ्चरीक पूरोवलतेऽय यत एव पक्ष्मलाक्ष्या ,
तत एव भवन्ति नीलपक्ष्मप्रकराणा ननु वृष्टयो नवीना ।

उस पद्माक्षी के नैन-कटाक्ष रूपी जो भौंरों का प्रबल-
मुदाय है वह जिधर चलता है उधर ही काले-काले पंख वाले
रों की वर्षा सी होती है ।

यत्र-यत्र चलते शनै-शनै सुभ्रुवो नयन-कोणविभ्रम ,
तत्र-तत्र शतपत्रधोरणी तोरणी भवति पुष्प-धन्वन ।

सु भ्रू—सुन्दर-भृकुटी वाली का नेत्र-कोण तक का जो कुटिल
गतयुक्त—सहज क्रीडामय विलास जहाँ-जहाँ होता है। वहाँ
हाँ ही शतपत्र घोरिणी कमल-श्री सी पुष्प धन्वा कामदेव की
भिनन्दनीय वन्दनवार सी बन जाती है ।

भवनभुवि सृजन्तस्तारहारा वतारा-
न्दिशि दिशि निकरन्त केतकाना कुटुम्बम् ।
वियति च रचयन्तश्चद्रिका दुग्ध मुग्धा ,
प्रति नयन-निपाता सुभ्रुवोविभ्रमन्ति ॥

भवन की भूमि में विस्तीर्ण मनोहर अवतारों को रचते और
र एक दिशा में केतिकी के कुटुम्ब को फैलाते, आकाश में दूध से
नी ज्योत्स्ना ( चाँदनी ) सी फैलाते हुए एक आँखों में अटके
हते उस सु भ्रू—सुन्दर भृकुटी वाली कमलाक्षी के कुटिल-
टाक्ष घूमते हैं ।

प्रणालीदीर्घस्य प्रनिपदमपाङ्गस्य सुहृद ,
कटाक्ष व्याक्षेपा शिशुशफर फालप्रति भुव ।

सुवाना सर्वस्व कुसुम-धनुषोऽस्मान्प्रति सख ,
नव नेत्राद्वैत कुवलयदृशा स निदधति ॥

कामिनी के, हर-एक पद में प्रणाली से बड़े कुटिल-कटाक्ष सुहृद (अपने प्यारे) बाल—मीन के समान चंचल और काम के पैदा करने वाले, जहाँ पड़ते है, वहाँ हे मित्र ? कुछ नवीन ही नेत्राद्वैत बनाते हैं।

शिलासम्यग्घौतोज्ज्वल-धवल धारा परिसरा
निमानन्त श्यामानिवविषमवाणस्य विशिखान ।
दृढप्रज्ञावर्माण्यपि हृदयमर्माणि रुजत ,
कटाक्षानेतस्या मुनिरपि न सोढु प्रभवति ॥

शिलाओं पर घिसी और सम्यक प्रकार ( अच्छी तरह ) से धुली हुई उज्ज्वल ( सफेद ) धारा के समान और भीतर से काले काम सर सदृश दृढ-बुद्धि से ढके हृदय में मर्मान्तक पीड़ा करने वाले इस कामिनी के कुटिल कटाक्षों को मुनि भी सहन करने में समर्थ नहीं हैं ।

पिपासुरिव चञ्चल विकट कर्ण-कूपाञ्चल ,
तत प्रतिचलन्मुहु श्रवण पाशभीतोऽभित ।
तनोति तरला कृतिस्तरल लोचने सतत-
गतागत कुतूहल- मुहुरपाङ्गरङ्कस्तव ॥

विकट-कान रूपी कूप से डरे, किन्तु जल पान के इच्छुक और दोनों ओर के श्रवण पाश से भयान्वित हो बार-बार लौटते हुए चंचल-चपलाक्षो का जो कटाक्ष रूपी मृग है वह निरन्तर आने-जाने में आश्चर्य कारक है ।

सन्मार्गे तावदास्ते, प्रभवति पुरुषस्ताव देवेन्द्रियाणा ,
लज्जा तावद्विधत्ते विनयमपि समालम्बते तावदेव ।
भ्रूचापाकृष्ट मुक्ता श्रवणपथजपो नीलक्ष्माण एते ,
यावल्लीलावतीना हृदि न धृतिमुषो दृष्टिवाणा पतन्ति ॥

—पुरुष तब तकही सत (अच्छे) मार्ग पर रहता है, और तब ही तक ( अपनी ) इन्द्रियों पर प्रभाव जमाये रहता है, तथा उस समय तक ही शर्म करता है, व तभी तक नम्र रहता है जब तक कि—कुटिल भृकुटि-धन्वा (धनुष) से कानों तक खींच कर छोड़े हुए काजल से कलुषित काले पल वाले और धर्य की धूर उड़ाने वाले, लीलावतियों के दुद्धर्ष दृष्टि-बाण हृदय में न लगें।





नैन-निकुंज

# पदावली

# पदावली

— ❀ —

मनोहर को इन-नैंननि भाँति,
मानहुँ दूरि करति बल अपने, सरद-कमल की काँति।
इन्दीवर, राजीव कुसे से, जीते सब गुन जाति,
अति आनन्द सत्रीड़ा ता तैं, विकसति दिन अरु राति।
खजरीट, मृग, मीन, विचारे, उपमा कौं अकुलाति,
चचल, चपल, चारु अवलोकनि, चित मैं जात समाति।
जब लगि नहिं देखौं नैननि मौं, जुग समान पल जात,
"सूरदास" रस-रसिक राधिका, निमिष-निमिष अकुलाति।

❀

तेरे रे ? नैंना कारे, अनियारे, मत-वारे, प्यारे,
रतनारे, कजरारे, मीन, मृग-छौना वारे,
अजन सँवारे, खजन डारे-वारे।
नन्द के दुलारे, मोहि लीनी बसी-वारे,
प्यारे, ऐसे रे अनोखे-नैंना काहे सौं सँवारे,
"कृष्णदास" बलिहारी, तन, मन, धन-वारी सब,
विधिना सँवारे नैंकु टरत न टारे।

❀

लाल तेरे ! चपल-नैंन अनियारे,
नन्द-कुमार सुरस-रस भींने, प्रेम-रँग रतनारे।

कछु श्रम रीझे चकित चहूँ दिसि, नव-वर जोवन वार,
मानौं सरद-कमल पै खंजन, खेलति कै अलि-वारे प्यार।
किधौं मीन घन-स्याम-सिन्धु मैं, विलसत लेति झुलार,
गोवरधनधरि जानि मुकट-मनि, "कृष्णदास" बलिहार।



जादूगर रे ! थारे नैंन ,
भवाँ-कमाँन, ताँन करि तैं नैं, तिरछी मारी सैंन।
लगी करेजे मैं बरछी सी, घाइल कीनी ऐंन,
"जुगल-बिहारी" के बिनु देखैं, रंचक परति न चैंन।



देखौरी ? यह नँद का छौंना बरछी मारे जाता है,
बरछी सी तिरछी-चितवन की, सैनौं छुरी-चलाता है।
मुझको घाइल कर बे-दरदी, मँद-मँद मुसिकाता है,
"ललित किसोरी" जख्म-जिगर पर, ठंडा नौंन बुरकाता है



नैंनौं की मारी री कटारी ,
सुनियो मेरी पार-परौसिन, ढीट भयौ गिरीधारी।
सासु बुरी, घर नँनद-हठीली, देवर सुनि देह गारी,
"मधुर-अली" घर जानि बनैं ना, पीर उठी अति-भारी।



झूलति प्यारी ? नैंन-हिंडोरैं ,
बरुन-खम्भ, भौंहैं माई री ? दृष्टि-किरन-डाँडी पटुली
पटली-अधर, कपोल-सिंहासन, बैठे जुगुल-रूप रति-जोर,

...नी-चमर, दुरत चहु ओरैं, लर-लटकति फुँदना चित्त-चोरैं।
...रि देखति अलकावलि अलि-कुल, लेति पवन झकझोरैं,
...च घन, आड-दामिनी दमकति, माँगि इन्द्र-धनु करत निहोरैं।
...कित भए मडल-जुवतिन के, जुग-ताटक लाज मुख मोरैं,
"रसिक प्रिया" रस-भाव भुलावति, त्रिबिधि कटाच्छ-तान तृन तोरैं।

❀

मैं जानी मदन-सदन मोंहन जू की अखियाँ,
निरखति मान हर्‍यौ मानिनि कौ, हारि रही सब सखियाँ।
कोई इक चित-मति चितै कुँनरि तनु, पूरी मन-अभिलखियाँ,
...भट" अटक छुटी घट अन्तर, मद-मद हँस-मुखियाँ।

❀

रँगीले-नैंना तेरे हो ? कब देखौं गिरि-धरन,
सरद मुख सुन्दर यन्यौं-वर त्रिविध-ताप हरन।
स्याम, सेत, रतनारे-प्यारे, भाव सु-विविधि करन,
मीन, कमल, खजन, चकोर, अलि, भए मृग हू सरन।
राधिका रस-रसिक-लपट, कुच-सरोज भए धरन,
गावै कहा "कृष्णदास" हित, मुरली-तान-ढरन।

❀

लाल ? तेरे लोभी, लोलुप-नैंन,
किहि रस छकनि छके हौ छबीले। मानति नाहिंन चैंन।
नींदरि नैंन घुरी आवति अति, घुरि सी रही चछु नैंन,
"अलिबेली अलि" रस के रसिया, कत बतरे कहुँ रैंन।

प्यारी तेरे ? नैंननि कौ व्यौहार,
रूप-तुरग चढ़े मद-मौंति, मृग-मन करति सिकार।
भौंह-कमान रहीं चढ़ि दिन प्रति, 'चितवन-बान सुधार,
सहज अरुन अति घूम-घुमारे, खूनी-खून सुमार।
काजर-रेखु अनी अति-तीखी, निरखि डरति सत-मार,
"अलियेली अलि" प्रान विहगम, परे प्रेम के जार।

❀

तुव मुख-कमल, नैंन-अलि मेरे,
पलक न लगत, पलक बिनु देखें, अरबरात अति फिरत न फेरे।
पान करत मकरद-रूप-रस, भूल नहीं फिर इत-उत हेरे,
"भगवत रसिक" भए मतवारे, घूमत रहति छके मद-घेरे।

❀

तेरौ मुख-चद, चकोरी मेरे नैना,
अति-आरत, अनुरागी लपट, भूलि गई गति पलहु लगै ना।
अरबरात मिलिबे कौं निसि-दिन, मिलेई रहत मनौं कबहुँ मिलै ना
"भगवत रसिक" रसिक की बातें, बिना रसिक कोउ समझि सकै ना।

❀

व्यौपारिन हैं, नैंन-बिसाल,
बेचनि आईं, बिबिध गुलाल।
रग-पौरि के आगें डोलै, बोलै बचन-रसाल,
लेहु बुलाइ भेजि "गुन मजरि" सुन्दर मदन-दलाल।

❀

सखि ? ए दृग, वा रूप लुभाने,
मचलि रहे ससि-मुख निरखनि कौं, जा विधि बाल-अयाने।

लोक-लाज, कुल-धरम-खिलौंना दए तऊ नहिं मानें,
"नाराइन" सोऊ हनि फोरे, ऐसे निडर-सयाने।



मोंहन के अति नैंन नुकीले,
निकरैं जाइ पार हियरा के, निरखति निपट-गँसीले।
ना जानौं बेधति अनियनि कौं, तीन-लोक तैं न्यारी,
ज्यौं-ज्यौं छिदति मिठाति हिए मैं, सुरख लागत सुकुमारी।
जब सौं जमुना-कूल बिलोक्यौ, तब सौं नींद न आवै,
उठति मरोर चख-चितवनियाँ, उर उतपात मचावै।
आग लगै इहि लाज-निगोडी, दृग भरि स्याम निहारौं।
"ललित किसोरी" आजु मिलैं तौ, सब कुल-काँनि बिसारौं।



नैंन नहिं मेरे हाथ रहे,
देखति दरस स्याम-सुन्दर कौ जल की ढरन ढरे,
वह नीचे कौ धावति आतुर, ऐसे ही नैंन भए,
वह तौ जाति समात उदधि मैं, ए प्रति अंग रँए।
वह अगाध कहुँ वार-पार नहिं एऊ न सोभा पार,
लोचन मिले त्रिबैनी ह्वै कै, "सूर" समुद्र-अपार।



जे लोभी ? ते देंइ कहा री,
ऐसे निठुर नाहिं जाने री, जेसे नैंन महा री।
मन अपनौ कबहूँ बस ह्वै-है, ए नहिं हौंहिं हमारे,
जब तैं गए नंद-नंदन ढिंग, तब तैं फिरि न निहारे।

कोटि करौ वे हमहिं न मानैं, गीधे रूप अगाध।
"सूर-स्याम" जो कबहूँ आवैं, रहै हमारी साध।

■

लोचन भए अतिहीं ढीट,
रहति हैं हरि सग लागे, निसि दिन सबल अहीट।
चदत हैं काहू नहिं निधरक, निदरि मोहि न गनत,
बार—बार बुझाइ हारी, भौंह मो पर तनत।
ज्यौं सुभट रन देखि टरत नाहिं, लरत टेव प्रचार,
"सूर" छवि मनमुरा ही धावत, निमिस अखत हार।

❀

रग अनग भरे, प्यारी जू के नैंन रसीले,
खजन, मृगन मैंन—मद गजन,
मौहन दगन लरैं रति-समर अरीले।
रतनारे, सित, कारे प्यारे,
कुटिल कटाच्छ रति-रन ममकीले,
अलि-सुत अबुज, कुमुद निनिंदक,
केलि-कलह अगरे पिय-प्रान हरीले।
फोर-दार बिछुआ अनियारे,
सुरमा-सॉन धरैं अति निपट गँवीले,
"ललित किसोरी" सुभट अलौकिक,
जा रस-खेत टरैं पै टुक सकुचीले।

विहारी नैं भरि दियौ नैंन गुलाल ,
[illegible]ग्यक्त है निस्सति नहिं क्यौंहूँ, देखि सखी ? यह हाल ।
[illegible]ोइ—धोइ हारी मैं इन कौं, मींडति ह्वै गए लाल ,
"हीरा सखि" कढि गयौ गुलाल पै, कढ्यौ नहीं नँदलाल । *



सखी ? ए नैंना बहुत-बुरे ,
तब सौं भए पराए हरि सौं, जब सौं जाइ-जुरे ।
गौंहन के रस-बस ह्वै डोलति, तलफति तनकि दुरे ,
मेरी सीस प्रीति सब छाँडी, ऐसे ए निगुरे ।
जग खीज्यौ, बरज्यौ पै ए नहिं, हट सौं हटकि मुरे ,
अमृत-भरे दिखैं कमलन पै, विष के भरे छुरे ।



कमल सी अँखियाँ लाल ? विहारी ,
[illegible]न सौं तकि-तकि तीर चलावत, वेधत छतियाँ आँनि हमारी ।

---

* इसी भाव पर "पद्माकर जी" का बडा सुन्दर एक कवित्त [illegible]या —

> एक सग धाए नंदलाल औ गुलाल दोऊ ,
> भरिगौ दगन बीच आनँद मढै नहीं ,
> धोइ-धोइ हारी "पदमाकर" तिहारी सौंह ,
> दूसरौ उपाइ कछु चित्त पै चढै नहीं ।
> कहाँ जाऊँ, कहाँ करौं, कौंन सुनैं, कासौं कहौं ,
> कीजिए उपाइ जातैं दरद बढै नहीं ।
> एरी मेरी वीर ? जैसैं तैसैं इन नैंननि तैं ,
> कढिगौ अवीर पै अहीर कौ कढै नहीं ।

इन्हैं कहा कोऊ दोप लगावत, ए अजहूँ न सँभरी,
"श्री विट्ठल" गिरिधारि कृपा-निधि, सूरत ही सुलझरी।



अरी ? तेरे नैंन ललौहे, जिन्ह मोहे स्याम-सलौन,
अति ही दीरघ, बिमल बिलोकनि, कटाच्छन
कोरनि, भारे पिय-रस भींजे, रँगे कौन।
बदन-जोति चदहु तैं निरमल, कुच-कठोर,
भुज—मृनाल, बक टटा बक टौन
"जनि गोविंद" प्रभु, चलति ललित-गति,
कसौटी-लीक परी मनौं सौंने



उनींदी-आँखैं रग भरी, दुरति नहीं पट ओट,
खजन, मीन, मृग, छीन भए हैं, वारौं लाख करो
दुरनि, मुरनि झमकति अनियारे, चचल करत हैं प
"चतुर निहारी" प्यारी की छबि, निरखति यारौं रस की प



नैंन माई ? नाहीं करत कह्यौ,
कहा करौं, कैसैहुँ नहिं छोरैं, जो हठ दरसि गह्यौ।
आवति हुती सहज मग अपने, चपलन उलटि चह्यौ,
निगम सरूप, धाइ रसन रसन मैं, रोभित चाह रह्यौ।
जो मत लयौ, प्रथम ही निरखति अवहु सो निबह्यौ,
"विद्यापति" गोपारा, सदौं इन, आँखिन लागि रह्यौ।

अँखियन ऐसी टेव, परी ,
रहा करौं वारिज-मुख ऊपर, लागति ज्यौं भ्रमरी।
हरखि-हरखि पीतम-मुख निरखति, रहति न एकु-घरी ,
ज्यौं-ज्यौं राखति जतननि करि-करि, त्यौं-त्यौं होति खरी।
गाढ़ करि, रहीं रूप-जल-निधि में, प्रेम-पियूप भरी ,
"सूर दास" गिरिधर-पग-परसति, लूटत निधि-सगरी।

❀

मोहि लई इन-नैंननि की सैंन ,
मन सुनति ही सुधि-बुधि सब बिसरी, लुबधी मौहन-नैंन।
कमल-नैंन खिरक तैं आवत, बात कही हँसि ऐंन ,
"रमानँद" प्रभु नन्द-दुलारे, गाय कही दुहि दैंन।

❀

नैंन माई ? अटके साँवल-गात ,
निरखि निरखि सादर चकोर ज्यौं, मुख ससि मुरि-मुसिकात।
रहा करौं यह बनी कहाँ तै, नैंकु न इत-उत जात ,
भए रहैं नौका के खग ज्यौ , बिसरि गई सब-बात।
कटि पट-पीत, सुमन उर माला, निरखति नैंन सिरात ,
मकराकृत-कुंडल कपोल छवि, अंबुज-बन जिमि प्रात।
सुभग सुजन मनि-भूषन राजति, पद-अंबुज सुख दात ,
"विद्यापति" गोपाल बिलोकति, निमिष नहीं अनखात।

❀

लगन इन नैंननि की बाँकी ,
देखें हूँ दुख, बिनु देखै हुँ दुख, पीर होति दुहु-बाँकी।

टारी-टरति न टरति निनु देखै, जाहि फबति है साँकी,
"रसिक राइ" पीतम-मन अटक्यौ, कहूँ लगति नहिं टाँका।



सखी री ? लोभी मेरे नैंन,
बिनु देखे घट-पट सी लागति, देखति उपजति चैन।
मोर मुकुट काछै पीताम्बर, सुन्दरता कौ ऐंन,
अंग-अंग छवि कहि न परति है, निरखि थकित भयौ मैंन।
मुरली ऐसी लागति स्रवननि, चितवति खग, मृग, धैंन,
"परमानन्द" प्रेम कौ ठाकुर, ठाढो देख्यौ सैंन।



मन-मृग वेध्यौ नैंन-बान सौं,
गूढ भाव की सैंन अचानकि तकि मारी भृकुटी-कमान सौं।
प्रथम नाँद बल छोरि निकट लै मुरली-सुर-सप्तक विधान सौं,
पाछै वक-चितै मृदु-हँसि कैं घात करी उलटी सुठान सौं
है है सुख तनही उर अंतर आलिंगनि गिरिधर-सुजान सौं
"चतुरभुज दास" पीर यह तन की मिटै न औषध आन सौं।



लोचन भए स्याम के चेरे,
एते पै सुख पावति कोटिक मो-तन फेरि न हेरे।
हा-हा करति परति हरि-चरननि ऐसे वस भए उनहीं,
उन कौ वदन विलोकति निसिदिन मेरौ कह्यौ न सुनहीं।
ललित-त्रिभंगी छवि पै अटके,-फटके मोसौ तोरी,
"सूरदास" हम पै रिमि कीनीं प्रेम स्याम सौ जोरी।

स्याम-रँग रँगे रँगीले-नैंन ,
धोऐं छुटति नाहिं इहि कैसेहुँ, मिले पिघल कै मैन ।
ए गीधे नहिं टरति उहाँ तै मोसौ लै न न दै न ,
"सूरज" प्रभु के सँग-सँग डोलति नैंकहु परति न चैंन ।



, सजनी ? मोतै नै न गए ,
अब ना आस रही आमनि की, हरि के अग छए ।
जन तै कमल-वदन उन दरस्यौ दिन दिन और भए ,
मिले जाइ हरदी चूने ज्यौं एकहि रग रए।
मोकौ तजि भए आप स्वारथी अति रस-मत्त-मए ,
"सूर" स्याम के रूप सामनै मानौ बूँद वए।



नैंननि ऐसी वान परी ,
बिनु देखै गिरिधरनलाल-मुख जुग भरि जात घरी ।
मारग जाति उलटि तन चितए मो-तन दृष्टि भरी ,
तन ही तै लागी चट-पटसी कुल-मरजाद टरी ।
सरवसु हरि, मन हरि, हरि लीन्हौ , देह-दसा विसरी ,
"चतुरभुज दास" छुडावन कौं हठि मैं विधि बहुत करी ।



बरजौ कोटि-घूँघट की ओट ,
तोऊ न रहति नैंन अनियारे, निकसि करति हैं चोट ।
पाछै फिरि देखे-कोऊ ठाडे सुन्दर-वर इक ढोट ,
"परमानँद" के प्रभु रति नाइक, लई प्रीत की पोट ।

लाल ? तेरी चितवनि चितहि चुरावै,
नंद-गाँउ वृषभानु-पुरा बिच गैल चलनि कोऊ नहिं पावै।
हौं तौ डरि डरि चलति झिझकि कै, ललिता दगन चलावै,
"कुंभन दास" प्रभु गोवरधनधरि धन्यौ सो क्यौं न बतावै।



लोचन अति ही लालची भए।
रोकैं रहति न प्रेम के माँते पलक-कपाट दए।
लै मन-दूत पवन ह्वै निकसे स्याम समीप गए,
"सूर" के प्रभु खरे सौदागर, बिनु धन मोल लए।



तेरे ? लोचन लालचि करति,
पिय के नैंननि सनमुख चितवति, भूलें नैंकु न टरति।
कबहुँक सु-मुख तिरीछे ह्वै कैं, नव-रँग कौ मन हरति,
"कृष्ण दास" प्रभु गिरिधर नागर, सैंननि दै-दै लरति।



स्याम ? तेरे डहडहे नैंन-कमल, फूले निमल-सरोवर,
सोभित तारे, अति कजरारे, मानौं वींच परे री ? मधुकर।
ढुरनि, मुरनि, चितवनि ललचौंहीं चपलौंहीं अँखियाँ मन-हर,
वरुनिनि की छबि देखि सु रीझे, सुवस किए तैं नंद-कुँवर वर।
लोचन-ललित काम-दुख मोचन, वरु जीते हैं समर सर,
"मुरारि दास" प्रभु तिहारे ऐसे दग, मृग-सुभाव, हाव कर।

प्यारी ! तेरे लोचन लौंने-लौंने ,
स के आल-वाल रँगीले बिसाल पाछैं भए न आगैं हौंने ।
प रिझौंने मुसिकाइ चलति जब कौंन काम के टटावकटौंने ,
"नंद दास" नँद-नन्दन नैंननि, नैंकु नाहिं नें हौंने ।



अरी ? तेरे नैंना लौंने, जिन मोहे स्याम-सलौंने ,
अति ही दीरघ बिसाल-बिलोकनि, कारे पिय-रस रिझिए कौंने ।
दन जोति चँद हु तैं निरमल, कुच-कठोर अति हौंने धौंने ,
"तान सैंन" प्रभु सौं रति मानौ, कंचन कसनि कसौटी के सौंने ।



ए अँखियाँ प्यारे ? जुलुम करैं ,
र महरैटी, लाज-लपेटी, झुकि-झुकि घूँमैं झूमि परैं ।
गरि प्यारे ?, होहु न न्यारे, हा हा तो सौं कोटि ररैं ,
"राज सिंह" कौ स्वामी नगधरि, बिनु देखैं दिन कठिन भरै ।



अरी ? इन अँखियन सौं पचिहारी ,
ए मेरे बस नाहिं भईं, हौ अपने बस करि डारी ।
इत उत चमकति रहति चकित ह्वै, देखे बिना दुख्यारी ,
जब ही दृष्टि परति मौंहन-मुख, जाति न तनकि सम्हारी ।
कब लगि लै निबहौं इन भाँतिन गृह, कुल-काँनि बिसारी ,
"नागरि दास" भईं ए बैरिन दैंउ कहा कहि गारी ।

हो रँगीली-बाजी लागि रही नैंणाँ में,
जोंणीं काम कटाच्छाँ हीं का, देखि दाव दै सैणाँ में।
काँपे अग अनग-रग सुर-भग हुवौ वैणाँ में,
"रसिक विहारी" मन फूल बढि भई, हार जीत छै सैणाँ में।



अमौंनी-अँखियाँ दरस-दिवानी,
रूप-आग विच घेसक हुई गिरदी, खुभी आँन अरराना।
इश्क-अमल सैं झुकी रहैंदी, छिन छिन वरसति पानी,
"नागरि" नवल इते पर दिलवर, हूवा रहति गुमाना।



अरी ? इन अँखियन कैसै समुझाऊँ,
ए थत जाइ मिलति बरजोरी, हौं गहि गहि लै आऊँ।
तुम जु कहति यै निडर भई, हौं बिनु देखैं अकुलाऊँ,
"नागरि" स्याम गई हौं देखनि, वा दिन कौं पछिताऊँ।



ए अँखियाँ काहू की न भई,
है परसिद्ध ससार कहानी, कहति हौं नाहिं नई।
कहिऐ कहा महा-अरबीली, बरजो तितहि गई,
"नागरि दास" लाल गिरिधर-कर मोकौं बाँधि दई।



तीखे नैंन कन्हाई ? सैंडे पल-पल खून करदे,
भौंहैं तो कमान-तणीं, पलकै तीर परदे।

किते घायल परे कराहैं, दिल नहिं धीर धरदे ,
"रसिक बिहारी" नित वार करंदे टारे नहीं टरदे ।



कन्हैया, माई ? आँखिन होरी मचावै ,
अँखियन मैं अनुराग-अरुनई, अँखियन रंग रचावै ।
अँखियन मैं ललिचाइ लालची, अँखियन मैं ललिचावै ,
"नागरि दास" पैठि अँखियन मैं, फिरि अँखियन तरसावै ।



दुरत नहीं पट ओट आँखें-कनौंवडी ,
मोहन तन दै रहीं पीठ प, ईठ पगु पग-पावडी ।
लगे रूप के लोभ सौं, रोकै नैंकु रुकैं न ,
कहा कहौ इनकी दसा, महा-लालची नैंन ।
झुकीं लाज के भार परति हैं, उमडनि नेह अमौंवडी ॥
रूप-रासि-धन पावहीं, छिनकि न तऊ अघाँनि ,
"नागरिया" दृग-लालची, तजति न लालचि-बानि ।
सब दिसि सूधै चलति नागरी, उहि दिसि आँखडी बाँवडी ॥



राधे ? तोरे नैंन अति-बाँके ,
चंचल, चमकति, चलति दृगंचल, मदन-भूप के हाँके ।
खंजन, मीन, कुरंगन की छबि, एकहि छिन सब ढाँके ,
"श्री रघुराज" निरखि जिनकौ मन-मोहन के मन थाके ।

हरि के दृग हलकारे, भटकि चलै चहुँ-ओरै,
प्रीति-पत्रिका, प्रेम-खलीता, काम छाप धरि दौरै।
कामिनि-नैन द्वारि-द्वारे मैं, बहु विधि करै निहोरै,
"श्री रघुराज" नचाइ पूतरी। ब्रज-वनितन चित-चोरै।



प्यारे ? तेरी नैन-अनी अति-चोखी,
रस की बाढ़, रंग आनँद कै, मदन-भूप की पोखी।
फूटति, लगति, सुरति सब छूटति, हनहिं जाहि जब धोखी,
"श्री रघुराज" कहाँ तुम पाई, ऐसी चीज अनोखी।



घूँघट वाली ? तोरे नैंना, जैसे ब्याधा टाटी ओट
रसिक-मृगन पे हाइ करति हैं, छिपै-छिपै नित चोट।
मारत नाहिं घाइल करि छाँडति, ऐसे मन के खोट॥



कैसी मारी रे ? नजरिया, नैंना जादू से भरे,
आँखें कमल की कलियाँ तिरछी-भौंह कमान करे।
नक-बेसर, नथिया, लटकन अरु, पलकन-तीर धरे॥



नैंन की मत-मारौ तरवरिया,
मैं तो घाइल बिनु चोट भई रे? कहर करेजे करिया।
काहे कौं सौंन देति भौंहन की, काजर नैंननि भरिया,
"हरीचंद" बिनु मार मरत हम, मत लावौ तीर-कटरिया।

मेरे ? नैना मानति नाहीं,
लोक-लाज-सीकर मैं जकरे, वऊ उतै खिच जाही।
पचिहारे गुरु-जन सिख दैकैं, सुनति नहीं कछु कान,
मानति कह्यौ नाहिं काहू कौ, जानति भए अजान।
निज चवाव सुनि औरहु हरखति, उलटी-रीति चलाई,
मदिरा प्रैम पिऐं पागल ह्वै, इत-उत डोलति धाई।
परवस भए मदन-मौहन के, रंग-रँगे सव-त्यागी,
"हरीचंद" तजि मुख-कमलन अलि, रहैं किते अनुरागी।



नैन ए लगि कैं फिरि न फिरे,
निठुरी-अलकन मैं फसि-फँसि कैं, रहि गए तहीं घिरे।
पचिहारे गुरुजन, सिख दै कैं, नाहिंन रहति थिरे,
"हरीचन्द" पीतम-सरूप मैं, डूबे फिर न तिरे।



सखी ? री ए अँखियाँ रिझवारि,
देखति ही मौहन सों रीझी, सव कुल-काँनि विसारि।
मिलीं जाइ जल-दूध मिलै ज्यौं, नैंकु न सकीं सम्हारि,
सुन्दर-रूप निलोकति रपटीं, काचे घट जिमि वारि।
अव विनु मिलैं होति हैं व्याकुल, रोवति निलज पुकारि,
अपने फल करि हमहिं कनौडी, औरु दिवावति गारि।
लोक-लाज, कुल की मरजादा, तृन सम तजी विचारि,
"हरीचंद" इन कौ को रोकै, विगरीं जग हि विगारि।

सखी ? ए नैना बहुत-बुरे,
तब सौ भए पराए, हरि सौं जब सौं जाइ जुरे।
मोहन के रस बस ह्वै डोलति, तलफति तनिक-दुरे,
मेरी सीख, प्रीति सब छाँडी, ऐसे ए निगुरे।
जग-खीझयौ, बरज्यौ पै ए नहिं, हठ सौं तनकि-मुरे,
"हरीचद" देखति कमलन से, विष के बुते-छुरे।



तोरे पर भए मत-वार रे नयनना,
लोक-लाज, जस-अजस न मानै, सरस-रूप रिझवार रे नयनवा।
मदिरा-प्रेम पियै मतवारे सब सै करत निगार रे नयनवा।
"हरीचद" पिय-रूप दिवाने, करत न तनक विचार रे नयनवा।



नैन-निकुंज

# कवित्त

## कवित्त



महा-कजरारे, मृग-सावक तैं न्यारे,
दूरि खञ्जन निहारे, निरखें तें जाहि चैन हैं,
कैधौं अलि कारे, मनौं भूमैं मतवारे,
किधौं तामरस वारे, किधौं खञ्जर के ऐन हैं।
कैधौं जुग-मीन धर्में सुन्दर-सरोवर में,
कैधौं काम खरसान चढे तीखे अतिपैन हैं,
और अग अगन की सोभा "मान" कहा कहै,
देखो स्याम ? साँवरी के कैसे नीके नैन हैं।



नैन अरसीले, सरसीले, अति-रस भरे,
पियस-दर्सीले, औ रँगीले रँग-रँगे से,
निपट हठीले, अरबीले, रसकीले जनु,
गुनन गर्सीले, गर्वीले रस पगे से।
कछु मुसिक्याँहे, तिरछौंहे, सकुचौंहे कछू,
होति जाति नींदि, मन मोंहि पग लगे से,
रनिव-ससौंहि, कछु लाल ललिचौंहि जनु,
जाचक जचौंहि ढिग डोलैं डग-मगे से।

हिरन हिराने कहुँ पहारनि मैं हेरि नैन,
मीन हूँ समाने जल, कज, रन पाके हैं।
रूप की वजार मद पीके मतवारे भए,
कैधौ हुद्दार बने अनँग की अनी के हैं।
"नद राम" कैधौ ए कटार हैं कटाकर की,
आँकर के अन्त कनि भाग बरछी के हैं।
सान पै धरे हैं खरसान पै धरे हैं किधौ,
कैधौ पचवान इन्हैं-ओपे ओप नीके हैं।



कारे कजरारे, रतनारे, अरविंद सम,
चपल-दराज अनियारे सुख कारी हैं।
"भनत दिवाकर" कुरंग, बान, खजन से,
गजन करति स्याम अजन किनारी हैं।
झुकि-झुकि झाँकति झरोखा लगे साँन भरे,
लागै बनवारी कै लोह की कटारी हैं।
मोरि-मोरि लेति मुसिकाइ दृग घूंघट मैं,
मार कै फिरति ज्यौ सिकार की सिकारी हैं।



लजीले, सकुचीले, सरसीले, सुरमीले से,
कँटीले औ कुटीले, चटकीले, मटकीले हैं,
रूपके लुभीले, कजरीले, उनमीले, बरछीले,
तिरछीले से फँसीले औ गसीले हैं।

"ललित किसोरी" झमकीले, गरबीले, मनौं,
अति ही रसीले, चमकीले औ रँगीले हैं,
अनि के छकीले, कछु नीले से नसीले अलि?,
नैन नंदलाल के नचीले औ नुकीले हैं।



भूषन के भार तैं सँभारति बनै न अंग,
मंद-मंद चाल तैं गयंदन लजाती हैं,
जोरि-जोरि-जोरि हिल-मिल कैं निकुंज माँहि,
आवत चली यौं सबै आपुस में भाती हैं।
ठाडौ "कमला पति" छबीलौ-छैल देखि तिन्हैं,
तिरछी-चितौंनि हीं तैं लखि मुसिकाती हैं,
मैंन-मदमाँती, इतै बार बार आइ लखि,
नैंन-तरबार बार करि-करि जाती हैं।



होते अरबिन्द से तौ आइ कै मलिंद-बृंद,
लेते मधु-बूंद बुंद तुंद के तरारे से,
खंजन से होते तौ प्रभंजन परस पाँइ,
उड़ते दुहूँ घाँ तैं न रहिते नियारे से।
"ग्वाल कवि" मीन से, मृगीन से जु होते तौ,
जल, बन माँहि दोऊ दौरते करारे ए,
याते नैन मेरे खरे लोह से हैं काहे तैं कि,
खैंचि लेति प्यारी चख-चुंबन तिहारे ए।

मीन, मृग, खंजन, खिमान भरे नैन-बान,
अधिक गिलान-भरे, कंज कल जाल के,
राधिका-छबीली की छहर-छबि छाक भरे,
छैलता के छोर-भरे, भरे छवि-जाल के।
"ग्वाल कवि" आँन भरे, साँन-भरे, स्याँन-भरे,
कछुक अलसाँन-भरे, भरे माँन-माल के,
लाज-भरे, लाग-भरे, लोभ-भरे, लाभ भरे,
लारी-भरे लाड-भरे, लोचन हैं लाल के।



धरि-धरि आयौ है करीर-कुंजताई तौ पै,
करि ततबीर पीर हरि लाल-लाखे-सुनि।
गैयन की भीर हूँ जो संग बलबीर मेरे,
देखि तहाँ बीर चीर-चंपक से नाखे चुनि।
"ग्वाल कवि" सोभा तै सरीर में उछाह रही न,
कढी चँद-चीर चारु जाँहि नहिं भाखे गुनि।
चीर के न देखे, पंच-बीर के न देखे, पेखे,
जैसे तीरकस रंग, तीर कसि राखे गुनि।



खेल की न रही सुधि, सुधि की चलै न कछु,
हौंन लगी बढवार बिरहा के बेल की,
ठेलगी हिए मैं पीर, धीर जिय कैसे धरौ,
करै को अधीर बूँदै भल-भल बेल की।

फेनि की कला कौं चित चाहौं कहैं "लाल कवि",
है है कन हाइ यह घडी रँग-रेल की,
सेन की, गुलेल की, न सेल की कठिन केल,
जैसी चुभी पेल या प्रिया के नैन-मेल की।

❁

चैन करै काहू सौं, अचैन करै काहू कौं,
चैन करै काहू कौ जलावै सैन सेज से,
कहूँ सौ इसारि अँगियान के इसारे करै,
काहू सौं कहति लाड छला मैं कहे जेसे।
"ग्यानकवि" प्यारे सौं खेलि-खेलि मार-फाँसे,
लेति मन धन री! हँसि कैं मजेजे से,
नैन परे जे, कतरंजे काम-घाती करि,
छि... करेजे बीच करे दो नैन नेजे से।

❁

खञ्जन-खरीन, मीन-मार के उमाँ पे देति,
ताँके देति मृग-मद कज पे कहाँ के हैं,
दौर-दौर भँवर भ्रमति जाके वाके मग,
"मागर" चकोर कहैं चपल-चलाके हैं।
रमे ना रमा के, ना उमा के, ना तिलोत्तमा के,
परदन हरीन पच-धार प्रति वाके हैं,
हैं न मधुपेला के कमारे मैनका के नैन,
नैन सुखमा के नैन-बाँके राधिका के हैं।

गजा गिले खजन की भौर-भै कजन की,
वार निधु मजन की अजन समेति हैं।
नेह-भरे सागर, सनेह-भरे दीपक से,
मेह-भरे बादर, सलौने लरि-लेति हैं।
तरल-त्रिबेनी की तरगनि में "तारा कवि",
मानों सालिगराम के अस्नानहि निकेति हैं।
मृग-मद लागे, सारा-मृग दृग दागे मैंन,
छाजन में पागे नैंन ऐसे सोभा देति हैं।



परम-प्रवीन मीनकेतिक के मींन किधौं,
सुख के सरोज हैं कला से प्रिय भान के,
खजन मिले हैं किधौं, सरद-सुरज-चन्द सौं कि,
जोरे हैं कुरग रथ-वाहन समान के।
मुनिन के मन हूँ उपजावति अनेक-भाव,
मेरे जान एही हैं निखिरि पच-बान के,
बाल? तेरे नैंननि की बिसाल-साल सौतिन कैं,
"बलभद्र" साने हैं सुहाग सरसान के।



चचल-विसाल मींन, खजन मृगा तैं बेसु,
ताकनि-तिरीछी भई जब दृग जूटी की,
मृदु-मुसिकाइ, रूप-झलक दिखाइ फेरि,
मोर-मुख दीन्ही जोर, डोर प्रीति-टूटी की।

"भनैं रघुनाथ" भरी आँनद-अटूटी लखि,
छूटी मान-बान कान्ह सहि रत-चूटी की,
लूटी सौति-साँन, आँन-मैंडि सब फूटी देखि,
नेजा, नैंन-चूटी सैंन नवल-बधूटी की।



सूर सूरमों के सैंन काम-जग जीतन कौं,
साजे दृग अक-कोर कौंन नैं सँवारे हैं,
भनत "दिवाकर" सुधाकर न लेस लखै,
चकित सुरेस, छोडि आसन सिधारे हैं।
बैठि कैं नजीक चारु-चमर डुलावैं फेरि,
हेरि जोड-दारन कौं करति इसारे हैं,
उपमा त्रिलोकति हू लोक मैं न आवै प्यारी,
बरुनी-बिलास जैसे राधिका तिहारे हैं।



तेरे जुग-नैंननि की बरुनी घनी-घनी,
मानौं है-मीनन की कनीन के लुज हैं,
सील पे द्रु-रूप चरन-पल मुख बन्धन पै—
कचन-कँगूरा ए मनोज रचे सुज हैं।
भनैं "रघुनाथ" किधौं सोभा के सरोवर पै,
सुधर बँधाननि पै दर-द्रुम-सुज हैं,
पूरी-मनोहर किधौं पातुरी ये चैल-छोर,
कैधौं नैंन-सुभट सुधारे ससि-पुज हैं।

बाँके, सक हीने, राते-कज छबि छीने, माँते,
झुकि-झुकि झूमि-झूमि काहू को कछू गनैं न,
"द्विज देव" की सौं ऐसी बानिका बनाइ बहु—
भाँतिन बगारैं चित्त-चाहना चहूँधा-चैन।
पेरि परैं पात जो पै, गातन उछाह भरे,
बार-बार तातें तुम्हें बूझती कछूक-बैन,
ऐहो ब्रजराज? मेरे प्रेम-धन लूटिबे कौं,
बीरा खाइ आएँ कितौं आप के अनौंखे-नैन।



रूप-रस चाखैं, मुख रसना न राखैं फेरि,
आँखैं अभिलाखैं तेज उर सौं सम्हारि वीं,
"कहै पदमाकर" त्यौं काँनन बिनाहूँ सुनै,
आनन के बैन यौं अनौंखे अग धारितीं।
बिना पाँइ दौरै, बिनु हाथन हथियार करै,
कोर के कटाच्छन पटा से भूमि झारितीं,
पाँखन बिनाहीं करैं लाखन ही बार भ्रावै,
पावती जो पाँखे तौ कहा धौं करि डारितीं।



कमलन फीके हैं, सँवारे सुघरी के हैं,
सुन्दरता सी के हैं, सती के हैं, रती के हैं,
खजन अनी के हैं, गजन मनी के हैं,
कै रजन-धनी के हैं, कै भजन-भ्रमी के हैं।

ऐसे हरि नींके हैं, न ऐसे हरिनी के हैं,
न राज-रमनी के हैं, न काम-कमनी के हैं,
नैंन मैंन जी के हैं, कि बैंन-बैंन जी के हैं,
कै सोभा मूल ही के हैं, कै प्यारी प्रान-पीके हैं।



खजन खिजाति, जल-जात ही लजाति हेरि,
हिरन हूँ हिरात, मुकता न ठहरात हैं,
पचसर कीन्हे रद, भौंरन के भूले मद,
नट से विचित्र चित्र हिय हहरात हैं।
दीपक मलीन, छीन, मींन लागै मेरे जान,
भींने तीन-रग तातै अति इतरात हैं,
"परवत" प्यारे मकसूदन! तिहारे दग,
मारत निसक ना कलकहिं डरात हैं।



आगै हुती और, अब और सौं भई तू और,
ठौर न रहति छिन छाँडी सँग-सखियाँ,
मौंहन कौ नाम सुनि रूठी है लजौंहीं होति,
जात तिरछौंहीं, ठाड़ी रहति न रखियाँ।
ऊँची भौंहैं, नींची दीठ, दीठ न मिलाति सौंहैं,
"नागर" नवल-नेह चाखी रस चखियाँ।
औंड़ी भली जानिबे कौ, डौड़ी तौ न फेरै कोऊ,
औंड़ी बात कहति "कनौड़ी" तेरी अँखियाँ।

कहति विसाखा वदि, वडी-आँखै प्यारी जू की,
जैसी सीप सिन्धु के झकोरन की झखियाँ,
ललिता न मानै, हठ ठानै यौ वखानै—
आँखै लाल की वडी हैं ज्यौं पकज की पखियाँ।
"नागर" वहसि सुनि नैंन-नैंन जोरिवे कौ,
सर के हैं नीरै झूमि आईं सब सखियाँ,
रीझि प्रान-वारे न सम्हारे अग रग-भरी,
जा समैं नपीं हैं लगि अँखियाँ सौ अँखियाँ।



हाँसी है विहारे भाइ, औरन कौ घर जाति,
नाँहक परायौ मन लैंन क्यौ उमहिए,
तुमही कै वडी, वड लालन अनौखी आँखै,
वरजौ जू कैसें लोक-लाज लै निवाहिए।
दोऊ-कर जोरि-जोरि विनती करति हहा,
"नागर" हौ नैंसुक दया की रीति गहिए,
ढारति हैं मारैं, परी गौंहन हमारे इहि,
रावरी-चितौन कौ सम्हारे नैकु रहिए।



मोतिन तैं सोरे औ ईंगुर तैं राते-रते,
काजर तैं कारे, मारे, पानिप के पानि हैं,
झलकैं कटारी से औ दामिन डरारी से,
— औ रागव हैं खारी से, जुगल मेरे जानि हैं।

डाँके के परैया किधौं मन के लुटैया—
श्रौ बस के करैया औ चाखन की खानि हैं,
मत्र मन-मोहन से, बधिक धरोहर से,
मन के सु सौंहन से पारथ के बानि हैं।



नैननि कौ कमल कहौं वे तौ मुरझाइ श्राली ?,
जो पै कहौं मृग-नैनी वे तौ सब कारे हैं,
जो पै कहौं मीन, वे तौ जल तैं न आवैं तीर,
जो पै कहौं खजन वे सेत-रग सारे हैं।
चपल-तुरग कहौं धावै कर पायक से,
दीपक की जोति कहौं वे तौ हैं न जारे हैं,
सखि ऐसे सीतल कहौं तौ सौ कला-हीन,
तेरे नैंन जीतिवे कौ तीन-लोक हारे हैं।



आछे-अनियारे, चटकारे, कारे-कजरारे,
मृग-दृग कारे अरी ! एतौ रतनारे हैं,
चचल छबीले, रग-जानक रँगीले चारु,
दीरघ-रसीले रस-राते सुकमारे हैं।
नैन-मद-मौंति से उनींदे से रहति नित,
झुकि-झुकि उघरति मनौ छक मतवारे हैं,
अनन अनूठे नैंन देखे प्रान प्यारी के जु—
जहाँ-जहाँ देखे तहाँ जीति-जीति हारे हैं।

दूर ही तै सौंहीं चारु, अचल हसौंही ऊँची,
भौंहन के संग सौंहीं सुभग-नवेली की,
आयौ जब ढिग तब सुबरन-वेली पै,
लीन्ही अनुहारि है सुरसज-जुग फेली का।
पुनि अध-खुली, इन्दीवर की कला सी आइ,
परी हैं तिरीछी-दीठ ठसिकै सहेली की,
विविधि कटाच्छ भाँति, मैंन-सर भाँति-भाँति,
ऐसी खुलीं अँखियाँ, अनूप अलबेली की।



सरस-रसौंही, चारु-चातुरी पढ़ौंही, मौंन,
मैंन दरसौ ही, सुधिरौंही तान लाल की,
रैंन की जगौंही, उरझौंही, ठलचैाही, भरि-भार-
गरि चैाही, करकैाही, सूख-ख्याल की।
भाग-बर सौही, भरी भाव बरसौही,
अनुराग बरसौही, हरसौही, ब्रज-बाल की,
ललित-ललौही, ललचैाही औ हँसौही मोहीं,
सजल-लजौही, आँख जौही आजु बाल की,



राजैं रतनारे-दृग ऊपर उजारे भरि,
प्रेंम-मतवारे पिय-मैंन सुख-दैंन हैं,
गंजन कमल, मृग, मीन मद-भंजन हैं,
अंजन लसे तैं न रहति उर चैंन हैं।

"नदन" सुकवि नँद-नन्द पै ढुरे नैंकु,
रोप भरे देखे यातैं कहे कछु बैंन हैं,
ऐसे देखे मैं न, मैंन-बान से बिराजैं ऐंन,
आजु तेरे अजब गुलाबी-रंग नैंन हैं।



रति-रँग राते, प्रीति पागे, रैंन जागे नैंन,
आए अब इतै झूमि घूमि छबि के छके,
सहज बिलोल भए, केलि की कलाननि तैं,
कबहूँ उँमगि रहे, कबहूँ जके थके।
नींकी पलकन पीक-लीक झलिकति अति,
रस बलकनि बन मदन कहू सके,
सुखद सुजान ! "घनआँनद" जू पोखे प्रान,
अजरज आँखिन उघारे लाज के टके।



तेरी भौंह धनुष धरति करि कोप ओप,
चपक के चाप के हू खैंचति खटाति हैं,
तेरी ए अलक ता मैं ललित-कलित गुन,
मधुकर मय गुन कथति डराति हैं।
कहै "नीलकंठ" सत तेरे अंग-अंग हेरि,
नातरि अनग से समर सुहाति हैं,
जग-जैतवार कोटि तेरे ए कटाच्छ ना तौ,
पाँच-पाँच बानन तैं जहाँनि जीते जाति हैं।

हिय हरिलेति हैं, निकाई के निकेति हँसि,
देति हैं सहेति निरखति करि सैन हैं।
सैन हरिनीनि दृग-ही तें अति-नीके राजैं,
हरति हैं दरद, करति चित चैन हैं।
चाँहति न अंजन पै रसिक-जन गंजन है,
रंजन सरस राग रीते अति ऐन हैं,
दीरघ ढरारे, अनियारे, नैंकु रतनारे,
कंज सौं निकारे कजरारे तेरे नैन हैं।



नैंन अबला के नैंकु निरखै निहाल होति,
हेरैं रहि जाति मृग, मीन लट गए हैं,
"भनैं उडिदाम" काम-बानन की तीक्षन पै,
कहाँ वह रंग करि-कोटि नट गए हैं।
भौर रूप, सरस-सनेह के सरोवर मैं,
सुरस-सने कमल-दल हरि हट गए हैं,
आँन अबलान के गुमान गट गए मानौ,
सैंन चढ़ि केतिक सुजान पट गए हैं।



वारिज-बिकाने, तारि खंजन-खिसाने, मृग,
मीन, मुरझाने, यत्र-तत्र बिहरात हैं।
भौंर-मदराने, आन-उपमा न आने, पनि,
हेरि-हेरि हारि-हारि हिय हहरात हैं।

बड़रे, बिसाल, बाँके, प्यारी के अनूप-दृग ,
कहत कछू पै रौंम-रौंम थहराति हैं ,
मेरे जान आनँद सौं चारौं-चक जीतिबे कौं ,
भूप-मकरध्वज के धुज फहराति हैं ।



हम हीं मैं रहति, पै न कहति औ दहति देह ,
बिरह-अगिन-लूक आनि उर डारितीं ,
दई हैं बनाइ बिधि अविधि की बैरिन पै ,
"अमरेस" इन्हैं मारि हमहीं तौ हारितीं ।
होति ना निबाह जो रिसाइ नैंकु राखौ मूँदि ,
उघरैं निगोडीं मग-दूनौ पग धारितीं ,
लाज कौ न राखैं , लोक-लीक गहि दूरि नाखैं ,
बर-बस आँखैं हमैं पर-बस पारितीं ।



आसा-द्रुम सघन, सुहासने सुखद-स्वच्छ ,
रच्छति अवधि-बेलि हिम-हरसाने मैं ,
"नवनीत" अतर-अमोल, अनुराग-जाग ,
कुम-कुम मलय ढोरे सुख-सरसाने मैं ।
चट के गुलाबन के फूल से रहे हैं फूलि ,
बरनी उसीर, नीर-नैंन झरलाने मैं ,
ग्रीषम की तपत मिटावति पियारी प्रान-प्यारे ,
मूँदि राख्यौ आजु दृग-खसखाने मैं ।

पंकज की पाँखुरी से, परम प्रवीने भीने,
होति न अधीने रूप-जल में तरे रहैं,
"ईसजू" बरानैं निधि आनति अचभौ मोहि,
अतर-सुभट सौ क्यौ कपट भरे रहैं।
नीत में नवीने, नौंने नेहनि भरीले नित,
नौकदार-नेजे लिएँ नट लौ नरे रहैं,
निपट-नसीले, नींके प्यारी के लजीले-नैंन,
पट में दुरे हैं तौऊ घट में धरे रहैं।



कैधौं सुरत-कज पै मरजाद सौ लरति मीन,
दीन करि मोहे, अधीन करि राखे हैं।
"नवनीत" पूरब-अनुराग के अनौखे-दूत,
पोखति प्रतीति, रीति, प्रीति-परिपाके हैं।
दूरि ही तै बेधति, अनेक-अबलान हिय,
पिय-परिपोषक प्रवीन छवि-छाके हैं।
हैं न मृदुता के, ऐसे मैंन-मृदुता के, जैसे,
चचल-चलाके-नैंन नन्द के लला के हैं।



प्रेम-रँग पगे, जग-मगे, जगे जामिनि के,
जोवन की जोति जगि जोर उमगति हैं,
मदन के मॉते, मत-वारे ऐसे घूमति हैं,
झूमति हैं झुकि झूकि झँपि उघरति हैं।

"आलम" सो नवल निकाई इन-नैंननि की ,
पाँखुरी-पदुम पै भँवर थिरकति हैं।
चाहति हैं उड़िवे कौ देखति मयंक-मुख ,
जानति हैं रैंन तातैं ताही में रहति हैं।



चलति चितौनि चारु चित्त तें न दूरि होति ,
हेरि-हेरि बार-बार नेह सरसायौ री ?,
धायौ री अनग अंग, तायौ री अनेक भाँति ,
पायौ री ! न चैंन अरु लोगन हँसायौ री ?
भनति "विलौक" जो मैं जानिती इनलि की घात ,
राखिती जतन करि घूँघट-कसायौ री ?,
मिले भरपूर, चक-चूर करि दूर भए ,
मेरौ मन हाइ इन नैंननि फँसायौ री ? ।



आजु कमल-नैंन जू सौ मोसौ ऐसी होड़-परी ,
औरै का सखिन की बातैं अब देखिये ,
दरपन लै कान्ह बोले मेरे बड़े-नैंन हैं जू ,
(तौ) हाँ हूँ कहौ प्यारे ? नहि ऐसे सौ लेखिये।
दीरघ-बिसाल मेरी राधे ? के स्रु राजें अति ,
यही लाऊ चलिऐ जू न रस कौ बिसेखिये ,
आए हैं हराबी हहा प्यारी ? मैं बलि बलि जाऊँ ,
एक-बार आँखिन सौं आँखें नाँपि देखिये।

मनैं कीजो मेरी आली ? जियमें न ऐसी आनैं,
हम तौ हितू सो वात हित की बताइ हैं।
जानति हौ पाँइन सौं नाँपे हैं तीन-लोक,
ह याही के भरम-भूले भरम गँवाइ हैं।
दई की सँवारी वृषभानु की किसोरी तासौं,
सर-जर किए तैं हरि ? पाछैं पछिताइ हैं।
राधे-चन्द-मुखी के कनौडे हैं कमल-नैन,
आँखिन सौं, आँख नाँपि कैसैं जीतै जाँइ हैं।



रति के मुरीद, महबूब बे-दरद दौनौ,
पानिप के प्याले पल अलकि न मैंनैंगे,
सित औ असित डोरे-सुरख सुधारे अली, ?
कोए कल-कलम निसि पथ नऊ ठेलैंगे।
अजन इलाही नूर-पगे हैं "मुकुन्द" कहैं,
नजरन की आसा, मन-मथ जीति ऐलैंगे,
राधे। नैंन-सैंन-वान विहद-छवि छाके बाँके,
मैंन-सर घालि नद-लाल पर मेलैंगे।



ऐसे मैं न काहू के, न ऐसे मैंन काहू के,
न ऐसे मैंन, काहू के, सँवारे दीह-दोर के,
भौर हैं न कारे, ऐसे भौर हैं न कारे,
ऐसे भौर हैं न कारे, कज-मुजुल मरोर के।

घर-सुखमा के हैं, सरस-सुखमा के हैं,
सर से हैं "मारन" कटाच्छ पैन-चोर के,
देखे हरि नीके नैन, देखे हरिनी के नैन,
देखे हरि नीके नैन मीं के है न और के।

❁

दीरघ, उजारे, कजरारे, भरे प्रेम-नैन,
कोर-नोंक ऐसे, दरा राजति भँवर में,
सुधर-नसीले पै "सुधाकर" सुधा पे गेरे,
छबि के छिड़ौने पै अमता में पग में।
लाल के जहान विधि मान पे विराग-भार,
राधिका सुजान, आजु तेरे दृग दर में,
पादर चकोर भए, मृग-राग भोला हाए,
खंजन मधास भए, मपदीन पर में।

❁

कारे, झपकारे, रतनारे, अनियारे से,
सहज ठरारे, मनमथ मतवारे हैं,
लाज भरे भारे, भारे, चपल चितारे तारे,
साँचे के ढारे, प्यारे रूप के उजारे हैं।
आधी-चितवनि ही मैं किए तैं अधीन हरि ?
टौंने से वसीकर के लौने परिहारे हैं,
कमल, कुरंग, मीन, खंजन भँवर वृंद—
भानु की कुँवरि तेरे दृगनि पै वारे हैं।



प्यारी के दृगनि मैं झमकि दृग-पीतम की,
पीतम के नैंन सैंन प्यारी मन-रंज हैं,
चाउ मैं सिंगार-मार, मैंन ही के सुधासार,
दूध तैं पखार धरे माधुरी के मंज हैं।
"हरदयाल" सुकवि रसाल उपमा-बिसाल,
लाल मन लाल हैं कि मैंन-सर-संज हैं,
कंज बिच खंज हैं, कि खंज बिच कंज हैं—
कि कंज हैं, कि खंज है, कि दोऊ कंज-खंज हैं।



तेरे नैंन प्यारी अनुराग के अनूप कंज,
ता ऊपर मेरे नैंन-भँवर अतोर हैं,
"नयनीत" तेरे नैंन मैंन के मुसाहिब तौ,
मेरे नैंन ठाढ़े करैं विनती कर-जोर हैं।

तेरे नैंन घातिल हैं कतल करैया महा,
मेरे नैंन सनमुख तैं मुरति न मोर हैं,
मेरे नैंन, तेरे नैंन, तेरे नैंन, मेरे नैंन,
मेरे नैंन चोरिबे कौ तेरे नैंन चोर हैं,



सुनति हुती ही (कि) लीनौ नन्द कौ ढुटौना सुतौ,
आजु अवलोकौ भोर जमुना किनारे मैं,
बड़ी-बड़ी आँखिन तैं मो-तन निहार्यौ नैंकु,
वा छनि तैं भई वलि अजब-लचारे मैं।
एरी मेरी बीर ? मोहि जानि न परति कछू,
"भनैं रंगपाल" जऊ केवकि बिचारे मैं,
कैधौ उन नैंननि मैं, नैंन ए हमारे बसे,
कैधौ वेई नैंन बसे, नैंननि हमारे मैं।



प्रिय-मन-दूत किधौ, प्रेम-रथ सूत किधौ,
भँवर अभूत-वपु वास के सुरंग हैं,
चितवति चहुँ-ओर, पीतम के चित्त-चोर,
चंद के चकोर, किधौ "केसव" कुरंग हैं।
बाल-मद भंजन हैं खेलिबे के खंजन हैं कि,
रंजन कुँवरि कामदेव के तुरंग हैं:
सोभा-सर लीन मीन, सुखलय रस भीने मीन,
नलिन नवीन किधौ नैंन बहु-रंग हैं।

कैधौ रूप-सागर के रतन-जुगल किधौं,
भूप मीनकेतु के, कै तन हैं सुनस के,
नेह भरे, मदन-सदन प्रदीप किधौं,
रसराज चारिवे कौ चरैया हैं सु रस के।
सुनति सुदेस कै सुनेस से महीप किधौं,
बस करिवे काजु इन्दरीनि बीस-दस के,
लगैं हिय ऐंन, कसकति दिन-रैन किधौं,
प्यारी ! तेरे नैंन-तीर मन-तरकस के,



सुखमा मलिन्द के अलिन्द अरविन्द हैं,
फनिन्द हैं नरिन्द पे [illegible] हैं [illegible],
"श्रीपति" प्रवीन रूप-सर के [illegible]-मीन,
हरिन [illegible] नेह-[illegible] [illegible] हैं।
[illegible] मेरी प्रान प्यारी ? लोचन तिहारे प्यारे,
उरज सुधारे [illegible] [illegible] [illegible] हैं,
रति-[illegible] धीर हैं, सिंगार [illegible]-धीर हैं,
सँवारे आदे धीर हैं, सु [illegible] हैं।



कैधौं [illegible] [illegible], [illegible], [illegible] किधौं,
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] सु [illegible] हैं,
कैधौं [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible],
[illegible] [illegible] '[illegible]' [illegible] [illegible] हैं।

मत घात पातक कि चित्त चोरिबे कौं वम,
देखिबे कौ नन्दलाल लाल करैं काल के,
लागि रही लोक लाज, रजन सु नैंन किधौं,
पिय-मन-रजन कि अजन हैं बाल के।



आधी लै उसास सुख आँसुन सौं धोवै कभू,
जोवै है कभू आधे-पलनि पसारि कैं,
नींद, भूँख, प्यास, ताहि आधी हू रही न तन,
आधे हू न आखर सकति अनुसारि कैं।
"द्विज-देव" की सौं ऐसी व्याधि-अधिकानी जासौं,
नैंकु हू न तन, मन राखति सम्हारि कैं,
जा दिन तैं जोरि मन-मौंहन लला पै दीठ,
राधे। आधे-नैंननि तें आई तू निहारि कैं।



मीन हैं कमीने परे पानी मैं निहारि-हारि,
हारि कैं चकोर अति चुगति-अँगारे हैं,
"भूपति" भनति मजु-कजन सु रजन के,
गजन-गरब करि हारि कैं निकारे हैं।
हेरे-रतनारे, सारे-कारे औ सितारे सेतु,
उपमा सिता-सित सरगनि मैं भारे हैं,
प्यारी। हेरे मान-दृग पानि पर साँन धरे,
कैसर-कसीमे वे कमान-वारे, वारे हैं।

पतिव्रतता के मजु-मन्दिर मजा के किधौं,
लरित मृग थाके, चारु सर सुखमा के हैं,
कैधौं छैम-छाके हैं अमद भौन भाँके हैं,
न ऐसे रमा, रभा के, उमा के और काके हैं।
"भनैं रघुनाथ" धाम कैधौ सीलता के प्रैम—
सागर के मीन नैंन-बाँके राधिका के हैं,
पिय-मुददा के, बसीकर बसुधा के किधौं,
सुधा-सिंधु-मडल मैं कुड द्वै सुधा के हैं।



खजन, चकोर, मीन, मृग—सिसु, सारस सब,
वारिऐ कपोत हू अनूप-श्रोप गोरी के,
तीखे-तीर, खजर, कटारी, तेग, नेजन त,
बाँक, बिछूआ ते हैं बकैत-बर-जोरी के।
"भनैं रघुनाथ" हैं लजीले लालची हैं लोल,
पकज, गुलाब-रग रति मद भोरी के,
ललित-बिसाल, यौं रसाल कजरारे लाल !,
मृदु रतनारे-नैंन नवल किसोरी के।



ऐसे हैं न मैंन के, न देखे ऐंन-सैंन के,
जगैया दिन-रैंन के जितैया सौति-सैन के,
कमल-कलीन के सु मुकुलित करन हार,
कानन की कोरन लौं कोरन रँगीन के।

"भनत कविन्द" भाँवती के नैन-साइक से,
देखे मैन-पाइक से, नाइक-नवीन के,
साँचे हैं अमीन के, अमीन मानों मीन के,
बखानें को मृगीन के, खगीन, पन्नगीन के।



काजर तैं कारे, अनियारे, डोरे मद-वारे,
कमल-ढरारे, किधौं, अमृत के दौंना हैं,
खजन-सँवारे किधौं खजर-खरसान धरे,
कैधौं मन-मौहन के मन के हरौंना हैं।
रूप-जल न्यारे, रस-वारे से डगमगाति,
नवल-दुलारे, किधौं मृगन के छौंना हैं,
"मदन" निहारे, पछी सीरत देंन-हारे अली!
तेरे-नैन ऐन मानौ मैन के खिलौंना हैं।



कैधौ रूप-सागर मैं आँचि वडवागिन की,
विरह निसाल-ज्वाल जा मधि थिकासी है,
कैधौ दल-पकज के ऊपर अरुन-रेखु,
कैधौ नेह-दीपक की अरुन-सिखा सी है।
गोरी? तेरे-नैननि के बीच लाल-रेखैं सुतौ,
रेखै अनुराग ही की प्रगट प्रकासी है,
कैधौ अनियारे, अति-कारे, चट-पारे इन,
वारेन की फाँसो पिय-जिय है निकासी है।

काम की कमान तेरी भृकुटी-कुटिल आली ?
तातैं एते तीछन ए तीर से चलति हैं,
घूँघट की ओट, कोटि करि कैं कसाई-काम,
मारे निनु-काम कामी केते ससकति हैं।
तोरे तैं न टूटैं ऐ निकासे तैं न निकसति,
पैंनि निसि-वासर करेजे कसकति हैं,
"सेनापति" प्यारे ! तेरे तम से तरल तारे,
तिरछे-कटाच्छ गड़ि छाती मैं रहति हैं।



कोटि-कोटि कंजन औ खंजन, मृगन-मद,
कोटि-कोटि मीनन की चपलता अपार है,
कोटि-कोटि तीच्छन-कटाच्छन की तारी-छवि,
कोटि-कोटि छाजै-छटा अति ही उदार है।
"मनी परवीन" कोटि-कोटि चपलाई चारु,
सुखमा अनूप-रूप सोभित सिंगार है,
कोटि-कोटि तोरन छबीली ? तिहारे दृग,
प्रगटे है कोटि-कोटि अद्भुत प्रकार है।



कैधौं रूप-सागर मैं फूली है कमल कली,
ताकौ अरविंद, मृग, मीन भए चेरे हैं,
कैधौं अरविंद, मृग, मीन भए चेरे कली,
जैसी हौ ? सु कानन पै मैन फिर हेरे हैं।

कैसें री सु-आनन पै नैंन किए डेरे कहौ,
जैसें नँद-नदन निहारे आइ नेरे हैं,
कैसें नँद-नदन निहारे आइ नेरे है,
जैसें आबदार ए अवाम-नैंन तेरे हैं।



सुन्दर-सजीले, सहजीले, सरसीले कोर—
काजर-कजीले त्यौं, चकोर सचुपाने से,
नाँचति-नसीले, काम-साइक वसीले, चहकीले,
चटकीले, मटकीले औ अयाने से।
छाजति छबीली के छबीले ए रँगीले-नैंन,
हाँसन हँसीले, सौंन चूमति दिमाने से,
"रसिक-किसोरी" नेह-लाजनि लजीले चारु,
सुधा से रसीले हैं सरोज सकुचाने से।



तीरे-तेज तान-भरे, सीते दान, घाव-भरे,
चाँह चित चाइल चलाकी सौं कढे रहैं,
खजरीट गंजन, कुरंग मद-भंजन,
अनूप-रूप रंजन, मजेज मैं मढे रहैं।
"पंडित भगत" प्रीति-पीतम के पोरसे ए,
अनौंखे-नैंन तेरे रस-रीतिन रढे रहैं,
पोसे-चाव चौगुने, सुहाग-सने सौ-गुने,
हजार गुने हिय पै हरीफ लौं चढे रहैं।

हित उपजौंने, नेह-मेह बरसौंने,
देह-दीप दरसौंने, अरसौंने सर-सौंना हैं,
हिलग लगौंने, झपकौंने, छपकौंने छैल-
छलन-छलौने, अनरौने, रस-दौंना हैं।
"भरमी सुकवि" छनि मन के हरौने देखे,
सहज-सलौने-लौने कानन लगौंना हैं,
रँग-रस-भौना, हेरि हारे मृग-छौना,
कौनें, कीन्हें तेरे-नैंन प्यारी कामरू के टौना हैं।



कातिब-कमान कोर-कारे दिल रोज-रोज,
बरसैं बदन-बोब शाही-सुरा-ऐंन हैं,
शान-सुर्खं शोक़त सियाह शोख सुर्मई की,
रोशन-चिराग मिस्ल आलम के ऐंन हैं।
स्याम के सलौने-चश्म इन्तजार जाके रहैं,
शर्म से तकैंना तऊ लाखौ करैं कैंन हैं,
नौक-भरे, मौक-भरे, नये-नये, नये "नूर",
नाज-भरे नाजुक ये नाजनी के नैंन हैं।



मरवि जियावत है, आवत हँसावति हैं,
चित उचटावति हैं, काम के खिलौंना हैं,
सुमति सुघर घरे, घने मन दल-मले,
भल-मन चले तीखे घाव के अगौंना हैं।

रुँधिबे कों गज ऐसे, काटिबे कौं खरग जैसे,
बेधिबे कौं बान से, निकासिबे कौं पौंना हैं ,
टाना-टौंना कहति सुटौंना कहूँ ऐसे होति,
एतौं दृग कॉमरू के टौंनन के टौंना हैं ।



आँखैं आम कीसी फाँकैं, कोहैं कमल कीसी—
पाखै, प्रैंम-रस चाखैं हिय तैं न निकसति हैं ,
काम-सर नाखैं, धीर काहू की न राखै,
राखै जे समद मारे, ईठ दीठ कसकति हैं ।
"कृष्णलाल" साधैं, सुधा पूरति गवाखैं—
माँहि घूँघट-गवाखै वो सी लौ मैं बिलसति हैं ,
कौन अभिलाखै, खासी उपमा न भाखै,
प्यारे! रावरी ए आँखै हमैं लाखन चकसति हैं ।



कोऊ कहैं ख़ंजर, कटार, छुरा, चाँक—
कोऊ, कोऊ कहैं किरच सफेले बे-नजीर हैं ,
कोऊ कहैं सैफ हैं, सिरोही, कोऊ नीमचा से,
कोऊ कहैं ग्वास ए हुसैंनी-समसीर हैं ।
कोऊ कहैं भाले, कोऊ साँगैसी बखानैं ताहि,
कोऊ कहैं बरछी बुझाई जिष-तीर हैं ,
मेरे जान सनम ? कटीले ए तिहारे दृग,
नैंन सैंन-नैंन के अनौंखे चोरे-चीर हैं ।

चातुरी के चुगल, चवाई चित चाह के कि-
पाहरू ए प्रेम के, प्रवीनताई परसैं,
अंजन् वलित कोरैं खं जन-मद गजन ए,
चोरैं चित्त चाँहि-चहुँ ओरन सौं दरसैं।
मदन सरोज मैं मलिन्दन के सुमीति मंजु,
"सेखर" सनेह के भरे से भाव सरसैं,
काम के तुनीर कैसे तीर-नैंन कामिनी के,
ताकि-ताकि तरुनी तिलोत्तमा सी तरसैं।



नेह स्याम-सुन्दर सलोने की सु सीखी गति,
सुरति समोद अभिराम उमगीना मैं,
डोरे डीठ अरुन ठगोरे ठीक ठाहियतु,
"कवि पजनेस" भैन मंजुल पगीना मैं।
खुलत, डुलत, दृग पूतरी सु स्यामता मैं,
आतुर लली के लौंने लगन लगीना मैं,
मानौं गुन-आगर सुनार धरनी के मधि,
नागरी ? नवल नींक नाँचति नगीना मैं।



कजर-कलित कोरैं, कंज से सु रस-पुंज,
तीखे-तीखे तरल वसीकरन जी के ए,
मींन गति सुरति, मनोज मन-रंजन ए,
गंजन गुमान, रसीकरन हैं पी के ए।

सान धरे "सेखर" निधान सुखमा के बाँके,<br>
छाके नेह-आसव, नसाके नितही के ए,<br>
सीलसने सलज सलौने सुखदैंन प्यारी ?<br>
नेह भरे निपट-नुकीले नैंन नीके ए।



मींन मुरझानी भागि पानी लुकानी जाइ,<br>
हिरनीं हिरानी वन-वन भटकानी हैं,<br>
भौरन की भीर भरमाँनी, मडरानी फिरै,<br>
पक मैं परानी कज-कलिका करानी है।<br>
जोवन जवानी के जलूस मैं दियानी "सोभ"<br>
सौतिन की देखि-देखि छतियाँ पिरानी हैं,<br>
जोगी, जती, ग्यानिन की मति बहिकानी—<br>
यातैं आँखें हम जाँनी ए सनेह की निसानी हैं।



भूपति है प्रैम, लाल-डोरे हैं निसान तेई,<br>
चचलता चतुर-तुरग भीर-भारी है।<br>
देखिनौ अनेक भाँति तेई असवार खरे,<br>
काजर-समोई करि कुरसी सँवारी है।<br>
बरनी-बँदूक की पाँति सी लई है पिय,<br>
बिरह-गनीम मारिबे कौ पैज धारी है,<br>
"सूरत सुकवि" स्वच्छ स्याम-रँग बागे बने,<br>
प्यारी तेरे नैंननि मैं नींकी असवारी है।

देखति ही सब के चुरावत हैं चित्तन कौ,
फेरि कैं न देतीं यौ अनीति उमडाई है,
"कवि मतिराम" काम तीर हूँ तें तीच्छन,
कटाच्छन की कोरैं छेदि-छाती मैं गडाई हैं।
खजरीट, कज, मीन, मृगन के नैननि कौ,
छीन-छीन लेति छवि ऐसी तैं लडाई है,
तेरी अँखियाँन मैं निलोकी यह बडी-बात,
एते पै बडी-बडी पावति बडाई हैं।



नीति-मग मारिवे कौं ठग हैं सु-भग-मन,
बालक-विकल करि डारिवे कै टौने हैं,
दीठ-खग फाँदिवे कौ, लासा-भरे लागैं हिय,
पींजरा मैं राखिवे कौ खजन के छौने हैं।
"दास" निज मान-गथ अतर तें बाहिर न,
राखति हैं केहू कान्ह कृपन के सौंने हैं।
ग्यान-तरवर तोरिवे कौ करिवर जिय,
रोचन तिहारे तिय लोचन सलौने हैं।



टारे हू टरैं न, जतन अनेक लीन्हैं,
नैंकु ही निहारति मैं घाइल करि डारे हैं।
हारे हैं, जलज गार केते सर-सरितन के,
खजन रिसाने अलि केते जिय हारे हैं।

हारे हैं, हिरन हहराने, झहराने झुके,
"दास" कहैं ग्यान लखि कानन सिधारे हैं,
धारे हैं, धरारे तीखे सान-धरे अनियारे,
नैंन हैं कि तेरे ए अनग के कटारे हैं।



करकति रहति, धार-ढरकति अँसुवन की,
हरकति लाज तन-तपन पसारे हैं,
पल न परन देति कल कल-पावत हैं,
जैंन न जतन जन-जी पै निरधारे हैं।
है कैं निरदई री! उन्हें ऐसें न चितै री बीर ?,
"गोकुल" के नाथ वे तो रावरे पियारे हैं,
ईच्छन मैं गड़ैं क्यौ न तीच्छन बिलोकति ही,
तीच्छन-कटाच्छ भरे ईच्छन तिहारे हैं।



खजन-मलींन, मींन, मृग बन माँझ लीन,
कज छबि-छींन कींन, पौंड्न के चेरे हैं।
दीरघ-ढरारे, झपकारे, रतनारे-ऐंन,
मैंन-मतवारे, ऐसे मैं न कहूँ हेरे हैं।
बरुनी चपल-मन बाँधिवे कौ फदा—
"ऊधौ" लाल-लाल डोरे लसे रूप के घनेरे हैं,
बड़रे-निसाल हिऐं किए हैं दुसाले ए—
रसाल नटसाल लाल प्यारे द्दग तेरे हैं।

भाजे हारि खंजन, लजाइ कंज पंक बसे,
मार-रस भंजन अनौखे-नैन ऐन हैं,
तीखे-तीखे नैन-बान भृकुटी-कमान तान,
बेधे तन-प्रान करै अति ही अचैन हैं।
कहैं "कवि राम" याकी कहाँ लौं बढाई करौं,
मोहनी जगत की पढाई गुरु-नैन हैं,
पीन-मृगराज बन दीन-दुख भंजन ए,
लाल-मन-रंजन ननेली तेरे-नैन हैं॥



जीते मृग, मीन ते बनीन मैं बसाए—
जीते खंजन नवीन ते ठहरे न ठान के,
जीति लीन्हे भौंर ते भ्रमत ठौर-ठौर डोलैं,
जीते हैं चकोर करै असन कृसान के।
"भनति फनिन्द" तानि भृकुटी-कमान प्यारी,
कान्ह जीते, जीते मान सुर-बनितान के,
अब कजरारे-नैन असित गुमान सान,
पैन पै धरे हैं फेरि बान पंच-बान के।



कं ा अमलता मैं, खंजन चपलता मैं,
दाता मैं मीन, चदाता मैं चके पॅरा के,
प्रेम मैं चकोर, चोर नैन के निबाहिबे मैं,
कहैं "रघुनाथ" ठग ठगिबे मैं हीर के।

ढसिये कौ भौर, डीठि फँसिबे कौ बँसी,
गसिबे-कौं जत्र, हेति चैंन हू अचैंन के,
या मैंहूँ न मूँठि प्यारी! हिय में आइ लगिवे कौ—
प्यारी जू के नैंन ऐन तीखे-बान मैंन के।



रासति सलूक मिले मदन-महीपति सौं,
सुतनु सरकि जाति कौंनन की ओर हैं,
चपरि हरति ब्रज-बालन के मन, धन,
मारति मरोर भरे जोबन-मरोर हैं।
जागति हू मूँसैं, सावधान कौं बियस करैं,
चपल-चितौन सर बेधति सजोर हैं,
मोसौं कहि आली ! ब्रज-लाडिले के लोल-द्रग,
ठग हैं, कजाक हैं, डकैत हैं कि चोर हैं।



बीर! किति जै ऐ काहि जाइ दुरा सुनैऐ निज,
कोऊ ना लराइ ऐसौ होइ मेरी ओर हैं,
परी रवि-राज, रस-राज रितु-राज तिहु,
रसिक-निहारी बड़े हिय के कठोर हैं।
चितयति चपति न हटिकैं हरति घाइ,
कीजै कहा लालन के द्रग बर-जोर हैं,
भोर के सु ठग, बटपार सावधान के हैं,
सोए के जु फाँसीगर, जागत के चोर हैं।

जीते जिन तामरस, अलि-कुल, मीन-कुल,
कारे कजरारे सोहैं पिय सुख दैन के,
जीते जिन ख जन औ मुकता ढरनि जीती,
जीते हैं चकोर किधौं दीपक हैं रैन के।
कमल ढरारे किधौं प्रेम-मद मतवारे,
सेवन सुहाइ धरे जागे सुख सैन के,
मृग हैं भड़ैत किधौं पाइक रखैत दोऊ,
प्यारी तेरे नैन किधौं जोधा ऐन मैन के।



खजन प्रवीन टेरैं सैननि सँकेति प्यारी,
प्यारे कौं मनोरथी जुत ननद जकेती सौ,
कोर कजरारी ता पै फरकति फेरि-फेरि,
थिर ह्वै रहन की थिरकि थकेती सौ,
धार सुख धार ता पै करि कमलप्य का पै,
किमि रसमान धार फैंकति फकैती सौं,
कामिनी को नीको बिधु-बदन बिराजै आज,
मैन-सर काढ़े नैन पाढ़-बकैती सौं,



काजर कराटे, रतनारे औ कटाच्छ धारे,
दारे काम-बाँधे पुनि पानि मतवारे हैं,
पलै पुनि मोहै, अनमोरे पुनि पी औंभाति,
पुनि सुधिकारे, इतराते, मतवारे हैं।

अधिक दुरौंहे, चपलौहे, निठुरौंहे सुचि,
सोहैं, मन मोहैं, दृग "दूलह" पियारे हैं,
धीरे फिर रूसे, विष वींधे, सर सौंधे हनि-
डारैं, फिरि मारैं, दई मारे हत्यारे हैं।



सारी-नील जारी की सु ओट तैं चलावै चोट,
मारै तकि-तीर सो प्रवीनता घनेरी हैं,
रंच हू न चूकति अचूक सर मूँकति हैं,
खैंचि कैं कमान-भौंह करति करेरी हैं।
कुटिल कटाच्छ-बान लागति बिसिख आन,
"रसिक-बिहारी" गति जाइ ना निबेरी हैं,
मन मृग मेरौ करवर तैं गह्यौ है हठि,
जाने जुग-नैंन अहैं अजब अहेरी हैं।



"रसिक बिहारी" देखि साँवरौ सलौनौ गात,
अति ललचाति दोऊ होतिं अनुराग ने,
जस हू न देखैं, अपजस हूँ न देखैं रंच,
जाइ कैं लगति धाइ ऐसे भए लागने।
कहा करौ हाइ-हाइ नैंकु हूँ न सकुचाहिं,
जो पै बरजौ तौ होति दूने-दुख-दागने,
चपल निलज्ज जुग लालच भरे निसंक,
हेरि रूप-दानी चलिजाति नैंन माँगने।

पल-दल संपुट मैं मुदैं मन-मोद मानै,,
आरस बिभावरी है होति भोर हाई हैं,
द्वै-सरोज, बीच बसति रसति (सरस) कैसें,
लसत सु ऐसे अचरज अधिकाई हैं।
बाहर तैं रूप-मकरन्द करै पुन्य वर्डा,
भूति गति हेरे यौ मतिहि हिराई हैं।
नयौई रसिक "घन आँनद" सुजान यह,
कैधौ प्यारी तेरे नैन सैंन की निकाई हैं।



आलस-वलित कोरै, काजर कलित,
"मतिराम" वे ललित अति पानिप धरति हैं,
सारस-सरस सोहैं, सलज-सहास संग,
स-गरब, स-विलास द्वै-मृगन निदरति हैं।
बरुनी-सघन बंक तीच्छन-कटाच्छ बडे,
लोचन रसाल उर पीर ही करति हैं,
गाढे है गडे हैं न निसारे निसरत मैंन—
बान से बिसारे न बिसारे निसरत हैं।



अरुनाई, चपलाई कहे का कवि "रघुनाथ"
गुराई अरु स्यामताई जेती चाहियतु हैं,
मोहन, बसीकरन, सोखन, उच्चाटन,
आकरसन, बेधिवे की रीति गाहियतु हैं।

देखि कैं निचार कीन्हौ अलिन-अलीक यामैं,
ए गुन कन्हैया जू के नैंन लहियतु हैं,
कंज, खंज, मींन, मधुकरनि मैं न रहै,
मैंन-बान मैं कहे जे ते मूठे कहियतु हैं।



हरि-मुख-चंद कौ चकोर ह्वै रहति जानि,
लोचन-कमल गति-भौंर की गहति हैं,
देखति हू देखति रहति नित-साध लगी,
होति अन-भेख यौ विसेख उमगति हैं।
टैंने कछु प्रान-प्यारे कौ सलौनो सौ रूप तातैं,
नैंकु न बुझाति तृखा कल न लहति हैं,
तिरपति न होति क्यौं हूँ माई री ? नयन मेरे,
पियति अघाइ त्यौं-त्यौं प्यासे ही रहति हैं।



आपु ही तैं लागैं कहैं काहू के न लागैं ए-
रैंन-दिन जागैं हैं वियोग-आगि घरियाँ,
रूप-माधुरी कौ ज्यौं-ज्यौं पिवैं त्यौं-त्यौं भूँखी रहैं,
हौंहि न अदूखी ए बिदूखी सदाँ लखियाँ।
लपट निपट पट-सपुट न रोकीं रुकैं,
अकुलाइ ढहैं, जाइ मधुर्वी समाधियाँ।
चैंन हैं न आठौं-जाम इनहीं कौं "ऊधौराम"
निहायौ तन तामैं दुसहाई ऐ आँखियाँ।

रूप, गुन, मद, उनमाद, नेह, तेह भरे,
छल-बल आतुरी, चटक-चातुरी पगे,
घूँमति, घुरति अरबीले न मुरति नैंकौ,
आनन सौं खेलैं, अलबेले लाड के वगे।
मीन, कंज, खंजन, कुरंग-मान भंग करैं,
सींचैं "घन-आँनद" खुले सकोच में मढे,
पैंने नैंन तेरे से न हेरे मैं अनेरे कहूँ,
घाती बडे कातो लिऐं छाती पै रहैं चढे।



घेर घबरानी, उनरानी हीं रहति "घन आँनद"
आरति रातो साधनि मरति हैं,
जीवन-अधार जान रूप के अधार बिनु,
व्याकुल विकार भरीं खरी सुरजति हैं।
अतन जतन तैं अनखि अरसानी बीर ?
प्यारी पीर भरी क्यौंहू धीर न धरति हैं,
देखिए दसा असाध अँखियाँ-निगोडिन की,
भसमी-बिथा पै नित लंघन करति हैं।



लाज-भरीं आलस, गुमान-भरीं दूना-दून,
मद-भरीं जोबन की छकन छकातीं हैं,
झाँई-भरीं झीने मुख आँचर झुकातीं किती,
मोहन अछेह नेह मेह बरसातीं हैं।

खंजन, जलज, मृग, मीन, देखि दीन होति,
तीच्छन मनोज-बान हूँ तें अधिकाती हैं,
दोऊ बीच ह्वै कै परीं काजर की रेखै तऊ,
नैंननि की नौकै झौंकें फौंकें कढि जाती हैं।



बोझे लाज भार, रूप सागर मैं मढों ई रहैं,
दए हैं चलाइ साज बाज प्रेंम-पथ के,
गुहे लाल डोर नगसाल सोई गुन भयौ,
बरुनी न हौंहि मानौ खेवा बेठ हथ के।
अजन निसान, चितवनि सोच हरजानि,
कहाँ लौ करौं बखान नाहीं जाति कथ के,
फेनद कटाच्छ करि नैया तौ लुनाई भई,
नैंना तौ न होहिं ए नगारे मन-मथ के,



पाइऐ न खोज खजरीटन मैं रंचक हू,
लोचन तिहारे ए छिनैया गति मीन के,
कंज-दल गंजन कुरंग-मान भंजन, ए,
रंजन, हैं रंग-मन "रसिक" प्रबीन के।
मधुप बिचारे हिय हारि कैं रहति बन,
अति-सुखदाइक, सहाइक सरीन के,
तीखे-तीर काम के, न देखे काम नाम के,
गनावें को परीन के, नरीन, किन्नरीन के।

अंजन सुरंग जीते, खंजन, कुरंग, मीन,
नैंकु न कमल उपमा कौं नियरात है।
नींके अनियारे, अति-चंचल ढरारे प्यारे ?,
ज्यौं-ज्यौं मैं निहारे त्यौं-त्यौं खरे ललचात है।
"सेनापति" सुधा से कटाच्छन बरखि जाँइ,
जिन कौ निरखि हियौ हरखि सिरात है।
कान लौं विसाल काम-भूप के रसाल-थाल,
तेरे दृग देखि, मेरौ मन न अघात है।



लोचन अनूप लौने लगति सुहाइ अति,
सेत अरु स्याम, रतनारे सुख दैंन वे,
अमृत, हलाहल औ मद से भरे हैं खरे,
"रसिक बिहारी" बिलसात गुन सैंन वे।
वह मधुराई, करुआई औ तिराई घनी,
रसिक-सुजान जन जानैं मति ऐंन वे,
जीवति, मरति, झुकि-झुकि कैं परति सो वो,
चितवति जाहि एकवार भरि नैंन वे।



जाकैं सर लागै ताहि सुधि ना रहति कछू,
जोई इनैं ताकै उर रचक नियान हैं,
तिन तैं अधिक कुसमायुध के पाँचौं-बान,
उनहूँ तैं सरस टारै मुनिन के ध्यान हैं।

"कृष्ण" प्रान-प्यारे की दुहाई जियजानि आली ?
सबहो तें विषम बिसेस नैंन-बान हैं,
दुहून विकल करै, जतन लगैं न आँन,
दुहूँ भाँति लगैं हूँ लगाएँ हूँ समान-हैं।



बरनि-बरनि दृग कहति सकल कवि,
कमल, कुरंग, मीन, खंजन समान हैं,
कहैं "कवि कृष्ण" रचि-पचि चतुरानन नैं,
लोचन ए पाहन बनाए मेरे जान हैं।
कमल सैं कमल लगाइ देखे कैयौ बेरु,
एक आँक क्यौ हूँ उपजति न कृसान हैं,
लागति ही तिय-नैंन, तब हीं उपज उठै,
लगनि-अगिनि यातैं प्रगट प्रमान हैं।



खंजन से, कंज से, तुरंगम से, सफरी से,
कतरे रसाल से, कुरंगन से, सावक से,
अंजन से, रंजन से, चंचल से, माहुर से,
आरसी अनैंग केसे, सायक से, नायक से।
यारन से, आरन से, पानिप से, उथले से,
"सालिगराम" मूरति से, डोरे रँग-जावक से।
ताकनि तिरीछी प्यारा भाखत "दिवाकर जू"
दृगन-दराज से झपेटे बाज लायक से।

काछैं-आछैं काछनी असित-सित भली-भाँति,
रीझे रूप-रसिक, रसाल औ सरैया से,
थिरकति-थिरन सुधार-मुकताहल से,
थहराति थकति रहे खजन रिजैया से।
छवि सों, फिरति फहराति फेरि फूले-फूले,
"श्री पति" सुघर-वर लेति हैं बलैया से,
आँनद के ऐन चित-चैन के करन हारे,
प्यारे तेरे-नैंन नाँचें मैंन के भमैया-से



कारी, रतनारी, प्यारी! सीलता सनेह धारि,
काजर की रेख सो बिसेष अनी सर की,
कज तें सफीली, सुचि सुखमा गहीली राधौ,
सैंन-नैंन सनक न मैंन मौंज कर की।
चोखे-चख-चचल, चपल सिया रानी जू के,
"पेफीराम" चखन में चुन फिरैं मिर की,
चितवनि चारु चित्त चुभति हैं जोगिन कै,
समता न पावैं वानी देव-नारी नर की।



मिलति अगाऊ जाइ, नैंकहू न मानैं सक,
फेरैं ना फिरहिं लोक-लाज सब डारैं तोरि,
लावति मिताइवे वेगि अपने सजातिन कौं,
आसन दै चित्त में हिए सौं नेह लावै जोरि।

"रसिक बिहारी" भनै रसना कौं रसना सौं ,
रसना के रस सौं पिवाइ मति डारैं भोरि ।
ऐसे ठग, नैंननि की कछु ना प्रतीति एतौ,
देति पर हाथ मन-मानिक वृथा ही छोरि ।

❀

कैधौं रूप-सागर की पारी पक छोहैं किधौं ,
है कैं री ! ससक मीन-जाल भरि राख्यौ है ,
वीर छीर-निधि विष फैल्यौ है सन्नीर ही सौं,
कैधौं कज, जयूफल मॉंफ धरि राख्यौ है ।
परी वृषभानु की कुमारी ? प्यारी तेरे दृग ,
"बाल कवि" कहै लाल-मन हरि राख्यौ है ।
मौंहन के ईस पै मदन-महीस अस ,
बीसौं-बीस कज्जल कसीस करि-राख्यौ है ।





# सवैया

## सवैया

भौर सरोज तैं रोज जुरै, न चकोरन हूँ मद-मोद परी है,
त्यो-मन रंजन अंजन हूँ बिनु, खंजन-कांति कौं छीन करी है।
काहू कहा कहिऐ को मानति, जेती अनूपम ओप भरी है,
जानति हौं निधि लै सब देस की, आँखिन हीं छबि आँनि धरी है।

❀

जाल की चूनरी चीकनौं गात, चकोर थके मुख-चंद के धोखै,
लाँबी-लटैं, लटिकैं कटि छीन, पयोधर-द्वै मन-मोहन सोखै।
बेधे "मुबारक" के हिय मैं सर एको परै ना कटाच्छ के ओखै,
बाकी न राखै कजाकी कछू, जब बाँकी-चितौन सौ झाँकी झरोखै।

❀

बाज की बैठक लै उचकीं, पुनि बेधि कढीं पट-घूँघट झीनौं,
चढ़ि जाइ तुही सम दूरि दुरीं, बहुरौ गति आनि करील की लीनौं।
बानत बानन लौं अरु-लोल से, सानन मैं झर बारन कीनौं,
सालत 'देव' अदेवन हूँ बरु पारथ कौ पुरुसारथ छीनौं।

❀

रूप-सने यह रूप दिखावत, देखैं बनैं दृग सील सचौंहि,
जोति भरे, मुकता से ढरेरे, सुरंग सरोज से रंग रचौंहि।
खंजन, मीन, मधुव्रत से कि कुरंग, तुरंग से मान मचौंहि,
स्याम-सुधानिधि-पानिप चाँहति, होति हैं चारु-चकोरन चौंहि।

# सवैया

भौंर सरोज दैं रोज जुरैं, न चकोरन [illegible] मद-मोद परी है,
त्यौं-मन रंजन अंजन हूँ बिनु, खंजन-काति कौं छीन करी है।
काहू कहा कहिबे को मानति, जेती अनूपम ओप भरी है,
जानति हौं निधि लै सब देस की, आँखिन ही छबि आँनि धरी है।

❀

लाल की चूनरी चोकनौं गात, चकोर थके मुख-चंद के धोरै,
लाँबी-लटैं, लटिकैं कटि खीन, पयोधर-द्वै मन-मोहन सोरै।
बेधे "मुबारक" के हिय मैं सर एको परै ना कटाच्छ के ओरै,
बाकी न राखै कजाकी कछु, जब बाँकी-चितौन सौं झाकी झरोखै।

❀

लाज की बैठक लै उचकीं, पुनि बेधि कढ़ीं पट-घूँघट झीनौं,
बढ़ि जाइ छुही सम दूरि दुरीं, बहुरो गति आनि करील की लीनौं।
बानत कानन लौं चल-लोल से, सानन मैं झर धारन कीनौं,
घालत "देव" अदेवन हूँ बरु पारथ को पुरुसारथ छीनौं।

❀

रूप-घने बहु रूप दिखावत, देखैं घनैं दृग सील सचौंहि,
जोति भरे, मुकता से ढरेरे, सुरंग सरोज से रंग रचौंहि।
खंजन, मीन, मधुब्रत से कि कुरंग, तुरंग से मान मचौंहि,
स्याम-सुधानिधि-पानिप चाँहति, होति हैं चारु-चकोरन चौंहि।

"देव" मैं सीस बसायौ सनेह सौं, भाल मृगमद-बिन्दु कै राख्यौ,
कचुकी मैं चुपर्‍यौं करि चोवा, लगाइ लियौ उर सौ अभिलाख्यौ।
लै मगतूल गुहे गहलें, रस मूरतवंत सिंगार कै चाख्यौ,
साँवरे लाल कौ साँवरो-रूप, मैं नैननि कौ कजरा करि राख्यौ।



पर-काज ही देह कौ धारैं फिरौ, परजन्य जथारथ है दरसौ,
निधि नीर सुधा के समान करौ, सब ही बिधि सज्जनता सरसौ।
"घन आँनद" जीवन दाइक हौ, कछु मेरी हू पीर हीऐं परसौ,
कबहूँ वा बिसासी सुजान के आँगन, मो आँसुवान कौ लै बरसौ।



अरबिन्द प्रफुल्लित, भौर किधौं, सु अचानक जाइ अरैं पै अरैं,
बनमाल-थली लखि कैं मृग-सावक, दौरि बिहार करै पै करैं।
सरसी ढिग आइ कै ब्याकुल-मीन, बिलास तैं कूदि परैं पै परैं,
अवलोकि गुपाल कौं "दास" जू ए, अँखियाँ तजि लाज ढरैं पै ढरैं।



रोवैं सदाँ नित की दुखियाँ बनि, ए अँखियाँ जिहि द्यौस सैं लागी,
रूप दिखाओ इन्हैं कबहूँ, "हरिचंद" जू जानि महा अनुरागी।
मानि हैं औरन मौ नहि ए, तुव रंग-रँगी कुल लाजहि त्यागी,
आँसुन कौ अपने अचरान सौ, लालन ? पौछि करौ बड भागी।



कै सुखमा के समुद्र मैं सोहि रहे जुग मीन अनेक-कला करि,
कै छबि की रचि पींजरी काम, दये तिहि मैं जुग-खंजन कौं धरि।
भारौ "मुनी रघुराज" किधौं, बिधु बाल-कुरंग द्वै लीन्हे मुदै भरि,
आपने नैंम मैं लागे सुपन्थ, पागे किधौं रुकिमिन्न-दृगै हरि।

जाकैं लगैं सोई जानैं निथा, पर-पीर मैं कोऊ उपहास करैना ,
"सागर" जो चुभिजात हैं चित्त तौ कोटि उपाइ करै पै टरै ना।
नैंकु सी काँकरी जाकैं परै, वह पीर के मारै सु धीर धरै ना ,
कैसै परै कल एरी भटू ? जब आँख मैं आँख परै निकरै ना।



डोरे सुरग, त्यौं सारद रग से, सेत कछू रुचि गग सँवारे ,
ता पर ए अरबीली चितौन की, चोटैं अचूक न जाति सँभारे।
बक-निलोकनि मैं "लछिराम" लसैं इति धीरज-मोचन तारे ,
पाँखुरी मैं अरविन्दन के लिपटे मनौं र्यालौ मलिन्द के बारे।



मृग के चख मजु से, मीनन से, मुद-मोद सदाँ सुखरासनी के ,
कजरारे, सुकारे, कटीले, कछू, औ सिरे गुन जूरे जुरासनी के।
"चिरजीवी" लला है ठगे से रहे, छिन ठाडे भए ब्रज-वासनी के ,
धँसे जी मैं, न नैंकु कढे अजहूँ, जुग-नैंन अनग-बिलासनी के।



काँनन लौं चरचौई करैं, अति प्यारे लगैं कजरारे अहो हैं ,
जोनन के मद सौ उँमगे, लखि मेरे मढैं जन जेतन को हैं।
"गोकुल" साँचि सराहिवे जोगि, जगै जग मैं जग जैनतजो हैं ,
चचल खजन, मीन, मृगैन, सु चैंन भरे चख रावरे सो हैं।



हैं पर से वर चारु-दृगचल, रचत सी सुरमा कजराई ,
नैंकु नहीं थिर है फिरते रहैं, कानन कौ पर सैं सुखदाई।
"गोकुल" खजन तै इन तैं, इतनी ही लखी हरि अतरताई ,
बेधति हैं लखि तैं हियरौ, तिय के चख मैं इतनी अधिकाई।

एक घरी न थिरैं फिरते रहैं, कानन लौं भरि-भूरि प्रभा तैं,
जोवन-भार-भरे असि औ सित, सोहत एऊ अहो कजरा तैं।
"गोकुल" दोऊ सराहिबे जोग, जगै-जग मैं जस मोद-महा तैं,
रावरे-नैंन कटाच्छिन तैं, वलि खंजन राजति चंचल ता तैं।

❀

मीननि की गति हीन भई, छवि कंजन खंजन की सुख दैंन,
अनूप सुहात मनोज निसालि, सु तीच्छन धार हैं बान से ऐंन।
धरे अति-सॉंन कहा खरसान, भनै "पजनेस" सु मृगसम नैंन,
लखै नँद-नंद परै नहिं चैन, सु राजति भॉंवती के असनैंन।

❀

पोइ कैं कोयन सौं मन-डारि, सु-लाज की बैरिन-बावरी पेखीं,
रूखी भईं अति भूँखी ए प्रान की, आन की ऐसी अनीत न लेखीं।
"नागर" रूपहि के अभिमान, खरी लड-बावरी बानि बिसेखीं,
मारैं घरीक, घरीक उबारैं, ए ऑंखैं अनौंखी तिहारिऐं देखीं।

❀

देखति नॉंहिन ठौर-कुठौर रहैं जित ही तित चाह-चके हैं,
और घरी पर औरहि दीसतु, झूँमति आरस मैं नियके हैं।
लाज तजैं, सिथलाई गहैं, अपने वस नाहि सु यौं बहके हैं,
देवि कहैं जिय की सब-बात, विलोचन ए छवि-छाक छके हैं।

❀

आलस के रस मैं नियके, रँग-लाल के रंग-सुरंग भए हैं,
देति कहैं चित के हित की, चुगली ठिक-ठैंननि एई ठए हैं।
'निंदति हैं अरविंद-प्रभा, अनुराग-पराग मैं पागि गए हैं,
होंहिं न ए तिन के सजनी। दृग आजु अपूरब-ओप छए हैं।

कजन की अरु खजन को, मृग, मीननि की छवि छीनि लई हैं,
नौंकी-नुकीली कटाच्छ-भरी, महा-अजन की द्युति न्यारी नई हैं।
हैं 'द्विज वैनी" बिसाल मनोहर, नैंन के बान सी मौज-भई-हैं,
तोहि दई हैं निरखिबे कौं वलि, मारिबे कौ तौ दई न दई हैं।

आनन चद सौ, खजन से दृग, हैं हरि के रिपु के रस-छाते,
प्रैम अमी, अनुराग-रँगे पै मनो रस-सिन्धु में मानौं चुचाते।
जुत अजन रँजन हैं मन के "व्रजचन्द" भनैं घन झूम-झुमाते,
मानों कलानिधि पै विधि-कज, द्विरेफल से तिन पै मद-मँते।

लीन रहैं नित रूप-पयोनिधि, मीन कहैं कवि बुद्धि बिचारी,
दीन अधीन रहैं नित ही, बिनु देखें न "तोष" लहैं सु सदारी।
बानि परी पिय पेखनि की, कुलि-काँन बिसार दई इन सारी,
लागि जो जाहि तौ कीजै कहा, सखि ? ए अँखियों रिझवारि हमारी।

अजनु अग अछै कछनी, सिखए नव-जोवन नाइक हैं,
काँदति फूले निसाँक गहे करवाल कटाच्छ सहाइक हैं।
ओट कौ ढाल करी पलकैं, ललकैं अति जौंम सौ लाइक हैं,
त्रिप-लोचन चोट बचावति हैं, तिय-नैंन कि मैन के पाइक हैं।

रति-रची रति-र ग पिया-सँग, अग लसै अति ही अलसानौं,
सोहति आनन यौं स्रम-बिन्दु, ज्यौं इन्दु अमी-कन सौं सरसानौं।
"लाल" कछूक खुली-अँखियाँन मैं, तारेन की छवि कैसै बखानौं,
साँझ समैं के समीप सरोज के झाँक रहे थिर ह्वै अलि मानौं।

बाँके बिचित्र बने घरि अंजन, गंजन मीन, महा मृग नाके,
जोट बरौनिन की करि कोटि, खरे वरु चोट घुटैल' चलाके।
ए "छितिपालक" जे पूतरी सूथरी, उपमा करि कैं बिधि थाके,
नैंन-सिपाहिन नै सिर पै मनौ टोप दिए मनि-मेचक वाके।



बेधन हार जहाँ जितने, तितने सब आसन हार त्रिसाए,
काम-कमान चलै पर बानन, नहिं "छितिपाल" समान गँवाए।
रच्छन हार नहीं जग मैं, जनमें सब दच्छ सु स्वच्छ उपाए,
चूकति लच्छन गच्छति आपु, कहौ किनि अच्छन अच्छ सिखाए।



आजु अटा चढि आई घटान मैं, बिज्जु-घटा सी बधू बनि कोऊ,
"देव" तिया कवि देवन केती, पै एते बिलास हुलास न ओऊ।
पूरब-पुन्ननि तै बड़-भाग बिरंच रच्यौ रचना जग-सोऊ,
जाहि लखै लहु अंजन दै, दुख-भंजन ए दृग-रंजन दोऊ।



पूस-निसा मैं सु बारुनी लै, बनि बैठे दुहूँ के दुहूँ मतवाले,
त्यौ "पदमाकर" झूमैं झुकैं घन-घूमि रचैं रस-रंग रसाले।
सीत कौ जीत अभीत भए, सु गनैं न सरी ? कछु साल-दुसाले,
छाकि छकी छवि ही की पियें मद, नैंननि के किए मैंन सु प्याले।



अंग पराए भए सब हीं, अब तौ न बनैं उन सौ मुख-मोड़े,
कैसैंहुँ मान, मैं ठान्यौ हिऐं, दईं सामुहैं होति न रंचहु थोड़े।
चेत अचेत रहै न कछू, "रसिकेस" कोऊ निज थान न छोड़े,
हौ कसिकैं रिसि के करौ नैंन, दुहूँ निसरो हँसि देति निगोड़े।

यौ नित होति घनी दिग त्यौ, अति ही जिय लालच लागत हैं,
"रसिकेस" उमग बढ़ै रति ज्यौ तहँ दूनौं-अनग सु जागत हैं।
नख तें सिर रूप भरे हैं खरे, बहुरौ मुसिकानि कौ माँगत हैं,
लरि लोचन-लालची ऐ अजहूँ, ललचौंही सुबान न त्यागत हैं।

❀

जब ही जब वौ सुधि कीजतु है, तब ही सब ही सुधि जाति सही,
गति और भई, मति और भई, सब ही अँग और हि बानि गही।
इहि रीति अनीति नई ही छई, निरखै ही बनें सो परै न कही,
"रसिकेस" लगी रहैं आँखिन आँख,सु आँख जु लागति रंच नहीं।

❀

बिधिहूँ सौं जु बारिक पूछिऐ तौ,अति ही तृन मैं सिर राखि बिसेखी,
लोक तिहूँ निच हेरी चहूँ, नर-नारि अनूप अपार अलेखी।
यह रस-रीति नई छबि है, कबहूँ कितहूँ न सुखी वह पेखी,
साँची कहौ "रसिकेस" अजौ तुम, आँखिन आँखि कहूँ अस देखी।

❀

फूल, गुलाल के पुंजन सौं, अलि गुंजन सौं तरु ताल लतारी,
प्रेम भरी ब्रज की बनितान की, तान की, गान की, मान की, गारी।
तेरे लिऐं तकि ताकि रहे तकि, हेति किऐं बलबीर बिहारी,
ऐ बड़े नैंन दिखाइ दै नैंकु, तू ए घर-घालिन घूँघटवारी।

❀

बसी बजावति आँन कढ़े, बनिता घनीं देखनि मैं अनुरागीं,
हौंहू अभाग-भरी डगरी, मग री गिरे चौंक सनै हरि-भागी।
लागै पलक न "सेनक" सौ, इन्हैं फोरिहौं सौति सुभाव लै जागीं,
हाइ हमारी जरी-अँखियाँ, बिष-बान है मोहन के उर लागीं।

कौन धौं सीखी रही भई है, इन नैंन-अनौखिऐ नेह की नाधनि,
प्यारे सौं पुन्ननि भेट-भई, यह लोक की लाज बड़ी-अपराधनि।
ओट किऐं रहते न वनैं, कहते न वनैं बिरहानल-दाधनि,
स्याम-सुधा-निधि आँनन कौं, मरिए सखि ? सूधि चितौन की साधनि।



रोप रच्यौ तिय दोष तिहारेई, प्यारे करौ रस-राखि परेखौ,
पाँइन हूँ परि प्यारी मनाइए, प्रीति की रीति है यक निसेखौ।
नैंकु तिहारे-निहारे बिना, कलपै जिय क्यौ पल धीरज लेखौ,
नीरज-नैंनी के नीर भरे किन, नीरद से दृग-नीरज देखौ।



परिद बारि सही "रघुनाथ" कहैं जिन चारु किए दृग-मोर हैं,
ईछन कज सही सुथरे, जिन लोचन-भौर किए वर नोर हैं।
बोलन जो सो मही मुकता, जिन आँखिन पै किए हस-किसोर हैं,
प्यारी कौ आनन, इन्दु मही, जेहि कीन्हे गुविन्द के नैंन-चकोर हैं।



पीर हुए की हिए में पिराइ, लखाइ न रचहु जानैं न कोऊ,
हाइ निहाइ सुहाइ न औरु, उपाइ-करोर तैं जाइ न सोऊ।
हौं तौ कहौं "रसिकेस" अली, ? यह काहू कौ भूलि निथा जनि होऊ,
लोचन-बाननि कौ विप एसौ लगै इकु, घाइल होति हैं दोऊ।



लेति लपेटि नवेलिन कौ मनु, नैंकु निगाह कीऐं तिरछी सी,
देति नहीं चित-चाइ कनौ तरसावति, रात दिना करछी सी।
त्यौ निसि-द्यौस करेजन में फिरै, काम कटाच्छन की करछी सी,
सैंन नहीं पुनि मैंन नहीं, इहि आँखिन आँनि धर्मे बरछी-सी,

कहि कैं रस की बतियाँ लहिकैं-रति के सुख कौ मन-रंजन सौ ,
विपरीत मचाइ रही बहु-भाँति, सु चाइ रह्यो लगि पजन सौ ।
"मनिदेव" कहैं इमि बैनी कौ छोरि, लुरैं लगि नैंन के अजन सौ ,
लखि आइ अली ? अनुराग रली, मनौ खेलति नागिनी खजन सौ ।



रेखु कछुकै रली अजन की, कछु कजन की अरुनाई रही भ्वै ,
आलस लाजि पगे "रघुनाथ" कछू-कछू चचलता कौं रहे छ्वै ।
ऐसे लसे दृग-प्यारी के प्रातहिं, भौह समैटि रही उपमा है ,
वेलि सिंगार की द्वै-दल के तर, खेलति खजन के चिगुला द्वै ।



हौ कित ह्वै इत आनि कढी औ कहाँ तैं इतै वे कान्हर ऐहैं ,
ह्वै है कहाँ तैं अचानक-भेट, कहाँ तैं लिलाट-लिख्यौ फल पैहैं ।
और सौ और भई गति मेरी, दई वे किसोर कहा करि दैहैं ,
हौ कहा जानौ हमारेई भाग री, लाग-लगीं अँखियाँ लगि जैहैं ।



हारि गईं सिगरी कहि कैं, हम रावरे की जे हितू सखियाँ हैं ,
भावन भौन सौ रूसि गयौ अब आँनद हू कैं जमी पँखियाँ हैं ।
"गोकुल" माह में मान करे तें, भई तिय वारि बिना मखियाँ हैं ,
दोस बिलोकिबे कौ पिय के, बिधि कीनीं मनौ ए बडी-अँखियाँ हैं ।



अरी जाकैं लगी न तन में कँकरी, कहा जानें प्रसूति-बिथा घँमरी ,
हिरनी है भूमि में क्यौ न गिरीं, सर साटर सार भई भँमरी ।
"निधि-तोष" तू क्यौ समुहैं भई री ! तब-वाहि कटाच्छन की नजरी ,
बरजोरी बिहारी के नैंननि सौ, करवोई करैं बहि कैं झगरी ।

समता-भ्रमता में परी ही रहैं, अवलोकि छटा उन-नैंननि की,
सरसात ससी-युति सुन्दरता, लहि हैं छबि लाज सरोजन की।
"भुवनेस" तवै विधि ए ते सुरग, कुरग गहैं सरि क्यौं इन की,
इन पानिप कौ लै मीन हूँ के गन आस कहैं निज-जीवन का।

❀

भूँमति है मद सौ भरि कैं, मृग से पुनि चौंकि चहूँ दिसि जौंहैं,
खजन से उडि जाति सबै थल, मीन-सपच्छ मनौ जुग सौंहैं।
नूतन-कज समान विकास, करैं चख ए सब कौ मन मौंहैं,
पै उलटौ गुन धारि सदाँ, वनि बान-समान हनैं तन धौंहैं।

❀

कोऊ मनैं न करै इन को, हठि ठान मनैं अनतैं करि राखैं,
धीर-धरैं न टरैं निसि-चौस, अरैं अति ही करि कैं अभिलाखैं।
त्यौं "बलदेव" कृपा सरसै बहु, ज्यौ हिव नारिधि पानिप चाखैं,
जानती पीर जरे-जिय की, जय होती कहूँ अँखियाँन कै आँखें।

❀

घूघट कौ पट डाल चल्यौ, बरछी की अनी सुलनी मलकावैं,
नाँ गिनती कोऊ जोवन-जोर सौं, नैंन-महावत हूलव आवैं।
ध्यान डिगैं मुनि ग्यानिन के, जब कामिन नैंन के बान चलावैं,
घाइल से घुमरैं कितने, निघना इहि नैंन के थान बचावैं॥

❀

अभिलासन लासन-भँति भरीं, वरुनीन के रोस सौं काँपतीं हैं,
"घन-आँनद" जान सुधाधर-मूरति, चाँदन अग सौं चाँपतीं हैं।
टुक राह रही पल-पावडे से, सुचि सौं रुचि चौपहि आँवतीं हैं,
जन तें तुम आवनि-औधि वदी, तन तें अँखियाँ मग-नाँपतीं हैं।

सासु रिमात, मकै ननदी, सखि ? तू सिखवै सिख, सीख के बैंना,
दै ब्रज-वास चवाव महा, चहुँ-ओर चलैं उपहास के बैंना।
देखति सुन्दरि साँवरी-मूरति, लोक अलोक की लीक लखैंना,
कैसी करौं हटके न रहैं, चलि जाति तऊ लखि लालची-नैंना।



बैन सुधा से, सुधा सी हँसी, बसुधा मैं सुधा की सटा करती हैं,
त्यौं "पद्माकर" बारहि-बार, सु बार बगारि लटा-करती हैं।
बीर ? निवारे बटोहिन पैं इक-काज ही तो यैं चटा करती हैं,
निजु-उदासी अटा पै चढी, मुकटाच्छन-धाल कटा करती हैं।



यह कज सौं कोमल अग गुपाल को, सोऊ सबै पुनि जानती हौ,
यनि नैंकु रुखाई धरैं कुम्हलात, इतौऊ नहीं पहिचानती हौ।
कवि "ठाकुर" इहि कर जोरि कहौं, इतने पै जिनैं नहिं मानती हौ,
दृग-बान औ भौंह कमान कहो, अब कान लौं कौन पै तानती हौ।



लाल लखैं ते सिरोमनि 'आपु, लखाइ फिरौं जस जान न पावै,
पाछैं परे तब थाही घरी ?, चित-चोरि चलो फिर कौन छुडावै।
लागैं कटाच्छ गिरे हरि घाइल, घूमत नैंकु सँभार न आवै,
ऐसी दई मुरिकैं दृग-कोरि, ज्यौं चोर चपे पै चोट चलावै।



चख चचल यौं चमकैं तिय के, दृग, अचल मैं न रहैं हट के,
पुनि सैंननि चित्त चुरावति स्याम कौ बाम के ए टुटिका बटके।
अलि लोल-कपोल पै डोलत हैं, ढपरा पट-घूघट मैं सटके,
नट यौ पट भेद बतावत हैं, जिमि भाव चलैं गुटका नटके।

रैंनि जगी, रति-प्रेंम-पगी, उर ही सौ लगी, निधि की अवरेखी,
लाज-लजीली, कटाच्छ चटीली, रसाल रसीली-विसाल विसेखा।
खजन, मीन, मृगीन लजावति, पीत-सरोज समान के लेखी,
"कान्हर" की सौं तेरी सौं राधिके ?, तेरी सी आँखि न आँखिन देखी।



ओप-अनूप है आनन की, अँखियाँ विन काजर हू कजरारी,
रैंन-दिना निसरैं सी रहैं, विसरी करिऐ विसरैं न विसारी।
नैंननि जो निरखै "नवला" निकसैं उर बेधि अनी अनियारी,
भामिनि की भर नींद भरी, वरुनीन परैं वरुनी झपकारी।



द्युति देखति दसन की हिय हारत, हीरन के गन दाडिम हैं,
वसुधा निच चारु क्षुधा की मिठाई, सुधा-धर सौ धर सालिम हैं।
अनुनैंन बनी भृकुटी-कुटिलै, कल-मैंन के चाँप सों आलिम हैं,
जग,जाहिर जोर जनाइवे कौ , अँखियाँ जमराज सौं जालिम हैं।



तन सोहति नील-दुकूल गरैं , अति त्यौं मनि-माल विराजति सुन्दर,
विवि-कुंडल कानन वीर जरे, अरु फैलि रहे कच आँनन ऊपर।
नव-रतन सुजान भरे छवि-भुज, परे कल कंकन कचन के कर,
निंत अंजन रंजन, कंजन भंजन, खंजन गंजन नैंन-मनोहर।



"नूर" बनी वरुनी वरुनी की, देखति बारुनी सौं चढ़ि आवै,
कैधौं सिली-मुख हैं अति तीखे, भरे पल-तून खरे लखि भावै।
भौंहैं बनीं धनु हैं ढिंग दोऊ, मानौ धुरंधर खैंचि चढावै,
होइ कठोर हजार हियौ वऊ, वेधति मैं नहिं वार लगावै।

आन भरे, अमनैंक, अमान, गुमान-मृगीन के जीति लए हैं,
ओज-मनोज भरे जिन के, सु मरोज न रोजन छोर-छए हैं।
सालव सान से सौतिन कौं, तिनकी चित-चाए वियोग हए हैं,
हेरि अपूरब नौखे नए मन-रजन खजन, मौंन-भए हैं।

❀

भौंह-कमान मैं बान दिएँ, मन-रजन अजन, लै पुनि पागैं,
घाइल हा करि आरति हैं, मन-मानिक मजु महा लहि आगैं।
आन फँसावति आपुहिं लोग, सँजोग सनै वर-भोग अभागैं,
तीर लगै, तरवारि लगै, पुनि काहू के काहू सौ नैंन न लागैं।

❀

कज किएँ जलवास रहैं, किएँ आस रहैं रवि की किरनौं की,
मीनन की गिनती है कहा, छन वारि तजै नहीं आस तनौ की।
खजन हैं खग औ मृग कानन, "वासौ" कहैं हम तौ निज-गौ की,
तीय के नैंननि की समता, नहिं कजन, खजन, मीन, मृगौं की।

❀

भौंह कमान बिना जिहितैं, छुटि टेढे चलैं दुहुँ ओर अनेरे,
नैंननि आँन अचूक लगैं, हिय बेधति क्यौंहू फिरैं नहिं फेरे।
और सबै अँग व्याकुल है, बरसावति बिथा बदलात घनेरे,
रौति गहैं सन तै बिष मैं, त्रिपमैं सर ईच्छन तीच्छन तेरे।

❀

खजन सान मैं ढारी मनौ, खरमान सँवारि निरचि अगोटैं,
कैरर कोरैं कटाच्छ फिरैं, "हछिराम" जऊ घिरी घूघट-ओटैं।
या गिरिधारन-साँवरे हेरि, रच्यो घरी-चार सौ भू पर लोटैं,
धीरज धौ चरचूर करैं भज, ए आँखियाँ अनीदार की चोटैं।

जबही जब वे सुधि कीजतु हैं, तबही सबहीं सुधि जाति सही,
गति और भई, मति और भई, सब आगे औरहि बान गही।
यह रीति अनीति नई है छई, निरखेंही बने सो परै न कही,
"रसकेस" लगी रहैं आँखिन आँखि, सु आँखें लागति रच नहीं।



अंजन अंजित हैं मन रंजन, खंजन के मद भंजन सो हैं,
चाह भरे औ उछाह भरे, नव-नेह भरे, सब को मन मोहैं।
वे ठग, काहि ठगै न भले-अलि जाति समान अयान है जोहैं,
को ललिचाइ न लालन के, "रसिकेस" सुनैं न लखें ललचौहैं।



देव कहा औ अदेव कहा, औ कहा नरदेव कहावति सोऊ,
जोगी कहा औ जती हू कहा, औ व्रती कहा, बन मैं बसैं जोऊ।
तीनों-लोकनि मैं इन सो "रघुनाथ" रह्यौ बिनु हारैं न कोऊ,
बान सौ मैन, कटाच्छ भरे नैन, ए जग जैन बिख्यात हैं दोऊ।



लोल अमोल कटाच्छ-कलोल, अलोलिक सौ पट आलिके फेरे,
पानिप सौं अति पैने रसाल, बिसाल बने मन-भाँवते मेरे।
"केसव"चीकने चौगुने चोखे, चितैकै किए हरि न्याइन चेरे,
सोच सँकोचन श्री रति-रोचन, धीरज-मोचन, लोचन तेरे।



खंजन की अरु मीनन की अरु अंबुज की, जिय जीति बसैं ते,
काम के बानन की, मृग की औ दुरेफन की छबि देखि हँसैं ते।
ऐसिनि सौ गुनिऐं "रघुनाथ" न मंजन अंजन-देखि लसैं ते,
तेरे बिलोचन यातें भटू ? भए तीरसे तन्यौननि ह्वै निकसैं ते।

काहू के कंजन खंजन को, "रघुनाथ" धरैं रुचि राम निहारै,
काहू के मीन मृगौननि के गुन, रूप धरैं रँग के अलि हारै।
जेतिक हैं जग मैं जुगलौ, तिनके ढँग को इहि भाँति निहारै,
तीच्छन-बानन की धरैं-धार, सो ईच्छन ए सुखदानि तिहारै।

❀

बाहू विहीन बिना गुनि तानि, सरासन-बान चलावै कठोर हैं,
कान समीप रहैं निसि-बासर, स्याम-हितू बिनपाँइन दोर हैं।
रूप बड़ी औ बड़े धनवारे, कहावति पै बड़े चित्त के चोर हैं,
बातैं करैं री! बिना रसना, वृषभाँनु-लली के अली दृग ओर हैं।

❀

कौन रहै ठग-मूरि सी खाइ कैं, भूलति कौंन विवेक कलै,
काहि न वे बिसरावैं सबै, सुधि "मोहन" वे केहि की अब लै।
होवि सयान अयान सबै, चतुराई अनेक न एकु चलै,
आली री? मोहन लाल के लोल बिलोचन देखति को न छलै।

❀

नैननि की चढ़िबारि लरैं, चित-चातुरी की उँमगी अधिकाई,
चातुरी की अधिकाई लखी, तब नैंननि ओर गही सरसाई।
"हरन" कहैं, बर बाध्यौ दुहूँन कौ नइते पर धौंस मनोज की पाई,
होड़हिं होड़ चली यह मानो, बिलोचन औ चित की चतुराई।

❀

हेतु अहेतु कछू न बिचारति, क्यौंहू अचेतनि चेत गहैं री,
देखति वा मन-मोहन की छबि, क्यौंहूँ लजाति न मेरे कहैं री।
हौं कसिकैं कितनौ रिस कौ करौ, ए न सिरै हँसि कै उन हैरी,
कैसी करौ इन नैंननि कौ, इहि बान-परी ढिगहू कैं रहैंरी।

खजन ऐसे कहाँ मन-रजन, मीनन लेखौ कहा रस टार सौ,
कजन लाज कौ लेस नहीं, मृग रूखे सने ए सनेह के सार सौ।
मौतिन कें यह पानिप जोति न, वारिज बारन जानति मार सौ,
मीत-सुजान सराहति तो दृग, हैं "घन आँनद" र ग अपार सौ।



निल लाज भरे, हित टार टरे, निखरे सुघरे सुखदाइक हैं,
"घन आँनद" झूमि कटाच्छन सौं, रस पानि तृपाहि सहाइक हैं।
जिय बेधन कौं अनियारे-महा पै सुधा ही सुधारन साइक हैं,
घिरि घूघट पैठति जानिही ए, निपटे निबरे नट-नाइक हैं।



दुहूँ नैंन न मानहि नैंकु हू सीख, किती समुझाइ कही इन सौं,
टुक हेरति धाइकें आइ मिलैं, पुनि क्यौंहू न धीर धरैं छिन सौं।
अपनी दिसि तें हम प्रान औ अग, निछावरि कीने घने दिन सौं,
तन औ मन हारैंहु रूसे रहैं, "रसिकेस" वस्याइ कहा तिन सौं।



तुन खजन-नैंन चकोर बने तिया ? नाँहक अजन दे भरि हैं,
जकरे गज-मस्त जँजीरन तैं, तिनरौ मद-प्याइ कहा करि हैं।
मतवारेन यौ लै देति कमान, लगाइ कैं तीर हिए परि हैं,
ए आमौ तौ ऐसे कटाच्छ करैं परसौ तौ इहै परलैं करि हैं।



स्याम-सरोजनि मैं निवसे, किधौ मजु-मलिन्दन के गन नीके,
कै थिरता गहि कैं जुग-खजन, वास कियौ मुद-दाइक ही कै।
कै यह फाँस सी गाँसी मनौं, भव-बाँधे अहैं जुग-मीन वली के,
कै मन-रजन कारौ सु अजन, रजित हैं अति नैंन-नवी के।

रंजन ही निलु गजन हैं, मद-खजन स्याम, सुफेद तुरग कौ,
यौ "नृप-सभु" भरे अनुराग, सुराग, गयौ उडि कज सुरग कौ।
ति नई में नए दग दौरत, ज्यौं रद होति इराक तुरग कौ,
नन्द मैं मानौ अनग-दलाल, लगायौ है खासन खास कुरग कौ।

❀

घूँघट ओट निगोए रहैं सखी?, राधा के कोए उठैं जिमि डाटि हैं,
काम के थान से सान धरे, जिन जीत्यौ, जहाँन इन्है ते वे घाटि हैं।
तेरे हथियार की रीति पगे "नृप सभु" जू डारति म्यान कौ काटि हैं,
याही तैं जानिए नैंन हैं मैंन, जो कानन लौ पलकैं रही काटि हैं।

❀

देखति वा नट नागर की छवि, फाँद परे हट कैं न रहौं ही,
लोचन-लोल, तुरी मुँह जोर, सु लाज-लगाम कौ माँनति नाँही।
ऐंचति हौ अपने इतकौ, बलि ए बल कै उतही चलि जाहीं,
कैसी करौ नहिं मो बस ए, कुल काँनि के चाबुक तैं न डराहीं।

❀

खजन, मीन सौं बैर कियौ, जल देखति ही मृग दूरि सौं भागैं,
गोरे करारे भरे रस मैं, उन लोइन-लाल सदाँ रस-पागैं।
कै जुग खून करैंगे घनौं, वह जो कबहूँ रति मैं निसि जागैं,
काजर काहे कौं देति अली? तेरे सादे जो नैंन कटार से लागैं।

❀

केऊ निहार सुमार भई, लगि नैंन-प्रहार हिए सुधि-मोचन,
केऊ हिए लगि ढोरी रहीं, केऊ बौरी है ता घर की पर-सोचन।
केऊ भई मन नैंन मई, तजि लाज दई, तऊ रच सकोचन,
मोह-खरेरे हिए उर मेरे, सु "नागर" तेरे अनौंखे ए लोचन।

चरकैं छनि-साँवरी निहारे निना, जु छुटी जल ज्यौं थल मैं मखियाँ,
पल चैंन न देति सरी-निसरीं औ कछू मृदु-हास चखी चखियाँ।
अन्वीली, अनोंखी, उचाट-भरीं, अरी "नागर" नाहिं रहैं रखियाँ,
दुख-चाहन सौं अररानी परै, अति बैरनि बावरी ए अँखियाँ।

❀

राजति रानी-जसोमति पै, दुलही पिय-छैल छिलै हित नोटैं,
कैसे निसक निहारै छकैं छवि, बीच परी कुल-काँनि की पोटैं।
लाज-झुके दृग नागरि के, तिरछै चलि चूरैं (रुरैं) दुकुन की ओटैं,
दोऊ मैं होति न कोऊ लरै, वे सनेह सों भींजी चितौंन की चोटैं।

❀

सीखे कुलच्छिन है लड-नावरे, मैं समुझाइ झके झिझकारे,
मूँद दए पल-बीच किंवारन, तौऊ रहे न कितौ पचिहारे।
सुन्दरताई कौं जीतति जो पै, तु हारति हैं मन सौं धन मारे,
"नागर" खेले निना न रहैं, भए ए दृग रूप जुवारी हमारे।

❀

ए निधना ? यह कीनौं कहा, अरे मो-मन प्रैंम-उमग भरी क्यौं,
प्रैंम-उमग भरी तौ भरी हुती, सुन्दर-रूप कन्यौं तैं हरी ? क्यौं।
सुन्दर-रूप कन्यौ तौ कन्यौ, तामैं "नागर" एती अदाँऐं धरी क्यौं,
जो पै अदाँऐं धरी तौ धरी, पै ए अँखियाँ रिझवारि करी क्यौं।

❀

दीठि की लाज-जँजीरनि तोरि, खरे-निखरे पकरैंऊ रहैंना,
धीर बिना भहराइ उठैं, ठहरैं न कहूँ जक-जीव परैंना।
"नागर" रूपहिं रूप लगी रट, नाहिं कछू कहि जाति हैं बैंना,
लागै न औषद-ग्यान कहूँ, भए रीझि की बाइ सौं बावरे नैंना।

घूँघट ओट, किऐं हूँ रहैं नहिं, हैं उतपाती मो छाती के दाहक ,
धाइ किए विधना सुख-कारे, महा-सठ ए हठ के जु निबाहक ।
वार विचार न जानैं कछू, अति-आतुर "नागर" रूप के गाहक ,
मेरे ई नैंन-निगोड़े बुरे, मन दीनौं फँसाइ विचारौ अनाहक ।

❀

"नागर" नैंन-सरोवर मीन कि पकज की पँखियाँ अनियारी ,
स्याँनैं माँटैं हिरणाँनी चलावियै, जूवौ तमैं सहु सोचि-विचारी ।
गोया ममोले या खजन खासे, तारीफ करे क्या जुबान हमारी ,
बीजी न मीढ़ैं लागैं कोंई ओपमा, कान्हा जी री आँख्याँ कामणगारी।





नैन-निकुंज

# दोहा

# दोहा

जाके निरखति नैंकु हीं, रह्यौ न मानि[illegible],
मदन-सदन जानी जु मैं, अँखियाँ स्याम-सुजान।

नैंना नैंकु न मानहीं, कितौ कह्यौ समुझाइ,
तन-मन हारे हूँ हँसैं, तिनसौं कहा बस्याइ।

जन-जन वौ सुधि कीजिये, तन-तव सब सुधिजाइ,
आँखिन आँखि लगी रहीं, आँखै लागति नाइ।

प्रैम-तृपा की ताप धुन, कैसैंहुँ कही न जात,
रूप-नीर छिरकति रहैं, तऊ न नैंन अघात।

उरझि स्याम-दृग-अनी सौं, दसकति ना टुक मौंन,
अली बदौलत नैंन के, कियौ हियौ पिय-भौंन।

का कहिऐ इन नैंन कौं, जब तैं भयौ दुन्चार,
नीर-धीर ना रुक सकै, चलनी-हियौ-हमार।

बसैं भवन-तन ए दोऊ, नैंना किधौं कजाक,
धीर, धरम, मद, मन सहित, खोऐं देति चलाक।

कैसे-कैसे हितू ए, नैंन हमारे वाम,
धीर, धरम, मद, संपदा, दै-राते रँग-स्याम।



लला-मली परजाति चट, निरखति स्याम निकास,
हमैं न नैंकौ रह्यौ इन-नैंननि कौ विस्वास।



तन, मन बेधक हैं घनी, रहहिं तनी अति पैंन,
नहिं तरुनी बरुनी-घनी, बनी अनी-सर-मैंन।



सजनी ? निपट-अचेत हैं, दगा-दगी समुझैं न,
चित, नित, पर-कर देति हैं, लगा-लगी करि नैंन।



निधरक छवि-छाके छकैं, चराहिं न अरु निचलैं न,
ए लोचन अति लालची, बरजैं हूँ मानैं-न।



भोरहि उठि आए ललन!, कल न परी निसि सैंन,
मेरे अनुरागनि-रँगे, तरुन-अरुन ए नैंन।



गहि बरुनी-बरछी बनी, अरु कटाच्छ-तरवारि,
नैंन-बीर लै भीर घँसि, धीर-अमीर हि मारि।



लागे नैंना नैंन मैं, कियौ कहा धौं मैंन,
नहिं लागे नैंना रहैं, लागे नैंना-नैंन।

कजरारी-छवि पेखि कैं, मुरछि परे ब्रजराज,
कहि कौनैं लौंने-नयनि, टौंने कीन्हे-आज।

ऐसैं हीं बेधक बने, ए अनियारे-नैंन,
फिरि अरुनारे करि कहा, हा बेधैं हरि चैंन।

बिधि इन अनियारे-नयन, कत निरचे सुनि बाल !,
जिन तैं हेरि किए अरी ?, हरि-हौं बेधि निहाल।

द्रगन खुभी खूटी-खुभी, निमराई निसरैंन,
चल चख चितवनि चित-खुभी, बिमराई निसरैंन।

खंजन, कंज न सर लहैं, बलि अलि कौ न बखान,
ए नीकी अँखियाँनि तैं, ए नीकी अँखियाँन।

दुपहर भए कहर करि, जहर रंगाऐ नैंन,
मन-रंजन न जगे अजौं, अन-सकि अंजन-दैंन।

हेरति हैं सो तैं चकित, हेरति पावति नाहिं,
चोर लियौ चित-चोर चित, एकहि चितवन माहिं।

धीर मढति मन-धन नहीं, कढवि वदन तैं बैंन,
सुरत सुरन की सुरत कै, जुरन सुरत हँसि-नैंन।

वरु बरछी, कैनर लगै, खरग लगै सर पैंन,
कारी लगै कटारि हूँ, सखि पै लगैं न नैंन।



थाके खजन, भृग, मृग, झखि लखि बाँके पैंन,
या ललना के लसति हैं, चपल-चलाके-नैंन।



मैं न लखी ऐसी दसा, जैसी कीनीं मैंन,
तब तैं लागैं नैंन नहिं, जब तैं लागे-नैंन।



मारि छलाक रहे अहि, पारि रहे हैं चैंन,
ए न नैंन हैं रावरे!, लसत मैंन के सैंन।



ऐसे चचल जगत-गात, देखे सोधि न कोइ,
मनु निधि काढे दृग-तुरँग, सु छबि-पयोधिविलोइ।



इतै चितै तू कत खरी, नँहदी मँहदी नाहिं,
वे लोयन-कोयन अरी! प्रति-बिम्बित दरसाहिं।



चलहु सिंगार कहा करौ, सहज हरौ मन-मैंन,
ऐसै हीं नींके लगै, बिनु काजर के नैंन।



भए कठिन ए ठग नए, नय न, नयन के राज,
रूप-उदधि मैं लागि कै, मारत लाज-जहाज।

जीते चारु-चकोर रुचि, सुचि मनसिज-सर-पैन ,
थारे अनियारे लसैं, रतनारे ए नैन ।



केतौ हौं बरजति रही, निचले नैंकु रहैं न ,
हरि-तन-पानिप पी अरी ?, भले पियासे-नैन ।



निकल परी बरि रहि खरी !, अरी जगावति काहि ,
नजर नजर यह स्याम की, नजर करी अब याहि ।



मान सुधा तजि बाल बलि, बोलि खोलि सुख ऐन ,
अधर-सुधा-लालच-भरे, लाल ? लालची-नैन ।



ए चोखे कोयन लगैं, कोय न मनसिज-बान ,
ए लोयन लगि नहि लगैं, लोयन-लोय न आन ।



आज अहेरी-नैन ए, भए अहेरी बीर ? ,
हरि-मन करमाइल किए, घाइल चितवनि-तीर ।



लोक-लाज, कुल, धरम, धन, अरु चाहैं सुख-चैन ,
सपनै हूँ मति कीजियो, भूलि भरोसौ-नैन ।



ठकी, थकी, डोलौ चकी, स्याम मिलन चित-चाइ ,
यह गति कीनी नैन ने , धीरहि-धूरि उड़ाइ ।

मान, बड़ाई, धरम, धन, जो चाहौ कुल कानि,
मूँदि सात-पट राखियो, रस-लपट नै नानि।



आपु छके, नै ना-छके, और छके सब गात,
जा तन चितवति नै न-भरि, रौंम-रौंम छकि जात।



डीठ-डोर औ मन कलस, काम-कूआ मैं डारि,
ए नैंना तुव नागरी!, भरति प्रेंम-रस-वारि।



तन-ताजी, अरु वार-मन, नैंन पियादे साथ,
जोबन चलौ सिकार कौं, बिरह-बाज लै हाथ।



मन-मौंहन के नैंन-वर, बरनि कौंन बिधि जाहिं,
मीन, कंज, मृग, मैंन-सर, खंजन हूँ सम नाहिं।



जदुपति के नै नानि हित, बिधि है निरचे मैंन,
मीन, कंज, खंजन मृगहुँ, समता नैंकु लहैंन।



यह बूझनि पै। नै न ए, लगि-लगि कानन जात,
काहू के मुख तुम सुनीं। पिय आवन की वात।



प्रेंम-नगर मैं दृग-बया। नौंखे प्रगटे आइ,
द्वै-मन कौ करि एक मन, भाव देति ठहराइ।

रूप-नगर बसि मदन-नृप, दृग-जासूस रागाइ,
नेंहिन मन कौ भेद उन, लीनौं तुरत मँगाइ।

❀

सुन्दर, जोवन-रूप जो, वसुधा मैं न समाइ,
दृग-तारेंनि तिल बिच तिन्हैं, नेंही! धरति लुकाइ।

❀

जिहि मग दौरत निरदई, तेरे नैंन-कजाक,
तिहि मग फिरति सनेहिया, किऐं गरेवाँ-चाक।

❀

मुकत भए घर खोइ कैं, काँनन बैंठे जाइ,
घर खोनति अब और कौ, कीजै कौन उपाइ।

❀

यौं तिय-नैंननि लाज ज्यौं, लसति काम के भाइ,
मिल्यौ सलिल मैं नेह ज्यौं, ऊपर ही दरसाइ।

❀

मुख-ससि निरखि चकोर अरु तन-पानिप लखि मीन,
पद-पंकज देखति भँवर, होति नैंन-रस-लीन।

❀

कजरारे-दृग की घटा, जब उनवै वहि ओर,
बरसि सिरावैं पुहुमि-उर, रूप-ललान-भकोर।

❀

रिस-रस, दधि-सक्कर जहाँ, मधु मधुरी-मुसिकान,
घृत-सनेह, छवि-पय करै, दृग पंचामृत-पान।

फोरत बाने-ढाल कौ, तनक लगाऐ-मैंन,
अचरज का भेदैं जु मन, मैंन-भरे सर-नैंन।

❀

~हीरा बिनु हीरा कनी, कहूँ न बेधी जाइ।
मन-हीरा, तुब दृग-कमल, सहजैं बेधति आइ।

❀

इन मैं ह्वै दरसात है, हरि-मूरति की लोइ,
या तैं लोयन कहति हैं, इन सौं मिलि सब कोइ।

❀

लौ इनकी लागी रहै, निज मन-मोहन-रूप,
यातैं इन "रस-निधि" लह्यौ, लोयन नाम अनूप।

❀

निसि-बासर लोचति रहति, अपनहुँ मन अभिराम,
यातैं पायौ "रसिक-निधि" इननैं लोचन-नाम।

❀

जो कुछ उपजत आइ उर, सोनैं आँखैं देति,
"रस निधि" आँखैं नाम इन, पायौ अरथ समेति।

❀

और रसन लै जानि हीं, रसना हूँ अभिराम,
चाखति मो ए रूप-रस, यातैं हैं चख-नाम।

❀

"रहिमन" मन-महराज के, दृग से नाहिं दिवान,
जाहि देखि रीझैं नयन, मन तिहि हाथ बिकान।

बरुनी-बान सम्हारि कैं, भौंह-धनुक निच तान ,
लगति सूर घाइल गिरैं, भरे गरूर-महान ।



पिय मन बैठन के पटा, पलक-जयती-काम ,
किधौं ताहि के रतन हैं, सपुट-हेम-ललाम ।



कारे-कजरारे अमल, पानिप-ढारे ऐंन ,
मतवारे, प्यारे, चपल, तुव ढुरवारे नैंन ।



दृग-दारा तकि ज्यौं लह्यौ, दीपक जातक भाइ ,
जग के घातक पाइ कै, लागत पातक धाइ ।



अनियारी अँखियाँन मैं, सोहत काजर-रेखु ,
मनहुँ काम-नन आनि कैं, गढी नुकीली-मेखु ।



कोये कागज, निमल निधु, गोलक अच्छर, अक ,
तन-मन सरवस, अजन, जन, रति-सर-मीन निसक ।



रूप-सरोवर माहिं तुव, फूले नैंन-सरोज ,
ता हित अलि-नेही तहाँ, आवत दौरे रोज ।



लालरूप के अमृत-फल, दृग-द्रुम लागति आइ ,
याही तै निधिनै दई, बरुनी-बार बनाइ

पीवति हू न अघात हैं, छबि-रस प्यासे-नैन,
पल-चोंके वाधें रहैं, नाहीं नैकु कहैन।



घालै नैन-कटारियाँ, जेते सरस सु पान,
कसकति ए उर में रहैं, कहति बनै न जुबान।



रूप-अधिक दृग कर मलहिं, रोपै लै छबि-जाल,
नेही राजन-नैन ए, निधए हेरति हाल।



पहराए नृप-रूप तुव, जब तैं नैन दिवान,
तब तैं लै नेहीन के, मन-धन लगे कपान।



✓रूप-नगर में बसत हैं, नगर-सेठ तुव नैन,
मन-जामिन लै नेहियन, लगे पूँजि-छबि दैन।



रे तवीब ? यह बात तैं, अपने ग्रन्थन हेरु,
दृग-गाँसी जिहि उर गढी, सो कहुं निकसति फेरु।



हेरत ही जाके छके, पलहू उझकि सकैन,
मन-गहिनैं धरि मीत पै, छबि-मद पीवति नैन।



✓अद्भुत-रचना विधि रची, यामैं नाहिं विवाद।
विना जीभ के लेति दृग, अजब-सलौनौ स्वाद।

चुभती जो नहिं दृग-अनी, त्रिभुवन-पति उर आइ,
देतो जानक रुचिर वह, क्यौ व्रज-बालनि-पाँइ।

जिन नैंननि कौ है सही, मोहन-रूप अहार,
तिन कौ बैद बतावहीं, लघन कौ उपचार।

नैंन-बान जिहि उर छिदैं, कसकति लेति न साँस,
मीतहि उनकी है दवा, मिलै न बैदहि पास।

कसक बनी तब तैं रहै, बँधति न ऊपर खोट,
दृग-अनियारे की लगी, जब तै हिय मैं चोट।

तब तै पल-बर और तन, पलक पसारत हैं न,
जब तै छबि-धन मीत दै, किए अजाची-नैंन।

प्रीति-पान नव-रस-कथा, चूनौं-नेह लगाइ,
पीतम-सुरत दृग-दीठि करि, बीरा देवि रचाइ।

हरै सु छबि-तृन चरति ए, मन-मृग रूप-कछार,
सिंह-रूप तुम दृग लखौं, गिरति सु खाइ पछार।

बधिक-कसाइन तै बचौ ए बे-दरदी नैंन,
विधि भरि दीनीं वैसि ही, विष-महबूबा-नैंन।

चिबुक-कूप मधि डोल-विल, डारि अलक की डोर,
दृग-भिस्ती कर कर-पलक, छवि-जल भरति झकोर।



मिलि विसवास बढाइ कैं, चित-नित लेति चुराइ,
राखत नैंन-कजाक तुव, छवि नन मँाहि दुराई।



असनेहिन हित-नगर मैं, सकत न कोऊ लूट,
चतुर-जगाती लाल-दृग ? लेति सनेहिन लूट।



राख्यौ है मन लाज के, दृग-द्वारैं दरवान,
बिना नेह परवानगी, सु चित न पावै जान।



पीवति-पीवति रूप-रस, बढति रहै हित-प्यास,
दई नई नेही दृगनि, अजब-अनोखी आस।



सुरख-चश्म महबूब के, खंजर किए सँवार,
निकरैं लोहू सौ रँगे, आशिक-पजर पार।



इश्क-खेत सौ नहिं टलै, आवै वे निसवास,
चश्म चश्म सौ सिर लड़े, धड़ बोलै साबास।



मारैं फिरि-फिरि मारिऐ, चश्म-तीर से खूब,
किऐं अदालत जुलम की, बैठा वह महबूब।

याहीं तै जानी गई, नैंना मेरे हैंन,
आपु रीझि मन कौ लगे, बे-दरदिन कौ दै न।



चितै करत औचक चितै, ए मॉचेहु बे-चैंन,
चंचल, चोरे-चरसन की, अजब निहारी सैंन।



करत काम निज-नाम सम, प्यारी ! तेरे-नैंन,
कहँ सनै सुख ऐंन पै, हमैं लगे दुख-दैंन !



तो छबि-वदन अनूप लखि, पलकै करैं सलाम,
कारे तिल कौ खाइ कै लोचन भए गुलाम।



किए लाल जब तै ललकि बाल-नैंन निज ऐन,
बरुनी ओट उसीर की, तन तै सींचत मैंन।



छाके नेह निरास की तब लौ प्यास न जाइ,
जब लौ दियौ अघाइ नहिं दृग-सर-पानिप पाइ।



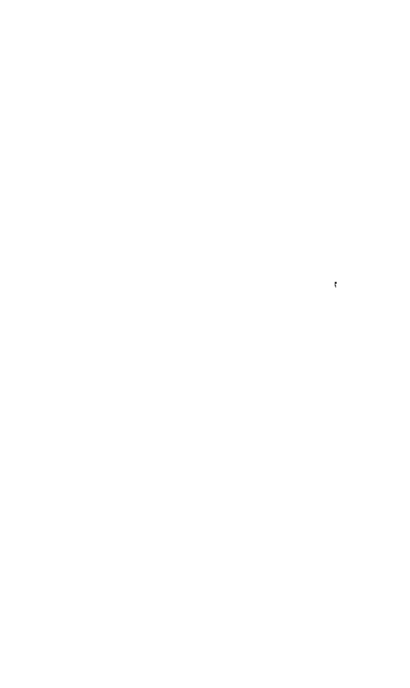
नभ, जल, थल नैंना करति, निसि दिन रहैं अहेर,
खंज, मीन मृग कहन के, बाज, ग्राह अरु सेर।



✓बरुनीं के नीके बने, हैं पिंजरे करादार,
फाँसत खंजन-नैंन औ फँसत नैंन दिमदार।



# सोरठा



# सोरठा



मेरे नैंननि जाइ, मिलि हरि कींनी मिलहरी,
मन धन दियौ बताइ, "रस निधि" मौंहन-चोर कौं।



होइ कौंन तन धीर, कहि धौं तू मोसौं यहै,
नैंन अन्यारे-तीर, जों घालैं या जिहि लगै।



रूप-नगर में नैंन, निसि दिन फेरी देति हैं,
मौंहन मूरत-नैंन, दरसन भिच्छा के लियें।



जोती डोरे-लाल, पलकन के करिकै पला,
धारे यौंट बिसाल, जोखति हरि-दृग रूप-धन।



रहते कौंन अधार, दुसह-दुरग पिय-बिरह भौ,
करि न राखते त्यार, ध्यान-जखीरा नैंन जो।



फेरी दै-दै जाँइ, दरसन-भिच्छा के लियें,
नैंन वियोगी आँइ, जोगी तैं का घट भए।



चाँहति भाँति-अनेक, मौंहन-मुख कौ दरसिबौ,
निधि चूक्यौ निधि एक, रौंम-रौंम दृग ना रचे।

सकल-सजाकी नारि, मजा कर्यौ जो आजु लखि,
करी कजाकी मारि, चखन चलाकी सौं अरी ?।

❀

चैंन ऐंन घनस्याम, बैंन कहति हैं सैंन सौं,
नैंन-अैंन जग बाम, बने पैंन सर मैंन के।



# कुंडलिया

# कुण्डलिया

नैंन-सलौने रस भरे, छिपे पलक की ओट,
बाँननहूँ तै सरस अति, करैं चोट पै चोट।
करैं चोट पै चोट, खोट, इहि सम नहिं तल मैं,
घेरि बटोही बेधि, करति घाइल इक-पल मैं।
रहै निकल नित चित्त, नहीं सुरत आवै बैंननि।
सैंननि हीं हरि लेंइ, जीव ए रसिया-नैंननि।



सगत-दोप लगै सनै, कहे जु साँचे-नैंन,
कुटिल-वक्र-भ्रू सग तै, भए कुटल-गति नैंन।
भए कुटिल-गति नैंन, कुटलई पिय सौं ठानति,
सूधे जिय अरि रहति, कान, सिख नैंकु न मानति।
उरझि परति "हरिचन्द" सैंन सजि बरुनिन पगति।
घाइल वाकौ करति, खरे बिगरे लहि सगति।



दृगन लगत बेधत हियौ, निकल करति अँगआन,
ए तेरे सब तै विषम, ईच्छन-तीच्छन-बान।
इच्छन-तीच्छन बान, आजु अति अचरज पारैं,
मिलति करेजैं घाव करैं, बिछुरैं जिय-मारैं।
काढ़ैं औरहु धँसति, बढति उपचार निरखि ढिंग,
जेहिं लागति तेहि लगन देति नहिं, लगन लाय दृग।

झूठे जानि न समहैं, मनु मुँह निकसे बैंनु,
याही तैं मानो किए, बातन कौ बिधि नैंनु।
बातन कौ निधि नैंन, किऐ सब निधि बिधि जानी,
निनु बोलैंहूँ जासु, मधुर-बोलन रस-सानी।
हाव-भाव "हरिचन्द", छिपे रस-भरे अनूठे,
कहैं देति जिय-बात, करति मुख के छल झूठे।



साइक सम माइक नयन, रँगे त्रिविध-रँग गात,
झखौ बिलखि दुरि जाति जल, लखि जलजात लजात।
लखि जलजात लजात, हिरन बन बसति निरंतर,
खंजन निज मद-गंजन करि, निवसति तरुवर पर।
सो मोहति "हरिचन्द" जान त्रिभुवन के नाइक,
बुझे त्रीबैंनी-नीर, जीय-घाइक-दृग साइक।



घर जीते सर-मैंन के, ऐसे देखे मैंन,
हरिनी के नैनानि तैं, ऐ हरि नीके नैंन।
हरि नीके ऐ नैंन, अनीके दा बरनी के,
फीके कमलन करन, भाँवते जीके-जीके।
हीके हरि "हरिचन्द" रग चीते, पिय पीते,
नीते माँनति नाहिं, चपल-चीते बरजीते।



# बरवै

# बरवै

बड़े-नयन कुटि-भृकुटी, भाल-बिसाल ,
तुलसी मोहत मनहिं मनोहर-बाल ।

❀

तुलसी बक बिलोकनि, मृदु-मुसिकाँनि ,
कस प्रभु-नैंन, कमलि से कहौं बखानि ।

❀

बिरह-आगि उर ऊपर, जब अधिकाइ ,
ए अँखियाँ दोऊ बैरिनि, दैंइ बुझाइ ।

❀

अहिरी मनकी गहिरी, उतरु न देइ ,
नैंना करै मथनियाँ, मन मथि लेइ ।

❀

चित, चितवनि कौं दीन्यौं, बिनु-तकरार ,
सहिवो कौंन तगादौ, बारबार ।

❀

बड़े-चीकने कारे, सित, रतनार ,
चचल, चतुर, नुकीले, नैंना दार ।

❀

तारे तुपक, दीठि ही गोली साज ,
हिय बेधै न चुकति पख-बरकदाज ।

उलट पलट अध ऊरध, सनमुख जेत,
दीठि-पटान कटाकर, नैंन पटैत।

❀

ए मतवारे नैंना, मतवारेन,
करत लरत मतवारे, मति हरि लेन।

❀

छके छाक छबि-मद के, ईछनदार,
छैलन छलत, छकावत, छल-सरदार।

❀

सुख, सुधि, रँग, गुन, बल, धृति, मन, बुधि, चेत,
चतुर-चोर-चख लखतहिं, सब हरि लेत।

❀

अरुन, सेत, कारे, रज, सत, तम ऐंन,
उतपति, पालन, लै के, करता नैंन।

❀

एकु गुनात्मक गुन को गुनि कवि मौन,
त्रिगुनात्मक तुव नैंनहिं, बरनैं कौन।

❀

लखि चचलता चख की, मृग अरु मीन,
भजि, लजि, कानन, जल कौं सेवन कीन।

❀

कियौ खून जनु लाली, विषधर मान,
खजर नौंक नयन के, भेदन प्रान।

वकत, जकत, असकत है, दिन अरु रैंन ,
उर धक धकत चक्त जेहि तक्त सु नैंन ।

❀

डारी दीठि वाहि पै जब तै ईठि ,
नीठि-नीठि उठि बैठति, गई गडि दीठि ।

❀

जाहि तीरीछैं चितई नागरि-नारि ,
लग्यौ तासु मन पीछै सब-सुख टारि ।

❀

करि कटाच्छ कर चट-पट घूघट ओट ,
लोट-पोट करि कै गई, दै दुख-मोट ।

❀

प्यारी नैंन-पतुरिया, सोभा खान ,
मानस नील-नलिन के अली समान ।

❀

चिक-बरुनी, पल-परदा, गृह सित-नैंन ,
मरकत-आसन सोहत, पुतरी-मैंन ।

❀

लखि तारे कारे दृग, कबि-चित चेत ,
अलि इदीवर-दल पै, बसि रस लेत ।

❀

चख-चचल बिच पुतरी, सोहति स्याम ,
मनहुँ मीन-वाहन पै राजत काम ।



नैंन-निकुंज —

# शेर

# शेर

मुझ को हुआ है मालुम, ए मस्ते-जाम-खूनी ?,
तुझ अँखिडियों के देखे, आलम खराब होगा।

✓नैन से नैन मिलाय गया,
दिल-अन्दर मेरे समाय गया।

निगाहे-गर्म से मेरे दिल में,
खुश-नैन आग सी लगाय गया।

हर एक निगह मे हम से, करने लगेहो नोंकें,
झुछ यूँ तेरी आँखो ने, पकड़ा है तौर नौंका।

मिजगाँ तो तेज तर हैं व लेकिन जिगर कहाँ,
तरकश तो हैं भरे पै निशाने किधर गये।

गाँठ काटी है मेरे दिल की, तेरी आँखों ने,
दो पलक नहीं, ए कतरनी है मगर चोरों की।

थिलकें सूरज मनीं जूँ, रत्ते शुआ के शोले,
देख अँखियाँ मनीं, यह लाल-झमक डोरों की।

जादू हैं तेरे नैन गजालो से कहूँगा,
तुझ लब की सिफत लाल-बदख्शाँ से कहूँगा।



आगोश में भवों की, करती है कत्ल-अँखियाँ,
कोई पूछता नहीं है, मसजिद में कत्ल होये।



निगवाँ चाहिये, सरशार के पास,
तेरी आँखों से क्योंकर दिल जुदा हो।



हुए यक आन में, जख्मी-हजारों,
जिधर उस यार ने, तीरछी-नजर की।



दो-चार अब तुझ से क्योंकर, होयें हम-चश्मी के दावे से,
कि नरगिस की चमन में देख कर गरदन ढलकती है।



✓जब से तुम्हारी आँखें, आलम को भाइयाँ हैं,
दम मे जहाँ में तुमने, धूमें मचाइयाँ हैं।



दिखाई चश्म-मस्त अपनी, जब उस रिन्दे-शरावीने,
न दम मारा कटोरे ने, न हिचकी ली गुलावी ने।



इतना वफूर खुश नहीं, आता है अश्क का,
आलम को मत डुबोइयो ए चश्म-तर यहाँ।

अलम से यों तलक रोईं कि आखिर होगया रुसवा,
डुवाया हाय आँखों ने, मजह का खान्दाँ अपना।



रुसवा अगर न करना था, आलम में यूं मुझे,
ऐसी निगाहे-नाज से, देखा था क्यू मुझे।



निसार हैं जमी से, उठती नहीं असा-बिन,
नरगिस को तूने शायद, आँखें दिखाइयाँ हैं।



सावन के बादलों की, तरह से भरे हुए,
यह वह नयन हैं जिनसे कि जगल हरे हुए।



बूँदों के जमधरों से, वह भिड़ते हैं हम-दिगर,
लड़के मुफ आँसुवों के, गजब मनकरे हुए।



मौजे आतिश है, सैल आखों में,
शायद इस दिल का, आवला फूटा।



न जिया तेरी चश्म का मारा,
न तेरी जुल्फ का बँधा छूटा।



मेरी आँख में तू रहता है, (वो) मुझको क्यों रुलाता है,
समझ कर देखलो अपना भी कोई घर डुबाता है।

मुत्तसिल रोते ही रहिये, तो बुझे आतिशे दिल,
एक दो आँसू तो और आग लगा जाते हैं।



दो दिन गये कि आँखें, दरिया सी बहतियाँ थीं,
सूखा पड़ा है अब तो, मुद्दत से यह दुआना।



क्या आग की चिनगारियाँ, सीने में भरी हैं,
जो आँसू मेरी आँख से गिरता है शरर है।



जान से होगये, बदन खाली,
जिस तरफ तूने आँख-भर देखा।



कहीं हुए हैं सवालो-जवाब आँखों में,
यह वे सबब नहीं, हमसे हिजाब आँखों में।



तेरी तिरछी-निगाहों ने, रखा है नीम निस्मिल कर,
अगर फिर कर नजर देखे, तो मेरा काम हो जाये।



लगती नहीं पलक से पलक, वस्ल में भी आह,
आँखों को पड़ गया मजा इन्तजार का।



जामे-मै की नहीं, अब हम को तलब ऐ साकी,
बस तेरी आँख दिखाने ही ने बेहोश किया।

वल्लाह कि मैं भर के नजर, देख न सकता,
तू ही अगर आँखों मे, मेरी यार न होता।



फ़ुकीं निकलती हैं, अश्कों की शीशियाँ या रब,
हमारे सीने में बनी किस शीशेगर की भट्टी है।



तूफ़ाँ उठा रहा है, मेरे दिल मे सोंले-अश्क,
यह दिन खुदा न लाये, कि मैं आबदीदा हूँ।



है चश्म नीम-बाज अजब ख्वाब नाज है,
कितना तो सो रहा है, दरे कितना बाज है।



आँसुओं से हिज्र में, बरसात रखिये साल-भर,
हम को गरमी चाहिये, हरगिज न जाडा चाहिये।



जामे-नरगिस में कहाँ, शबनम जो निकले आफताब,
यार के आगे मेरी आँखों में यक आँसू नहीं।



मैंने जब आँखों के मजमूँ का पढा वहशत में शेर,
कुए जानाँ को चले, आहू बयानाँ छोड़-कर।



तायरे-रूह को, कर देते हैं क्योंकर बिस्मिल,
तीर रखते हैं परीरू न कमाँ रखते हैं।

फेरी तूने जिस से, दम फ़ना उसका हुआ,
ऑंख के आसार, जिन्दों में नज़र आने लगे।
मुर्दों

✿

ल की दाव-घात मे मिज़गाँ से चश्मे-यार,
है दि हैं करद टट्टी की ओझल शिकार का।
फ़र्क

✿

। से अश्क सिफ़्त, मुझको गिराकर न सम्हाल,
ऑंर हीं वह कि सम्हाले से सम्हल जाऊँगा।
मैं न

✿

से ऑंख हैं लड़ती, मुझे डर है मेरे दिल का,
ऑंख यह जाय न इस जंगो-जदल में मारा।
कहीं

✿

की चश्म की गर्दिश पै गर्दिशे आलम,
है उन्र हो उनकी नज़र, सब उधर को देखते हैं।
जिध

✿

ए-अश्क चश्म से, जिस आन बह गया,
दरि लीजियो कि अर्श का ईवान बह गया।
सुन

✿

अन्दाज़ जिधर, दीदए-जानाँ होंगे,
नावा विस्मिल कई होंगे, कई बे-जाँ होंगे।
नीम

✿

ऐ आइना-दारे, खुदनुमाई,
दे सुरमए-चश्म, आशनाई।

खत उस आरिज का जब से, छुप-गया है मेरी नजरों मे,
निगह यूँ आँख में चुभती है, काँटा जैसे छालों मे ।



वह कहते हैं कि हम आँखों में, सब को ताड लेते हैं ,
मुहब्बत सारी दुनियाँ की, इसी काँटे में तोली है ।



उस की कड़ी-नजर की, उठाई न गई चोट ,
लगत ही ठेस शीशए—दिल चूर-चूर था ।



चश्मे-नरगिस न मिली, दीदए-आहू न मिला ,
ऐ हया ? तुझ को इन्हीं, आँखों में क्या रहना था ।



कह रही है हश्र में, वह आँख-शर्माई हुई ।



इधर की न हो जाय, दुनियाँ उधर की ,
जमाने को बदलो, न आँखें बदल-कर ॥



चश्म-जानाँ से अलग हो ऐ-हया ?,
यूँ झुके पड़ते नहीं, बीमार पर ।



आगया कुछ याद, दिल भर आया, आँसू गिर पड़े ,
हम न रोये थे तुम्हारे, मुस्कराने के लिये ।

मुझ को तबाह चश्मे-मुरव्वत ने कर दिया,
मिल-जाये तो चुराऊ किसी की नज़र को मैं।



बरबाद किया जिस से, जहाँ आँख लड़ाई।
खाक उड़ती है आलम में, तेरे मौजे नजर से।



हमने माना कि वो आँखें नहीं जादू 'आसी,
रात-भर वस्ल में फिर उन को जगाते क्यों हो।



क्योंकर कहूँ कि चार-निगाहें उदू से कीं,
आधी निगाह ने तो किया नीमजाँ मुझे।



जख्मी किया सीने को, नजर है कि गजब है।



लूटा है उस निगाह ने, मिल कर निगाह से,
चोरी गया है दिल। इन्हीं आँखो की राह से।



दिलों में करते जो उल्फत, से हैं जहाँ दारी,
जहाँ को एक नजर में, गुलाम करते हैं।



आँख मिलते ही, कर लेते हैं क़ाबूदिल को,
आज उन आँख का, चल के कमाल देखेंगे।

या रब ? हो दिल की खैर कि कुछ कर रहे हैं आज ,
चश्मो निगाह मशवरा, नाजो, अदाँ, सलाह ।



छोड़ा न दिल मे सब्र, न आराम न शिकेब ,
तेरी निगाह ने साफ किया, धर के धर पै हाथ ।



ज्यूँ तेग खुश गिलाफ निगह तेरी ऐ परी ? ,
है दमनदम निकल के चमकती—गिलाफ से ।



यही गर तेरी चश्म सहर आफरीं हैं ,
तो दिल है, न जाँ हैं, न ईमाँ, न दीं हैं ।



ऐ जौक आज सामने, उस चश्म-मस्त के ,
बातिल सब अपने, दावये-दानिशवरी हुए ।



मुझे नरगिस का दस्ता, गैर के हाथों से क्यूँ भेजा ,
अगर आँखें दिखानी थीं, दिखाते अपनी आँखों से ।



उस चश्म-मैं-फरोश से, कोई न बच सका ,
सब को बकदर होंसलए, दिल-सरूर था ।



कहर की लाख निगाहों की, जरूरत क्या है ,
लुत्फ की एक निगह-नाज न जीने देगी ।

वही शीशा, वही सागर, वही पैमाना हैं,
चश्मे-साकी हैं कि मैखाने को मैखाना हैं।



वह निगाहें किस गजब की, तेज छुरियाँ हो गईं,
दिल में डूबीं और हर गोशा में पिनहाँ होगईं।



दिल की खबर, न होश किसी को जिगर का है,
अल्लाह ! अब यह हाल तुम्हारी नजर का है।



देखी तेरी आँखों की, कैफीयतें-रानाई,
अब किससे सम्हलता है, जामे-मीनाई,



आँखों से जान जाइये, फुरक़त का माजरा,
अश्कों से पूछ लीजिये, जो दिल का हाल है।



# समस्या-पूर्ति

## समस्या-पूर्ति

# कवित्त

# समस्या-पूर्ति

## 'लोचन तिहारे हैं'

अजन बिना ही मन-रजन मुनीसन के,
मैंन-मद भजन सदाँ ही जैत-वारे हैं,
कारे, सेत, अरुन अमोल हैं अतोल-छवि—
ऐंन सुघराई के विधाता नैं सँवारे हैं।
सील के सरोवर, सिपाही सूरवीरता के,
कीन्हे हैं निहाल नैंकु जितही निहारे हैं,
विपति हरैया, ताप-तीन हू नसैया,
पाप-मोचन करैया राम-"लोचन तिहारे हैं"।



जिन न निहारे, ते निहारति निहारिबे कौं,
काऊ ना निहारे, जिन कैसें कै निहारे हैं,
सुर, नग, नाग, नव-कन्यन के प्रान-पति,
पति-देवतान हूँ के हिय मैं विहारे हैं।
याही निधि "केसौराइ" रावरे ? असेष अग,
उपमा न उपजैं पै विरचि पचिहारे हैं,
मान-मदमोचन औ मदन-मद मोचन कौं,
तिय-व्रत मोचन कौं "लोचन तिहारे हैं"।

कज-द्युति भजन हैं, खजन के गजन हैं,
रजन करति, जन मजन सँवारे हैं,
सोभा के सदन, कोटि मोहति मदन, मीन—
मद के कदन, मृग दूरि करि डारे हैं।
लाज, गुन-गेह, नेह-मेह बरसैं अछेह,
देह न सँभारैं जाति जन तैं निहारे हैं,
कारे, कजरारे, अनियारे, झपकारे,
सित-नारे, रतनारे, प्यारी "लोचन तिहारे हैं"।

❀

प्रैम-भरे, प्रीति-भरे, नीति-भरे, रीति-भरे,
जीति भरे, भौंरन तैं देखियतु कारे हैं,
रस-भरे, जस-भरे, नेह-भरे, नूर-भरे,
नौंक-भरे, झौंक-भरे, काम-सर धारे हैं।
मैंन-भरे, सैंन-भरे, चैंन भरे, बैंन-भरे,
"लाल—बलबीर" मधु-भरे मतवारे हैं,
स्यान-भरे, ग्यान भरे, मान, बान, आन भरे,
लोभ-भरे, लाग-भरे "लोचन तिहारे हैं"।

❀

## 'लोचन तिहारे, दुख-मोचन हमारे हैं'

सुन्दर-ढरारे, कजरारे, दृग-भारे मनौं,
आतमा के साँचे ढरे, बिधि के सँवारे हैं,
दीरघ-महारे, अनियारे, द्युति-धारे, तारे,
सुधा के सुधारे मनौं मधु-मतवारे हैं।

मीन-मन मारे, लखि चचरीक हारे,
दुति खजन निसारे, जल-जात पाँत वारे हैं।
प्रेम उजियारे, सुख-नींद के करन हारे,
"लोचन तिहारे, दुख-मोचन हमारे हैं"।

❀

कोऊ कहौ कज हैं कलानिधि सुधा-सर के,
कोऊ कहौ खजन सुचि-रस के निवारे हैं,
"कहै रतनाकर" अनद-ओप कोऊ कहौ,
राधा-सुख-चन्द के चकोर चटकारे हैं।
कोऊ अग-कानन के कहति कुरग इन्हैं,
कोऊ मीन कहैं ए अनग-केत वारे हैं,
हम तौ न मानैं उपमानैं, एकु जानैं यह,
"लोचन तिहारे, दुख-मोचन हमारे हैं"।

❀

## 'नैन-वों के राधिका के हैं'

राजति अमांके, मद-छाके काल-कूट किधौं,
चचल-तुरग के समान ऐंन का के हैं,
पिय-हियरा के, मृग, मीनन के थाके किधौं,
सौति साल ही के, कै मैंन मद घाके हैं।
"परमी कहत" देखि खजन हूँ थाके किधौं,
स्याम, सेत ताके, लाल-आभा साधि का के हैं,
धर हैं धपाकर के, मुनाल के धलाके चारु—
चचल-चलाके "नैन-वों के राधिका के हैं"।

घतुर-चमाके से, झमाके-दार झुकि झाँकैं,
चचल-चलाके, कोस कोक की कला के हैं,
रति के न, रमा के न, न सोहति तिलोत्तमा के,
मैंनका की कहे कौन ऐसे न गिरा के हैं।
"ग्वालकवि" भरे सुरमा के, पै न उपमा के,
अजय-अदाँके मन-मौहन मजा के हैं,
ऐसे न रमा के, रमनीय सुरमाँ सौं सजे,
जैसे सूरमा से "नैंन बाँके राधिका के हैं"।



खजन-नवीन, मीन मान के उमाके देति,
नाके देति मृग-मद कज हू चहाँ के हैं,
ठौर-ठौर भँवर, भ्रमत लग्यौ जाके सग,
"भारतन" चकोर कहैं चचल चला के हैं।
ऐसे ना रमा के, ना उमा के, ना तिलोत्तमा के,
प्रबल-हरौल पचबान प्रीति-नाके हैं,
हैं न मजुघोषा के, बखानैं मैंनका के कहा,
ऐंन सुरमा के "नैंन-बाँके राधिका के हैं"।



एकही झमा के मैं छमाके सौं मोहैं मन,
ऐसे मार धारे ना उमाके, ना रमा के हैं,
दसहू-दिसा के, मनसा के फल दैंन-हारे,
करन निसाके, इमि जाकी ओर ताके हैं।

जाइ कैं जहाँ के तहाँ मीन जल ढाँके गए ,
हरिन-हहाके भरैं, कमल हू कहाँ के हैं ,
सरल-सभा के, सुखमा के, उपमा के चारु-
चचल-चलाके "नैन-चौंके राधिका के हैं" ।



लालची, लजीले, लोल ललित-रसीले लरि ,
लोगन ललकि-ललकि लूटैं लँगरा के हैं ,
छिन मैं छलीन चित्त छैलन को छोभैं, छरैं ,
छोरैं छरकीले से छबीले छबि-छाके हैं ।
"मनसा महति" केरा डौंड़ी दै डारे डाँकों ,
डारति डगर-डगर डग मैं सु डाँके हैं ,
ऐसे और का के मेनका के अविलोके मैं न ,
बानन तैं बाँके "नैन-चौंके राधिका के हैं" ।



करन-कला के, करुना के धाम धाके भए ,
पूरन-प्रभा के औ दया के औ मया के हैं ,
हाँके हरना के, अचला के, मेनका के भूप-
रूप-सुखमा के औ उमा के चारुता के हैं ।
माँके सौं झमाके "औध" जाकी ओर ताके-
रहैं, राह परैं डाँके सो डरैं ते सलड़ाके हैं ।
छाके सौं छमाके, जसुधा के छोहरा के चारु-
चचल चलाके "नैन-चौंके राधिका के हैं" ।

कीरति-पताका के काम-देवता के पूर्नपात्र,
प्रेम के पताकै दैंन-हार हित ता के हैं,
साँचे सुरमों के, सुखमों के जाके जोहैं होति,
मादक के प्याले से औ आले रसता के हैं।
पूतरी प्रवीनन के, सँकोच हैं नगीनन के,
ताके काज जडित सु डोल डिबिया के हैं,
जस करता के सान, तस करता के थान,
"नाथ" ए कजा के "नैंन-नौके राधिका के हैं"।



मींन है दीन ताके, छींनता के, हीन ताके,
सरमाए भए तिरिया के दरिया के हैं,
खजन निछिसता के मारे फिरैं मारे-मारे,
तितली-फलीसे लहि नहीं थिरता के हैं।
जल-भँवरा के, भँवरा के जल-डूबे हौंस,
निधि दबराके मारे रहैं भँवग के हैं,
पच्छी पच्छ ताकि गुन अच्छता के खोइ बैठे,
"नाथ" ए चलाके "नैंन-नौके राधिका के हैं"।



## 'नैंन-भूप-वाजी हैं'

खजन-किसोर किधौं चातक, चकोर चारु,
कैधौं कल कजन की छवि अति-छाजी हैं,
विसिख-बिसारे किधौं, अति-अनियारे ए,
कैधौं द्वै-दुरेफन की सुखमा निराजी हैं।

कैधौं चद-मडल मैं कारे द्वै-कुरग सखी ?,
कैधौं ए जुगल-मीन चपल-मिजाजी हैं,
रानी होति देखि जिन्हैं मदन-गुपाल लाल,
नैन नागरी के किधौं "मैंन-भूप-बाजी हैं"।



जालन मैं आन कैं फँसे हैं खजरीट किधौं,
कैधौं ए सरोजन की कलिका बिराजी हैं,
कैधौं हैं चकोर, किधौं मोर-मतवारे किधौं,
वारि तैं निकारि कोऊ डारी मीन-ताजी हैं।
"श्रीनिधि भनति" कैधौं छौंना-हरिनी के वेस,
कैधौं इन्हैं देखि कैं गयद-गति लाजी हैं,
कैधौं जहरीले कारे-नाग छिति-मडल के,
नैन राधिका के किधौं "मैंन-भूप-बाजी हैं"।



सुखमा सरोवर के मीन मजु कोऊ कहैं,
कोऊ-कोऊ कहति बिसारे बान राजी हैं,
कोऊ कहैं भृ ग से, बिहगम से कोऊ कहैं,
कोऊ कहैं नदन-बनै के मृग-ताजी हैं।
"श्री सिन-सुकवि" के न समता समाति ऐसी,
उपमा न कीजै जातैं लोग कहैं पाजी हैं,
कज-मद गजन करनहार अरे जान,
चैन दैन-हारे नैन "मैंन-भूप-बाजी हैं"।

विथुरीं-अलकन की फवन कही न जाइ,
स्रम-कन वलित निराजी रौंम-राजी हैं,
पीठ भुज-भूषन को, अधरन अंजन की,
आरस की अगन अनूप-छवि छाजी हैं।
"हरि-औध" प्यारे नींको वानिक तिहारो बन्यौं,
हेरैं ए अभागिनी हिए में होति राजी हैं,
रस मसे बैंन मैं, उनींदे दोऊ-नैंन बने,
 अजय-अनूठे आज "मैंन-भूप-बाजी हैं"।

❀

सुन्दर-सिंगार किऐं सोहै वृषभाँनु-लली ?,
जाति चली कुंजन मैं खूब-साज साजी हैं,
आनन-प्रकास चंद, गति कौं गयंद देखि,
रूप-देखि उमा, रमा, काम-बाम लाजी हैं।
"कहैं कवि दास" सखी ? साँचि मैं कहति तो सौं,
प्यारी कौं देखि सदाँ रहत स्याम राजी हैं,
भृकुटी-विसाल-बाँकी बकता कमान लाजै,
नैंननि निहारि लाजैं "मैंन भूप-बाजी हैं"।

❀

पलक-लगाम अली ? अंजन  तंग कसें,
घूँघट-भरौंरी तौऊ करैं यार साजी हैं,
रोकैं न रुकति, चलि जाति चित्त-चाहैं जित,
ऊँच-नींच गनैं न ए गरबीले बाजी हैं।

विरह-चाव-चाबुक सवार सीखि सीखे री !,
चातुरी की चाल देखि चपलाई लाजी हैं,
चमकें चलाक चोखे सेत, स्याम, रतनारे–
रंग धारे नैन मनौं "मैन-भूप-बाजी हैं" ।



लाज की लगाम नैंकु लतिया न मानैं इहि,
तोरि टूक-टूक करैं बडे बीर पाजी हैं,
कुल की न लीक रखैं सीखि ऐंड दूने उड़ैं,
बैंन-कटु चाबुक अपार-त्रास राजी हैं।
केवल सुसील-स्याम साँवरे सवारी-सुधे,
चलैं न तो याके सम तुरकी न ताजी हैं,
चंचल महा हैं, खूँद करैं थान घूँघट मैं,
तेरे नैन आगैं कहा "मैन-भूप-राजी हैं" ।



घूँघट मैं झीने-पट खुल ते खुरी सी करैं,
लाज की लगाम रुकि जाति तर-ताजी हैं,
अबलख-रंग त्यौं सुरंग "द्विज बलदेव"
आलसी-पलक संग अंग रौंम-राजी हैं।
फौंदति, फिरति, फानि, फन्दन फराक फैलि,
आतुरी-चलाकी मैं अनूप-अनदाजी हैं,
जादू भरी जोह तैं "ब्रजेस" बस कीन्हौं–
नैंन-सैंन मतवारी ऐंन "मैंन-भूप-बाजी हैं" ।

## 'तीरथ के तीर, काहू तीर मारियतु है'

जा दिन तू नीर जमुना पै लैंन गई हुती,
ठाडौ बल-बीर ताहि यौं निहारियतु है,
ता दिन तें खान, पान, सकल-बिसरि पर्यौ,
बे-सुध अपार जतन कीन्हैं हारियतु है।
ऐसौ सुकमार प्यारौ नंद कौ कुमार ता पै,
सुनि री! गँवारि नैंन-बान पारियतु है,
तैनैं पनिहारी ? नीति नैंकु ना बिचारी अरी ?
"तीरथ के तीर, काहू तीर मारियतु है"।



अबला बिचारी सौं कियौ है क्हा ए तौ बल,
कलिका-करी कहूँ मीज डारियतु है,
"बैंनीं द्विज" करत कटाच्छ ऐसी का पै लाल?,
बरबस बिहाल कै मही पै पारियतु है।
सिसकि रही है घोर-घाइल-घुमरि राधे,
ताहू पै न नैंकौ मन दया धारियतु है,
ह्वै कैं रन-धीर बल-बीर ए करौ हौ क्हा,
"तीरथ के तीर, काहू तीर मारियतु है"।



कहूँ गिर्यौं मुकट, लकुट-कहूँ हाथन तें,
कहूँ मुरा बाँस की बँसुरिया-डारियतु है,
कहूँ पट-पीत, कहूँ हार गर-गुंजन कौ,
कहूँ कारी कामरी "किदार" पारियतु है।

औरं है भानुजा पै निचलैं व्रजेस, राधे!,
नैंकु ना दया री ! तू हिए मैं धारियतु है,
मारि नैन-बान तान कठिन-करेजैं साधि,
"तीरथ के तीर, काहू तीर मारियतु है" ।



गंग की तरंग जोर-जंग सी धवलताई,
भानु-तनया सी स्यामताई धारियतु है,
थोरी अरुनाई की लुनाई बनो सारदा सी,
मिलि कैं त्रिबैंनी अघ-सैंनी तारियतु है ।
नैंन के कटाच्छन तैं मारि-मारि माधव कौं,
मैंन की तरंग अंग-अंग पारियतु है,
होति हैं अधीर, पीर पिया कौं बढावैं पीर,
"तीरथ के तीर, काहू तीर मारियतु है" ।



आए लाल तीरथराज करनि अन्हान तहाँ,
कीन्हों तू अनौंख्यो-ख्याल कैसी कारियतु है,
भौंह की कमान अरु नैंननि के तीर तानि,
मारि हिय माहिं नहिं ओट-धारियतु है ।
"भनत गनेस" कहैं राधिका सौं सखी ऐसैं,
है कैं री कठोर काहे लाल-मारियतु है,
परे हैं निहाल नहिं चलैं गैल-चाल हाइ,
"तीरथ के तीर, काहू तीर मारियतु है" ।

परव-पूनीत पुन्य-काल, तकि बाल-लाल,
न्हान-हेतु हौंस भरी भरि पधारियतु है,
मग में अनूप-रूप छबि-छाकि रहे छकि,
चित्र के लिखे से गाढे मौंन धारियतु है।
बिमल बिकास जोति जल में जलज-मुखी,
निरखि "निहारी" भृग-मन वारियतु है,
दते पै भृकुटि-तानि, अजन-पनच लाइ,
"तीरथ के तीर, काहू तीर मारियतु है"।



चलिऐ गुपाल-लाल प्यारी छबि निरखनि कौं,
यदि जमुना पै कहा काल टारियतु है,
फूलन-बिछाऐं सेज, मनिनि जडाऊदार,
भवन निहारि इन्द्र-लोक हारियतु है।
"दास कवि" उमा, रमा, सारदा लजानीं परैं,
काम-नाम रूप कौ गुमान गारियतु है,
नवल-छबीली के ए चचल नुकीले-नैंन,
"तीरथ के तीर, काहू तीर मारियतु है"।



तापस द्वै बास लीन्हौं कचुकी-कुटी के बीच,
मौतिन की माल गग-धार धारियतु है,
जघ-कदली-बन में नाभि-कुड गोता लैंइ,
तापित त्रिताप तू सुसील वारियतु है।

...नवीं पवन कौं अवतरनहारी करि
...न है निनाद पटुनाद धारियतु है,
...ला पुन्नभूमि में कनकौंहट बातें उनि,
"बीरन के बीर, काहू बीर मारियतु है"।

८

...गा सब 'हिजन्ना' गुने तुला लौं नाहिं,
मातुल-बसन्त पाटी पारियतु है,
साद सिंदूर सिर बीरन चढ़ाईं सब,
सैन साजि मंजुल प्रभा धारियतु है।
पलक-प्रतिंचा कसैं भृकुटी-कमान तान,
कैवर-कटाच्छ करि दौरि डारियतु है,
साल समीर मनराज कौं विरहीं बकि,
"बीरन के बीर, काहू बीर मारियतु है"।

९

सहज सिंगार-रस बूड़े मातुल सौं—
बाट पारिबे कौं पाटी अरी पाटी पारियतु है,
सारद लौं माँगि-माँगि लेवि मन "बलदेव"
सुरसरि संग सुक बोल धारियतु है।
भृकुटी-कमान मान आतुर सिंजा-धुन्य सौं,
प्रेम की प्रतिचा गौने गौनि गारियतु है,
तरुनी! तदन त्यौर ताकनि विरहे है,
"बीरन के बीर, काहू बीर मारियतु है"।

विधि कौ सदन, द्वारपाल जुग राजैं रनि,
सुरा मैं त्रिबैंनी तहाँ पीर पारियतु है,
दरसि रहे हैं स्वर्ग सपुट मैं सालिगराम,
कबुवर ताके एक तीर धारियतु है।
"ललित" सिरार जुग-समु के समीप दीसैं,
तापर सरोज भरि नीर ढारियतु है,
वानि बिनु गुन की कमान सरिसान-नैंन,
"तीरथ के तीर, काहू तीर मारियतु है"।



सेत-ताई जन्हुजा, असितता तरनि-सुता,
लालिमा-द्दगन भारती निहारियतु है,
सगम तिहूँ कौ मिलि पुन्य-थल पूरौ होति,
अचरज हेरि कैं हिऐं बिचारियतु है।
भृकुटी चढाइ कैं अनख भरी आनी ? कत,
पीतम पै कुटिल-कटाच्छ डारियतु है।
अनुचित-उचित सँभारि करि ऐरी बीर ?
"तीरथ के तीर, काहू तीर मारियतु है"।



ऐरी ए किसोरी गोरी-जघनि सुपुन्य-भूमि,
तिरती-त्रिबैंनी काम-ताप गारियतु है,
याहीं तैं मनिन्द चित्त जोगिन को दृढ़ नित,
याइ कैं तहाँ पै नीकौ जोग-साधियतु है।

सम-सुखदानि जानि असन-समान-पानि ,
तुव अधरामृत पै प्रान-पारियतु है ,
पलक निसंग मूँदि राखि दृग-तीरे अरी ?
"तीरथ के तीर, काहू तीरे मारियतु है" ।



## 'मारै नैंन-बाँन, जैसैं चोट लगै गोली की'

चन्द्रमा तैं चीर कैं निकारी इहि चन्द-मुखी ,
चपल-बदन तन-सोभा निरमोली की ,
चक भौंह तानिकैं कमान-मुलतान कीसी ,
मुख की मधुरताई लागति ठठोली की ।
कुच-जुग तंग तानि बाँधे हैं जुलम जोर-
जग जीतबे कौं गाँठ तंग दई चोली की,
रंग है री ? रंग एक संग ही विचार लीनीं,
"मारै नैंन-बाँन, जैसैं चोट लगै गोली की" ।



आजु जमुना पै देखी भोरही अन्हाति एक ,
बाल-अलबेली बैंदी दिऐं भाल रोली की ,
गज-मतवारी-चाल, परम-रसीले बैंनु ,
उन्नत-उरोज पै अनूठी-छबि चोली की ।
कौंन वह गोरटी अनूप-रूप वारी कमनैंत-
कहाँ सीखी है रहैया कौंन टोली की ,
भृकुटी-कमान बिनु रौंदा की उतान-तान ,
"मारै नैंन-बाँन, जैसैं चोट लगै गोली की" ।

बन-ठन बैठी है दुकान साजि हाट-बीच,
एहो ब्रजराज ? एकु बनिता तमोली की,
आँन भरी जोबन, गुमान भरी गाँहक सौं,
किम्मत-करारी लेति मन-मानी ढोली की,
"बैनी द्विज" औरहू कहाँ लौं कहौं बाँकी-छबि,
मधुरैं मिठाई है सवाई बैस बोली की,
भौंहें-रुक कान लौं चढाइ कैं कमान ऐसी,
"मारै नैंन-बाँन, जैसें चोट लगै गोली की"।



आजु तें न जैहौं दैया, भैया-सौंह जमुना पै,
करति कन्हैया बात बिकट-ठठोली की,
फोरि देति गागरि, झकोरि देति गातन कौं,
तोरि देति बरबस बृथा हीं तनीं चोली की।
"बैनी द्विज" अब तौ रहैगी लाज कैसें कहौ,
बनिता बचैंगी कौन-भाँति ब्रज-टोली की,
तानि-तानि भृकुटी-कमान बान कोरन तै,
"मारै नैंन-बाँन, जैसें चोट लगै गोली की"।



एहो घन-स्याम ? आजु एकु बीजुरी सी बाम,
आई बरसाने केरि टीकौ लाइ रोली की,
अंग-अंग भूषन जराउन की जोति जगै,
खसे कुच नैंकु ना गनाँहि पट चोली की।

गाल-गुल-आब प्रात-रवि की मरीची मजु,
वद, मिमरी सी मिठास मुख बोली की,
भृकुटी-कमान तानि बरुनी की नौकैं-फर,
"मारै नैंन-बॉन, जैसें चोट लगै गोली की"।



बालक को बिछुवा बिदारै अग-अग सारौ,
गुरज-गिरावै भूमि नई-छवि चोली की,
हँसनि-कृपान करै कतल बिलोकति ही,
हूल सी करेजें देति सूल गति भोली की।
भयें मुठ-भेर नैंकु प्यारिन के "चिरजीवी",
सालति हिए में घाव सेल्ह मृद-बोली की,
प्रेम की लड़ाई की बड़ाई करै कौंन प्यारे,
"मारै नैंन-बॉन, जैसें चोट लगै गोली की"।



प्रथमहिं खज, रजज, मृग, मीन छीनीं छनि,
रस-बस, जस में चितौंनि भाँति भोली की,
अब ढीठि मूँठि टौंना पारे दृग-कौंने हारि,
पारथ के सरन की प्रभुता ठठोली की।
"कहँ हनूमान", वा के प्रान रुठ ज्याइ लै री?,
छाई ब्रज-चरचा चवाउ ऊँची चोली की,
अजिहि-कमान-भौंह तान, आन-मान, कान,
"मारै नैंन-बॉन, जैसें चोट लगै गोली की"।

करत कटान, चढ़ि ऊँचे लौं अटान चट,
सुन्दरो चटान पै छुटान चीर चोली की,
मंद-मुसिकाइ, मुख विमल मनोज जार,
थार वगराइ वारवधू बैस भोरी की।
गाइ कैं, रिझाइकैं, वताइ हाव, भाव वर,
"निप्रजू" घनाइ दास टाटी मृदु-बोली की,
धंधिक समान वन जोवन धनीन-मृग,
"मारै नैंन बॉन, जैसें चोट लगै गोली की"।



नूपुर-नकीव किऐं नेजम निजाकत की,
सूरत-सिपाही अरु सूरमा ठठोली की,
घूँघट-तुरगम, मतग मतवारौ चलै,
उलटे निगारेन पै गिलाफ मढ़ैं-चोली की।
बादसाह-तरुनी, तरौंना तलवार लसै,
"भनैं मदनेस" बीन बाजै बैस रोली की,
भृकुटी-कमान औ निमान-सान-फौज सजी,
"मारै नैंन-बॉन, जैसें चोट लगै गोली की"।



कोंमल कपोल गोल रिरचे तमोल ता में-
दूँनी दुति दिपति मिसी तें अनमोली की,
सारी-सोसनी में रग अग अदराने नव—
अग गदराने पै फवति छवि चोली—की।

मोरि-मुख बिहँसि सिसकि मन छोरैं लेति,
जोरैं लेति "जगली" बलक वैस बोली की,
घूँघट के कोट ओट भौंहन-कमान तानि,
"मारे नैन-बाँन, जैसें चोट लगै गोली की"।

❀

जाकी ओर एकुबार चितवै बिहारी लाल,
ताकी सुधि रही ना ठठोली औरु बोली की,
चले की न, फिरे की न, न गिरैं चोट लगे की,
न भूषन की, न लहँगा की, न सारी की, न चोली की।
देह की न, गेह की न, न पति सुत नेह की,
न बिंदुल की, न मिस्सी की, न सैंदुर की, न रोली की,
सखियन-अचेत ह्वै जात "नगराज" कान्ह,
"मारे नैंन-बाँन, जैसें चोट लगै गोली की"।

❀

"द्विजराज" देखी बाल, भाल बिन्दु दीन्हें लाल,
हरति मराल-चाल, ख्याल करि भोली की,
काहू अग अमिटि चिपटि जात चुबक ज्यौं,
काहू हनैं उरज-गुरज आड़ चोली की।
काहू इठलाइ, मटिकाइ-कटि काट करै,
काहूँ सौं ठठोली मिसि करै घाव बोली की,
काहूँ कैं कमान-जुग-भृकुटीन तानि बक,
"मारे नैन-बाँन, जैसें चोट लगै गोली की"।

लाखन-रसियान के सुसील-मन खैंचि-खैंचि,
राखै अनहीं तैं लगि धौंधी माहिं चोली की,
काटै लगी कान महा-चतुर प्रवीनन के,
अजब-अनूठी रीति-भाँति कै ठठोली की।
बोतली अमोल बोल जैहौ बिनु-मोल बिकि,
मोहि हौं निहारि कुच गूठली निबोली की,
चैंन न लहौगे नैंकु सैंन जो करैगी भोरी,
"मारै नैंन-बाँन, जैसें चोट लगै गोली की"।



आई आजु होति ही प्रभात चलि मेरे-भौन,
गोप-सुता सुन्दरी सु कीरत की टोली की,
लै गई बुलाइ खेलिबे के हेत कान्हर कौं,
हौं हूँ री? पठायौ जानि एक हम जोली की।
"भनैं बलभद्र" गति गात की न जानी जात,
जा छिन तैं आई नाहिं नैंकु सुधि बोली की,
दीनौ एकु उत्तर कि मेरे जानि कौन्यौ तानि,
"मारै नैंन-बाँन, जैसें चोट लगै गोली की"।



जातहुती जमुना असनान हेतु मोद-भरी,
बरनि सकै न कोऊ सोभा-सखि टोली की,
तब हीं गुपाल आइ पीछे तैं सुनायौ बैंनु,
भनक परी सो कौंन बात-प्रैम बोली की।

"चंद्रकला" ठाढ़ी रही अति हरखाइ हिऐं,
डग न अगारी परी लौनी चाल भोली की,
मुरि मुसिकाइ कैं दुलारी वृषभाँनु जू की,
"मारै नैंन-बाँन जैसें चोट लगै गोली की"।



ठुठुकति जाति मुसिकाति मंद-मंद बाम,
नंद गाँव सखिन के मध्य ओट टोली की,
कैधौं हैं सची सी, किधौं मैंनका कि काम-बाम,
इन्दिरा कि गौरी सीस सारी है पटोली की।
हेरि घनस्याम कौं कटाइ बाट ठाड़ी भई,
सखिन निहाइ न्यारी जैसी गोट चोली की,
"मंगल" बिलोकि तिरछौंहि स्याम ओर बाम,
"मारै नैंन-बाँन जैसें चोट लगै गोली की"।



बाँकौ ही मुकट, पाग, बाँकी लटि-लटिकैं द्वै,
बाँकौ गोल बोलै पै, बलिहारी बाँकी बोली की,
बाँकी है लटक चाल, बाँके सँग ग्वाल-बाल,
बाँके है "बिहारीलाल" गावैं साल होली की।
बाँकौ ही लकुट टेकु, बाँकौ बनि रोकै गैल,
गैल छली छिपी-गैंद माँगै सखि चोली की,
बाँकी ही चितौंन-चितै, बाँकी-भौं-कमान तानि,
"मारै नैंन-बाँन जैसें चोट लगै गोली की"।

बसन-बसन्ती, कटि लगि लफजारे-केम,
कसनि अनौंसी-अग चोरी चारु चोली की,
बैस-मुकवान-लरी लुरवि लुनाई लूम,
छिति छहराई छटा छेम-छवि टोली की।
"श्रीकर" रती सी अलि-गर मुज मेलैं मजु,
ललित-लवग-लतिकाननि तकोली की,
तव तैं न मैन चैन, लैंन नहिं देति अरी ?,
"मारै नैंन-गाँन जैसैं चोट लगै गोली की"।



छिन-छिन दूनीं-दूनीं बढति बिथा की ज्वाल,
छिरकि-गुलाब हारीं सखि-सब टोली की,
तीर-जमुना के कुज निपट-अधीर वल-
धीर अग-पीर "जगमोंहन" अतोली की।
तकति न काहू और बकति कछू के कछू,
भकति न नैंकु यह कौंन सी ठठोली की,
वेगि चलि आली ? कौंन मन्त्र महाली आजु,
"मारै नैंन गाँन जैसैं चोट लगै गोली की"।



## 'लाज-भरे लोचन सँकोच मुरे परैं'

टूटी-लरी, वैंदी कहूँ चोटी तैं उरझि रही ?,
झिझकति मौंती बाहु, कन्धन ढुरे परैं,
कचुकी-ममकि, ढुरि आँचर बिराजै कटि,
कौंनहूँ जतन सौं उरोजन उरे परैं,

"भनैं हरिसकर" उफकि फूकि रही वाल ,
स्वेद कन अगन सौं अमित लुरे परैं ,
करति किलोल साँवरे सौं सास आइ गई ,
"लाज भरे लोचन सँकोचन मुरे परैं" ।



पायौ है सु जोबन-जवाहिर जलूस-दार ,
जरजरी जोतिन सौं जेवर जुरे-परैं ,
पिय धड़ भागी फिरै सग लग्यौ "माधव जू",
तिय तन-चुबक मैं लोह से लुरे परैं ।
पाइ परजक अक भरि कैं निसक लाल ,
बाल भई लट्टू दोऊ सेज पै छुरे परैं ,
प्यारी विपरीत की समस्या करै त्यौंही तकि—
"लाज-भरे लोचन सँकोचन मुरे परैं" ।



राति रति-केलि करि प्रात उठि आई बाल ,
पाँइ चपि भूमि रग ईंगुर घुरे परैं ,
"सकर सु कवि" कच-कुंचित कपोलन ह्वै ,
तोलन-अतोल कुच-कोरन लुरे परैं ।
खुशने-खजाने चहूँ उत्पल की सौरभ के ,
दौर-दौर भौरन के झौरन जुरे परैं ,
गुरुजन-समीप भई गुरुता गहरि ग्रीव ,
"लाज-भरे लोचन सँकोचन मुरे परैं" ।

जागी पिय-संग सारी-राति के कुतूहल मैं,
बैठी उठि भोर हार उर पै दुरे परैं।
केस निरुवारे, दरके हैं कंचुकी के बंद,
करति सँभारि काज क्यौंहूँ न पुरे परैं।
देर ना रसोईं छोड़ लीनैं अरसानी अन्न,
होस नाहिं चीनैं अन-चीने में जुरे परैं,
लखि कै सुसीला-सखी हाँसी करैं बोलै नाहिं,
"लाज-भरे लोचन सँकोचन जुरे परैं"।



सुन्दर-सिंघासन पै मंडप तरैं मैं जहाँ,
चौ-दिसि के सुखमा समूह निदुरे परैं,
राजै अभिराम, तनु राम-जानकी के संग,
घन-दामिनी के सुत छायन दुरे परैं,
"दामोदर" पूरय अनुराग मैं उपटि ज्यौंही,
उदधि मयंक ऐसे चोंहल जुरे परैं,
चंचल चलाक चमकीले त्यौंही दोउन के,
"लाज-भरे लोचन सँकोचन जुरे परैं"।



गौनिहा-नवेली की सहेली केलि भौन ल्याईं,
देखि, छिपि दुरि लाजित जुरे परैं,
भरिकै निरखि-चख कसकि मिटाई "शिव",
टूटी मोती-माँग परजंक पै जुरे परैं।

पाइ अवकास भोर कौंने बैठी मुरा-मोरि,
चिकुर अथोर कुच-कोर विथुरे परैं,
ऐंचि ऐंचि आँचर अली ज्यौं हँसि पूछैं वात,
"लाज-भरे लोचन सँकोचन मुरे परैं"।



तेरे कहैं आली ? मान ठानि वैठी मौंहन सौं,
भौंहन करेरी करौं सोऊ नैंकु ना डरैं।
भाल कौं भ्रमाइ त्यौरी पारि वैठौं जाही भाँति,
ताही भाँति रहैं नाहिं आँन-रीति कौं धरैं।
"चन्दकला" तेरौ मत, मानति है मेरौ मन,
जतन करैं हूँ घने काज न कछू सरैं,
दूर ही तैं आवति निहारि ओर वालम की,
"लाज भरे लोचन सँकोचन मुरे परैं"।



## 'उनींदे-नैंन नौकदार'

लाल-लाल ललित रसाल छवि-जाल पुंज,
अतिही विसाल, मद-छाके बाँके भौंकदार,
झूमति, झुकति, झमकति, उमकति, झप,
नीर चुचुवाते, गजमौंते जनु सौंकदार।
अंजन विहीन, मद-गंजन हैं खंजन के,
"बैंनी द्विज" रूपके खजाने भरे भौंकदार,
चौंधैं देति भोरही हमारी हिय प्यारे सुनौं,
रावरे के अति ही "उनींदे-नैंन नौंकदार"।

आई है कितै ते प्रान प्यारी तू हमारी-पौरि,
पारति मही पै पाँउ अट-पट झौंक्दार,
लाई है कहाँ तें हार हीरा के गरे में धारि,
कचुकी-करेरी कसी कैसी नई छौंकदार।
बरबस बकावति, बतावति न काहे वीर,
"बैंनी द्विज" रसिक-प्रवीन वह थौंकदार,
दीदे ए नदीदे हैं हमारे वाहि देखिवे कों,
जासों लगे तेरे हैं "उनींदे-नैंन नौंक्दार"।



सारी-रैंन प्रान प्यारी जागी प्रान-प्यारे सँग,
कीन्हे रस-रग जंग जेते हुते फौक्दार,
जोबन उमग तें अनग की मजेज माँहि,
रति-बिपरीत में तरग लीने झौंक्दार।
भएँ परभात, उठि आई गुरुजन पास,
सखिन-समाज घेरि लीनीं जे असोक्दार,
लाजन, सँकोचन महां में गड़ी जाव-
झीने-घूघट दुरावती "उनींदे नैंन नौक्दार"।



कहाँ तू दुरावैं जाति अग-रूपभौंउ वारी,
इहाँ कुच-चीप नाहिं कोऊ रोक-टोकदार,
बैंनी यह गूँथी तारा निज-कर-कजन तें,
छाइ रही सौरभ-समूह चौंहि मोक्दार।

दरस विहारे धन्य-धन्य भरि भए हैं आजु,
नरत सिरत सकल-सिगार रस-थोकदार,
सारी निसि जागी स्याम-रसिक-सुजान संग,
सूचति सुरग ए "उनींदे-नैंन नोकदार"।



कार्की चूनरी नैं किए चून री सरस-अग,
मोर-मोर पच्छ मैं परी है लीजिये सँवार,
काटति अधर भौर दीजिये उड़ाइ क्यों न,
आलस-वलित गात जमुँहात बार-बार।
कौंनी-स्याम-सारी यह कौंन की विराजै देह,
हर-नर आए क्यौं प्रभात ही खुलत द्वार,
सोई प्यान-प्यारी पै पधारिये पियारे-लाल ?,
जहाँ जागि भए हैं उनींदे-नैंन नौंकदार"।



कान्त-अक रजनी निहाइ रति-क्लांत-काइ,
बैठी मसनद आइ सौतिन कौं सोकदार,
आँगी दरकानी, तरकानी तनी"सकर" जू,
बैंनी बिथरानी, फटी चूनरि सु मोकदार।
टोंकि लगि जाइ टोक हू कौं कहूँ पावै देखि,
रोक न सकै जो गुनी हू होइ रोकदार,
मौंकदार भाला सैं दुवाला-दिल आसिक के,
आलसके मौंते ए "उनींदे-नैंन नोकदार"।

आजु "कवि सकर जू" नूतन लखात भाव,
छाके मद-जोबन के थाके रति कोरदार,
मानहुँ मजीठ दोइ-हवसी नहाइ भए-
मुगल-नचा लौं लसि-लाखन के थोकदार।
झूँमि-झूँमि घूँमति झलाके झौंक झूलन की,
ऐसे तौ न देखे हैं कभौं ए कहूँ झोपदार,
भौंकदार दिल के न रोकदार जाकौं कोऊ,
गजब-सिपाही ए "उनींदे-नैंन नोकदार"।

७

भोरहीं पधारे स्याम, धाम वृषभाँनुजा के,
पायौ वहाँ कोऊ सखी पाहरु न टोपदार,
आपुही जगाई पट ऐंचि-ऐंच खैंचि बाँह,
चौंकि उठी स्यामा कंज मंजु-गात चोपदार।
चौंकतही "राम मई" दरस दए हैं स्याम,
झनक लखाइ कैं त्रिभंगी-चाल झोपदार,
देखि सुरत-सोभा, मन-लोभा पै डरात हाइ,
गड़ि कहुँ जाइ ना "उनींदे-नैंन नोकदार"।

८

आई परजंक पै निसंक ह्वै मचाई धूम,
घूमि-चूमि पी कौ मुख तोरि-जोरि डारे हार,
रति-बिपरीति कै सुरति कियौ "माधव जू"
जांघ कैं जाघ-जोज बैठि कै सुधारे-बार।

दोऊ बतराति औ जँभाति सकुचाने-गात,
दोऊन की बानिक पै दोऊ ह्वै वार-पार,
आलस वलित ए हैं ललित-लली के लोल,
लाल बसकीबे कौं "उनींदे-नैंन नौंकदार"।



कहा कहौं, कहे मैं न आवति न कहैं ही बनैं,
कहे तैं कहौंगी कहा कहन हैं थोकदार,
जहाँ तहाँ, इहाँ उहाँ, घर-घर, घाट-घाट,
गली-गली फैली बद-फैली-कथा सोकदार।
"सुमरेस" दुरति दुराऐं रद-छद कैसें,
झमकि, धमकि, पग चाल-चाल झोकदार,
बाँधे प्रैम परवि, न सीधे होति मेरी ओर,
अध-खुले अरुन "उनींदे-नैंन कोरदार"।



खंजन लजाइ सरमाइ कैं उडेई जाति,
बूडे जल जाइ अति कंज हू ह्वै सोकदार,
मीन दीन, हीन दुति देखि जल ही मैं दुरे,
जगन जुरैया जे कुरंगन पै झोकदार।
"ललित" बखान करै कैसे मैंन-सान चढ़े,
कान लौं कमान खिंचे बान से हैं चोकदार,
फौंकदार बरुनी न रोकदार कोऊ राधे,
तेरे ए सुनींदे जे "उनींदे-नैंन नोकदार"।

वदन-मयंक पै बिकानौं मन मेरो जाइ,
  वदन सुनेस तें लुभानौं लखि वक चार,
वक-चार हूँ तैं छूटि लपट्यौ दुकूल आइ,
  उत तैं उचटि वह्यौ जोवन जलूसदार।
विलम घरीक फेरु फँसिगौ सुहारन मैं,
  हारि तैं पलटि पर्‌यौ नैंननि पै वार-वार,
वेधि कैं करेजे अब करति अचन यहै,
  आधिऐ-चितौंन के "उनींदे-नैंन नोकदार"।

❀

आई केलि-मन्दिर तैं आँनद-सकेलि पुंज,
  सो छवि सपीन सुखदाई, सौति सोकदार,
निरखी निरच्छ जग, जग ना जुवति जासी,
  अंग-अंग नख सिख सोभा सिन्धु थोकदार।
"हनूमान कहति" अलोकदार लंक-लोंनी,
  कंचुकी कसूँमी, कसमसे-कुच कोकदार,
बड़े-बड़े कजरारे, रतनारे, मतवारे,
  सारस से, आरस "उनींदे-नैंन नोकदार"।

❀

रति विपरीत मैं किसोरी छवि छाई आजु,
  अगन अनंग की दिखाई चाह चौंक दार,
रस-सरसानी, रैंनि केलि मैं विहानी वाम,
  अति-अरसानी सोंहैं उरज उसौंक दार।

सुथरी सँवारी मोई, विथुरी कपोलन पै,
मुकि-मुकि झूमैं, मुख चूमैं लट झौंकदार,
कच, कुच भार पै खुमार की सम्हारि नाहिं,
बार-बार मींजति "उनींदे-नैन नौंक दार"।



लाल उर माल मिनु-गुन की रसाल, सोहै,
अंजन-अधर धर्यौ जावक जम्यौं लिलार,
पीक-लीक गालन अलीक छवि छाजै राजै,
चाल डग-मगी अंग सिथिल लसैं अपार।
पीत पट पलटैं 'किसोरी" लट-पट-पाग,
अट-पट-नैन देखौ आरसी अजहुँ निहार,
लाए हौ कहाँ तैं पिय-प्यारे ? अनियारे दोऊ-
अरुन अमीसे ए "उनींदे-नैन नौंकदार"।



जमुना अन्हान जात, देखी प्रात नौंली-बाल,
झूमति, झुकति, झिमकति चाल झौंकदार,
आँचर सिकुरि जाति, घाँघरी बहुरि जाति,
घूँघट उघरि जाति, टोकै जौंन टौंकदार।
ज्यौं त्यौं आइ तीर, चीर न्यारे धरि बैठी "कृष्ण"
लागति समीर मुख खुलिगौ बँनौंकदार,
गड़िगे हिये मैं धीर नैंकु ना जिऐ री अब,
नजरि किए मैं वे उनींदे-नैन नौंकदार"।

खडित-अधर, मुख-मडित सँकोच जापै,
　　　　राजति अनत लौंच महिमा अटोकदार,
नख-रेख चिन्हित, असेस कुच-कुंभ जाके,
　　　　छूटे बार चौ-दिसि निराजैं बिनु रोकदार।
सारी-निसा जागी उठीं प्रात "चिरजीव" भाखैं,
　　　　अँगराइ अगनि दुराएँ पट कोरदार,
हूलति करेजैं औ न तूलत हैं यान जापै,
　　　　भूलत न नैंकौ वे "उनींदि-नैंन नोरदार।



बस चुप साधिऐ न बोलिऐ, सुसील-लाल ?,
　　　　करि हौं इतबार ना जु लैहौ सौंह लाख-बार,
गए न यहाँ तौ यहाँ सिगरी बिताई रैंनि,
　　　　आए हौ प्रभात धर पैन्हि गुन-हीन हार।
लखत जम्हात तुम्हैं, जात जरौ मेरौ गात,
　　　　याल-नैंन हारिए न, जोरौं कर बार-बार,
बैठी रुख-फेरि मुख सामुख न मेरे करौ,
　　　　देदति छिपे हैं ए "उनींदि-नैंन नोंकदार।



कैसौ बनी-बानक निहारौ बलिहारौ जाउँ,
　　　　देहैं न अहोस काढ़ि नाग के से छूटे बार,
गोदि दैं न काढ़ौ मन मान तुम्हारौ की तेरौ–
　　　　बदली मदेस पै सुगंध-मग की सी धार।

कौंन निक जैहैं ना बिन-मोल ही कपोलन पै ,
लाल-लाल लॉनी-रेख पान-पीक की निहार ,
करैंगे न वेध काके हिए माहिं छेदि प्यारी ? ,
तेरे ए कटार लौं "उनींदे-नैंन नौंकदार" ।



मृग-मद गारे, मतवारे, रतनारे-तारे ,
खंज लरिहारे, मीन-मंजु-कंज सोंकदार ,
नव-रस भाव भरे, चाव भरे, लाज भरे ,
राजति सुनींद भरे, झपकत झोंकदार ।
विहरि प्रमोद-पगे, प्रैम-रँगे, जग-मगे ,
चपल-चलाक चारु चमकत चोंकदार ,
आली अनुराग भरे, अजब-अनूठे आज ,
देखे लाडली के ए "उनींदे-नैंन नोंकदार" ।



छबिदार, ऐंननि तैं अंजन-अनौंखी बीर ? ,
निखद निसेखी रग-जानक रँगीले, यार,
"कवि पचानन" सु दीरघ, रसीले वंक,
अति-सरमीले, कजरारे चारु रतनार ।
कौंमल-कमल हू सौं मैंन-मदमाँते-राते,
अंजन विनाही कटे खंजन, कुरंग यार,
ऐसे अनियारे-वारे चंचल ढरारे थारे,
गजब-गुजारैं हैं "उनींदे-नैंन नौंकदार" ।

खंडित-अधर, मुख-मंडित सँकोच जापै,
राजति अनत-लौंच महिमा अटोकदार,
नख-रेख चिन्हित, असेस कुच-कुंभ जाके,
छूटे बार चौ-दिसि निराजैं चितु रोकदार।
सारी-निसा जागी उठी प्रात "चिरजीव" भाखैं,
अँगराइ अगनि दुराऐं पट झोकदार,
हूलति करेजैं औ न तूलत हैं बान जापै,
भूलत न नैंकौ वे "उनींदे-नैंन नोकदार।



बस चुप साधिऐ न बोलिऐ, सुसील-लाल ?,
करि हौं इतबार ना जु रैहौ सौंह लाख-बार,
गए न यहाँ तौ कहाँ सिगरी सिताई रैंनि,
आए हौ प्रभात उर पैन्हि गुन-हीन हार।
लखत जम्हात तुम्हैं, जात जरौ मेरौ गात,
बात-नौंन डारिए न, जोरौं कर बार-बार,
बैठौ रुख-फेरि मुख सनमुख न मेरे करौ,
छेदति हिऐ हैं ए "उनींदे-नैंन नोंकदार।



कैसी बनी-बानक बिहारी बलिहारी जाँउ,
कैहैं न अहोस काहि नाग के से छूटे बार,
मोहि हैं न काकौ मन माल-मुकता की बेरी–
बहती महेस पै सुसील-गंग की सी धार।

कौंन निक जैहैं ना बिन-मोल ही कपोलन पै ,
लाल-लाल लॉगी-रेख पान-पीक की निहार ,
करैंगे न बेध काके हिए माहिं छेदि प्यारी ? ,
तेरे ए कटार लौं "उनींदे-नैंन नौंकदार" ।



मृग-मद गारे, मतवारे, रतनारे-तारे ,
खंज लरिहारे, मीन मंजु-कंज भोंकदार ,
नेन-रस भाव भरे, चाव भरे, लाज भरे ,
राजति सुनींद भरे, भपकत भोंकदार ।
निहरि प्रमोद पगे, प्रेम-रँगे, जग-मगे ,
चपल चलाक चारु चमकत चोकदार ,
आली अनुराग भरे, अजब-अनूठे आज ,
देखे लाडली के ए "उनींदे-नैंन नोंकदार" ।



छबिदार, ऐंननि तैं अजन-अनौंखी बीर ? ,
निसद निमेखी रग-जानक रँगीले, वार,
"कवि पचानन" सु दीरघ, रसीले वक,
अति-सरसीले, कजरारे चारु रतनार ।
कौंमल-कमल हू सौं मैंन-मदमाँते-राते,
अजन बिनाहीं कटे खजन, कुरग वार,
ऐसे अनियारे-वारे चचल ढरारे थारे,
गजब-गुजारैं हैं "उनींदे-नैंन नौंकदार" ।

झाँकी झूमि झटित झरोखा तैं झमकि-वारी,
झिलमिलि-जोतिन सौं झपि-झपि झौंकदार,
"द्विज-राग" दरसति कलित कटाच्छ मानों,
सान धरे सायक, बुझाइ विष फौंकदार।
गजन-गुजारै म्यान-कोरन सौं काढ़ि मञ्जु,
होते जो न पाहिरू पलक-पल रोंकदार,
मनमथ-नेजे लौं करेजे कसकति अजौं,
नागरी के नवल "उनींदे-नैंन नोंकदार"।



ता खन सौं भूली खान-पान कै बिहारी ध्यान,
भ्रमति निहाल त्यौं न कोऊ कहूँ रोंकदार,
पीत पट, लकुट, मुकट, बन-माल कहूँ,
डारि दीन्ही बाँसुरी, भुलानी गति झोंकदार।
"द्विज बलदेव" जू निचार इमि आवत है,
पार ह्वै गयौ है उर मानौं सर-फौंकदार,
मन्द-हँसि बान सी कटाच्छ हरि केरे उर,
मार्‍यौ मतवारी तैं "उनींदे-नैंन नोंकदार"।



## 'नसीले नैंन तेरे हैं'

कज कुम्हलाने, मृग, मीन मुरझाने, सकुचाने—
खरे-खज कबौ आवति न नेरे हैं,
हार मान, डार सिर-छार गज भागे वन,
मैंन-सर विराम निकाम भे घनेरे हैं।

केति कै बिसाल, भूमिपाल देस देसन के,
काम बस भए त्रिनु-दामन के चेरे हैं,
ललित लजीले, अनखीले, चमकीले चारु,
नैंसुक नुकीले ए "नसीले नैंन तेरे हैं"।



बोलति हँसीले बैंन अति-अरसीले आजु,
हीरन के हार हालैं, उर पै घनेरे हैं,
"बैनी द्विज" सग मैं कियौं है रति-रग यातैं,
अग मैं अभूखन लखाति बहुतेरे हैं।
अजन बिना ही मद-गजन हैं खजन के,
अरुन अमोल-डोरे आस-पास घेरे हैं,
पोरे मद-माल के, अनौंखे-चौंकदार चोखे,
कीले मैंन मत्र के "नसीले नैंन तेरे हैं"।



सु धरि छबीले, जरबीले, अरबीले कोर-
वान दरकीले, परसीले स्रुति हेरे हैं,
रगन रँगीले लखि मैंन सर ढीले भए,
याही तैं न हीले वे लजीले जानि मेरे हैं।
कज, मृग, मीन, अलि, पीले भड़कीले रहि,
पानिप दपीले, निपलीले भए चेरे हैं,
चटकीले, मटकीले, नीले औ नुकीले सब,
प्यारी सरमीले री "नसीले नैंन तेरे हैं"।

नींके-अनियारे, भारे परम-उमग वारे,
अति-कजरारे, ऐसे में न आँन हेरे हैं,
मृग-दृग, मीन, सर-मैन के चकोर अली,
तिरछी चितौंन सौं किए सत्र चेरे हैं।
"चन्दकला" पीतम के भूखन वसन देखि,
मन हरि लेति माँहि, चाँह के पचेरे हैं,
अति गरवीले, कज, खजन करन ढीले,
सेत, रक्त, नीले, ए "नसीले नैंन तेरे हैं"।



आठौं जाम ऐंठे रहैं बैठे पूतरी के बीच,
पैंठे जाति साहन हिए में हेरि डेरे हैं,
चचल, चलाक, चटकीले, चक चौंधा ऐसे,
चाह सरसावैं चित्त चौगुने घनेरे हैं।
साँझहू सवेरैं नित नेरे ही बसेरे डारि,
"भनि बलभद्र" बने दामन के चेरे हैं,
घेरे हैं धनिन कौं अहेरे करि जेरैं करैं,
फेरैं देति मधु से "नसीले नैंन तेरे हैं।



सुखैं देति सौतैं, सबै कुटिल कटाच्छ फूँक,
रसिक विलोकैं होति विकल घनेरे हैं,
झरैं नाहि झारैं थके गारुड़ू विचारे झारि,
जत्र, मत्र, एकहू न मॉनति अनेरे हैं।

सिर के सहाइ, बाँधी-घूघट बिहाइ बेगि,
धावति सुतन्त्र फेरि फिरत न फेरे हैं,
नीले-नीले चीकने चुकीले, गरबीले अरी,
पन्नग-समान ए "नसीले नैंन तेरे हैं"।



वारि जात वारि-जात, कानन-कुरंग भे,
कुरँग चक-चौंधे चरत बिकल घनेरे हैं।
खजन रिझावन हैं, खजर लजावन हैं,
मीन-मन तावन, मनोज के बसेरे हैं।
तीखे अनियारे, "हरदेव" प्यारे प्यारे सेत-
स्याम, रतनारे दोउ काम-दाम घेरे हैं,
चचल-चलाके, बाँके मौते हैं कजाके, नाके,
मैंन सुरा धाके "नसीले नैंन तेरे हैं"।



दग जुत अंजन हैं, मृग-मद गंजन हैं,
कंजन कुटिल मान, खजन निनेरे हैं।
मंजुल रसीले, मधुमाँते, गरबीले चारु,
चपल छबीले, चित्त-चोर चार घेरे हैं।
चितवत ही चितवत बिहाल होति "हरदेव",
हाँइ हाइ बिनु दाम-काम के करेरे हैं,
देति सैन-सैन काट, देति भल चैंन यह,
अधखुले पैंने ए "नसीले नैंन तेरे हैं"।

अधिक-अनौंखे, अनियारे, कजरारे बने,
देखे ना सुने हैं अब ऐसे कौन केरे हैं,
देखि दृग-दमक दिवाने से अनेक रहैं,
नीचे कौं निहारे किए कितेक चेरे हैं।
"गोविन्द सुकवि" बडभाग रिझवार तेरे,
धन-मन लैंन हेतु हरखित हेरे हैं,
झुकि-झकि, झूँमि-झूँमि घूँमि घूँमि चोट करैं,
वीर-रस माँते ए "नसीले नैंन तेरे हैं"।



छबिके छबीले चारु, चचल सजीले चित्त,
गति-भडकीले जनु मैंन मेघ घेरे हैं,
अति-गरबीले, लीनौं मत-गजबीले कज,
रग सौं रँगीले, जनु रूप-निधि दोरे हैं।
प्यारे-चटकीले, वसु रुचि मटकीले मन,
मुनि मटकीले मनु जाल काम केरे हैं
सखि सकतीले जुग-रूप के हठीले तन,
मन सटकीले औ "नसीले नैंन तेरे हैं।



मीन जिन दीन किए, मृग-पति हीन किए,
पकज मलीन सिर सरतन गेरे हैं,
नरगिस-छीन खोर अलि अवलीन किए,
धनिक अधीन किए, खजरीट घेरे हैं।

भट बट-मार तन, मन, धन लूटि वे कौं,
जाहिर जहाँन औंन ऐसे मैं न हेरे हैं।
"सु कवि गनेस" की सौं जैसे सानदार एरी ?
तीच्छन-नुकीले ए "नसीले नैंन तेरे हैं।



स्याह सुरमीले, चटकीले, मटकीले, पैंने,
तीर से नुकीले हैं, मजीले हैं, अनेरे हैं,
छविन छबीले, झमकीले, सुरखीले औंर-
जवन-जतीले, धनी-धन के लुटेरे हैं।
गुन-गरबीले, सज-धजन सजीले रति-
रँगन रँगीले थोले ऐसे मैं न हेरे हैं,
"सु कविगनेस" की सौं जैसे नवकीले एरी,
चचल छबीले ए "नसीले नैंन तेरे हैं"।



लखि अरुनाई पाई कज करुनाई, मीन-
पेखि चचलाई मृग मान-भग हेरे हैं,
छेदि उर जाति, गात-गनिका निलोक तेरौ,
मेरे सैंन चैंन बेधे बाँन सौं सनेरे हैं।
"चैत कवि" मारैं नैंकु आवति न चैंन मैंन,
मौंते मनौं मदक-मजाते तन घेरे हैं,
सुन्दर सजीले चमकीले ए रमीले सैंन,
सोभित नुकीले औ "नसीले नैंन तेरे हैं"।

डोलति सनेह भरे, तिरछी-चितौंन भरे,
जालिम जुलुम भरे, पानिप के हेरे हैं,
जादू भरे झूँमति झुकति झहराति हैं री ?,
मृग-मद त्यागी किए वन में बसेरे हैं।
कज्जल तें कलित, दलन महि-पालन के,
पारथ, मृगेन्द्र राह चलति किए घेरे हैं,
मैंन-मत्र कीले हैं, रसीले हैं, रँगीले हैं री,
मद भरे घूँमति "नसीले नैंन तेरे हैं"।



सोहत-सजीले, सित असित सुरग अग,
ताके मधि अजन अनूप छवि हेरे हैं,
चचल चलाक चारु चोपन चटक भरे,
चमकैं चमकैं लरि खजन निवेरे हैं।
लरजत असीले, सुरमीले औ अटीले नहिं—
बचत रसील-छैल आए गैल फेरे हैं,
"कहैं कलाधर" खुले लालच-गहीले लाल,
गजब-गसीले ए "नसीले-नैंन तेरे हैं"।



## करति कजाकी कजरारे-नैंन कोरदार

फिर-फिर दौरि-दौरि चचल चलत चारु,
चौगुने चलाक चाह चकित चिकोरदार,
अटके से देखियतु अटके रहैं ना नैंकु,
हटकि न मानैं। हठि लीन्ही गहि जोरदार।

"रसिक बिहारी" जुग सरस-रसीले मंजु,
निपट कटीले, कढि जात बेधि सोरदार,
अति-अनियारे, अरुनारे, रतनारे वेरे,
"करति कजाकी कजरारे-नैंन कोरदार"।



अंजन मनुज धारी, बरुनी हैं तीर कारी,
तामैं लाल-जाल लसै लाल-लाल डोरदार,
पलक पनाह कारी, स्यामता सनाह धारी,
सैंन-सेरा तीखी-चितौंन चित-चोरदार।
मैंन-मद पी कैं, नैंन-नद मैं सनद बैठी,
पूतरी महा-मार मूरति मरोरदार,
प्रेम के पथिक पथ-प्रीति के चलति जैसे,
"करति कजाकी कजरारे-नैंन कोरदार"।



मीन, मृग, खंजन, गिमान भरे सैंन-बान,
अमित नसीले सरसीले सुचि जोरदार,
अजब-अदाँ के भरे, छहरि-छबि-छाक भरे,
नूतन-छबीली भरे, छनि भरे छोरदार।
"रसिक कहैं" आन भरे, सान भरे, स्यान भरे,
कछुक-अलसान भरे, मानहिं मरोरदार,
लाज भरे, लाली भरे, लोभ भरे, ललित-लाल,
"करति कजाकी कजरारे-नैंन कोरदार"।

एहो प्रान-प्यारी ? लटकारी, सटकारी यह,
दुरति कपोलन पै अति-सुकि जोरदार,
तैसीही सुहाई है सजाई माँग मौतिन सौं,
जैसीही बनाई दृढ अजब-मरोरदार।
आली री निराली छवि-पान की दिखाई देति,
लेति मन-छोर अरी बरबस डोरदार,
चन्द सौ मुखारविन्द "केसव" अनमोल—
ता पै "करति कजाकी कजरारे-नैन कोरदार"।



केसर-कलित, पिचतौरिया, ललित-लाल,
लहँगाहू लसति लक-लौंने पै घोरदार,
जग-मगे जरित-जडाऊ पग पाइजेब,
पकज-प्रभानि प्रभा पाँवडे गडोरदार।
"सदाँनद" सुन्दर सघन-घुँघरारी-कच,
कचुकी पै डारे अहि-कारे मनौं फोरदार,
ऐंडदार ऐंननि, मरोरदार, तोरदार,
"करति कजाकी कजरारे-नैन कोरदार"।



## 'एक-एक आँख तेरी लाख-लाख तोड़ा की'

चचलाई मीनन की लई छीन भाँतिन सौं,
सुरमई-लगाम लै उछालैं लेति घोड़ा की,
"बैनी द्विज" खजन के गजन गुमान हारी,
छवि ना लही है मृग-नैन यह जोड़ा की।

कजन से अजन विनाहीं सोभा सौगुनी हैं,
नजर करैं हैं चोट चोखी खास कोडा की,
सौतिन के मनहीं मडोडा दैंनवारी आली,
"एक-एक आँख तेरी लाख-लाख तोडा की"।

❀

कहाँ लों बखानौं वाकी लाज भरी आँखिन कौं,
मान भरी, स्यान भरी ललित सु डोडा की,
मीन जल जाइ दुरे, खजन खिसाइ गए,
मृग, चकोर, कज नैंकु सर न लहैं जोडा की।
देखति ही वेधैं उर, काम की किलोल करि,
कलित सु काजर सौं जगत मँमोडा की,
सुन्दर, सलौंनी, सुचि सहज-लुनाई भरीं,
"एक-एक आँख तेरी लाख-लाख तोडा की"।

❀

## 'खूबी खंजरीटन की खाम करियतु है'

डूबीं परी नीर मैं मलीन मन ह्वै कैं मीन,
कजन कुलीन हू निकाम करियतु है,
"बैनी द्विज" मृग मद-मारेसे पराने बन,
चारुता चकोर की तमाम करियतु है।
ऊनी परी नरगिस, निराली कुज-ओटन मैं,
वारी जासु ऊपर बदाम करियतु है,
देखि-देखि तेरी अँखियाँन की अजूबी प्यारी,
"खूबी खजरीटन की खाम करियतु है"।

लसत स पानि तीच्छ-धारैं खरसान महा,
मनमथ-बान कौ गुमान गरियतु है,
भारे अनियारे, देखि तरल तरारे ए,
सु लच्छनीन खारे, मीन ही भरियतु है।
मृग घन लीन, जोति मौतिन की खीन करी,
जलज नवीन, जल-धाम धुनियतु है,
"मान निधि" आजु की अजूबी लखि नैंननि की,
"खूबी खजरीटन की खाम करियतु है"।



## 'मैंन के खिलौना हैं'

करवि किलोल स्रुति-दीरघ अमोल लोल,
छूऐं दृग-छोर छनि पानति तरौंना हैं,
नाहिंन समान उपमान आन "सैंनापति"
छाया कछु छुवति चकित मृग-छौंना हैं।
स्याम हैं बरन, ग्यान ध्यान के हरन मानौं,
मूरति ज्यौं धारैं बसि-करन के टौंना हैं,
मोहति हैं करि सैंन, चैंन के परम-ऐंन,
प्यारी तेरे नैंन, ऐंन, "मैंन के खिलौंना हैं"।



काजर तैं कारे, अनियारे डोरे मतवारे,
कमल दरारे किधौं अमृत के दौंना हैं,
खजन सँवारे किधौं खजर खरसान वारे,
कैधौं मन-मोहन के मन के हरौंना हैं।

रूप-जल भारे, रसवारे, डग-मगत हैं,
नवल-दुलारे किधौं मृगन के छौंना हैं,
मदन निहारे, पछो सीरा दैंन हारे आली,
तेरे नैंन, ऐंन, मानौं "मैंन के खिलौंना हैं" ।



## 'जहाँ-जहाँ देखैं तहाँ जीति-जाति डारे हैं'

आछे कजरारे, रतनारे री ? सजीले दीह–
हरिन के हारे ग्वालो एकु-रग कारे हैं,
नेह-रँग छाके, सजे सजल-अदाँ के री,
अनग-सर थाके री सरस अनियारे हैं ।
"दास कहैं" लाल नन्दलाल के रिझैया–
चिलिगन के सहैया, सिरताज री निहारे हैं,
कैसे ए सजीले-नैंन देखेरी लडैती जू के,
'जहाँ-जहाँ देखैं तहाँ जीति-जीवि डारे हैं" ।



आछे अनियारे, चटकारे, कारे, कजरारे,
मृग दग फारे अरी ? ए तो रतनारे हैं,
चचल, छबीले,-रग-आवक रँगीले चारु,
दीरघ रसीले रस-राते सुकमारे हैं ।
नैंन मद माँते से उनींदे से रहति नित,
मुकि मुकि उघरति चकोर मतवारे हैं,
अजव अनूठे-नैंन देखे प्रान-प्यारी जू के,
"जहाँ-जहाँ देखैं तहाँ जीति-जीति डारे हैं" ।

## 'कजरारे तेरे नैंन हैं'

हियहर लेति हैं निकाई के निकेत हँसि-
देति हैं सहेत निरखति करि-सैंन हैं,
छौंना-हरिनीन-दृग होते अति नीके लगैं,
हरति हैं दरद करति चित चैंन हैं।
चौंहति न अंजन, रसिक-जन रंजन हैं,
खंजन सरस रस-राग, रीति ऐंन हैं,
दीरघ ढरारे, अनियारे नैंकु रतनारे,
कंज से निहारे "कजरारे तेरे-नैंन हैं"।



स्याह, सेत, अरुन, अतोल-लोल, गोल-गोल,
लाज के जहाज करैं कोटिन खौं कैंन हैं,
हारे हेरि हरिन किनारे गहे कानन के,
खंजन रिसाने जाइ कीन्हौं तरु-ऐंन हैं।
कंज कोर खाइ कीच धाइ धरे आइ-आइ,
लहति घरी ना कहूँ रैंनहूँ कों चैंन हैं,
कठिन-कटारे से अनेक नौंक-झौंक हारे,
करता सुधारे "कजरारे तेरे-नैंन हैं"।



समस्या पूर्ति

# सवैया

# सवैया

## आँख लगैं नहीं आँख जो लागैं,

अँखिन आँख लगी जब तें, अँखियान लौं आवें नहीं अनुरागैं,
"ए मिल" वे अँखियाँन के ध्यान मैं, आँखिन के मिस जात हैं जागैं।
आँख वे आँख हैं आँखिन के, अँखियाँन तें सूझति आँखिन आगैं।
आँखिन के बस आँख परी छिन "आँख लगैं नहीं आँख जो लागैं।

❀

अँखियाँ के लगैं घर ही बन होति, सो आँख लगैं निसि-बासर जागैं,
आँखि लगैं सब-लोग हँसैं अरु आँख लगैं घर छोड़ कैं भागैं।
आँख लगैं कछु सूझ परै नहिं, आँखि छिनैं-छिन आँख कौं मागैं,
आखिर आँख दुखी भई आँख सौं, "आँख लगैं नहीं आँख जो लागैं।

❀

सोचति ही निसि-द्यौस सिराति, बिमोचति-बारि रहैं दुख-पागैं,
भूलैं नहीं उर-अन्तर सौं, कछु मंतर सो जब तें करि भागैं।
को इनकी करनी बरनैं, इनतें जग, जोगी, जती अनुरागैं,
लाखन रारि लगाएँ फिरैं, छिन "आँख लगैं नहीं आँख जो लागैं"।

❀

## 'अँखियाँ-दुखियाँ नहीं मानती हैं,

ए सग मैं लागी ही डोलैं सदाँ, बिनु देखैं न धीरज आनती हैं,
छिनहूँ जो बियोग परै "हरिचंद" तौ चाल प्रलै की सु

चरुनी में फिरैं न झपैं, उझपैं, पल मैं न समाइ बो जानती हैं,
पिय-प्यारे ? तिहारे निहारे बिना "अँखियाँ-दुखियाँ नहीं मानती हैं"।



व्यापक-ब्रह्म सबै थल पूरन, हैं हम हूँ पहिचानती हैं,
पै बिना नँदलाल, बिहाल सदाँ, "हरिचंद" न ग्यानहिं ठानती हैं।
तुम ऊधो ? यहै कहियो उनसौं, हम और कछू नहिं जानती हैं,
पिय प्यारे ? तिहारे निहारे बिना "अँखियाँ- दुखियाँ नहीं मनती हैं।



सब सक तजी गुरु-लोगन की, कुल-कॉनि की आन न आनती हैं,
करि कोटि-उपाइ बुझावै कोऊ, अपनी इक टेकहि ठानती हैं।
"परसेमजू" और न जानैं कछू, एक प्रेम को पथ पिछानती हैं,
पिय-प्यारे ? तिहारे निहारे बिना, "अँखियाँ दुखियाँ नहीं मानती हैं।



एकुही गाँव मैं बास सदाँ, घर पास इहौ नहीं जानती हैं,
पुनि पाँचवें, सातएँ आवति जाति कि आस नहीं चित आनती हैं।
हम कौन उपाइ करैं इनकौ, "हरिचन्द" महा-हठ ठानती हैं,
पिय-प्यारे ? तिहारे निहारे बिना, "अँखियाँ दुखियाँ नहीं मानती हैं।



## 'लाज की आँख जहाज तैं भारी'

लगर की नहिं एकौ चलै, गति रोक सकै नहिं कोऊ बिचारी,
त्यौं पतवार अनन्त मुरैं, सऊ आपनी चाल न छोड़ति न्यारी।
ताप लहैं उमड़ैं इहि तैं, अहो आँसू-नदी नद, सागर बारी,
अदभुत कौतुक है "अवधेस" प "लाज की आँख जहाज तै भारी"।

कबहूँ ढिग बदर है, कबहूँ अति-दूर ह्वै चचलता अनुसारी ,
मतवार बडो, गुनवार बडो, "अवधेस" सुदेस बसावति भारी ।
बहु पानिप लावनिता की तरग, अभग सहैं भव सिन्धु तैं न्यारी ,
पर तारनकौं करतार कियौ यह "लाज की आँख जहाज तैं भारी" ।



## 'खुले खून करैं दस-बीसन के'

चले राखति रूप न राहिन के, पल-पानि महावत धीसन के ,
दरे ढाहति ढूह बिवेकन के, हरे ध्यानिन के गढ पीसन के ।
गजराज बिलोचन धारे प्रिया, हुकुमी नहि ए अवनीसन के ,
बँधे, लाज-जँजरीन, चू न करैं "खुले खून करैं दस बीसन के" ।



झुकि झूमैं, झुकैं, उभकैं, न रुकैं, बहु बीर किए बिन सीसन के ,
चलरीं हैं महावत मैंन-सखा, खुले केस हैं छौंना फनीसन के ।
"कविजीत" सुरासुर, जीते सबै, छुटि जात हैं ध्यान मुनीसन के" ।
मतवारे मनौं दृग कुजर से "खुले खून करैं दस-बीसन के" ।



यह हैं मृगराज की थानि बसे, बन-बीच गुहा मैं गिरीसन के ,
गजराज कौ कुभ बिदारि "सरोज जू" मौंती निकासति सीसन के ।
बद जाल मैं आइ फँसैं कबहू, गरजैं बस मैं परि रीसन के ,
बँधे तोरन चाहति हैं पिंजरा, "खुले खून करैं दस-बीसन के" ।



तरवार अनी, बरछी की घनी, जै हेतु मनौं दस-दीसन के ,
"अलकेस" त्यौं पैनी-कटार बिदारन हार सु हीय मुनीसन के ।

सजि सोहति एकहि घूघट-म्यान मैं, गाहक घाइल-सीसन के,
वच री अरी ? नैंकु नकाव टरैं, "खुले खून करैं दस-वीसन के"।



रतनारी-तिहारी तिरछी तकैं, आँखियाँ इन रक, रईसन के,
हिऐं घाव करैं कवि-कोविद फारसी औ अँगरेजी-नवीसन के।
पुनि और की बात कहाँ लौं कहौं, छुटि जात हैं ध्यान मुनीसन के,
नहिं घूँघट में इनि चोट करैं, "खुले खून करैं दस-बीसन के"।



अति बाँके, लड़ाके, सु छाके-सुरा, जनु हैं गढ़पाल, महीसन के,
अनियारे दोऊ रतनारे लसैं, मन-बेधन हार मुनीसन के।
"कहैं मगल-दीन" तिया दृग-बान, गुमान हरैया पचीसन के,
झुकि झूमैं, झुकैं, झँझरी तैं झकैं, "खुले खून करैं दस बीसन के।



मारवि हैं मद मीनन के, मृग के दृग मान न मीसन के,
पकज की दुति फीकी करैं मन मोहैं महान-मुनीसन के।
चोखे कटाच्छ "महेस भनैं" किम जोर चलैं न कवीसन के,
मानौं कही दृग-खोलौ नहीं, "खुले खून करैं दस-बीसन के"।



खर-खजन गजन, मीन सदाँ, मन रजन मजु कवीसन के,
अति-तीछन काम-नराच समान, सु मोहन-हारि मुनीसन के।
अँखियाँ ए तिहारी अनूप लली ? विरचीं विधि लालहि दीसन के,
विपरीत यनी वउ घूघट तैं "खुले खून करैं दस-बीसन के।

ृदु कारे, अन्यारे हत्यारे-महा, चटकारे लखौ दस-दीसन के,
ानि चचल, चीकने चोखे चुभैं, न रहैं सुधि सिद्ध-मुनीसन के।
बेस वारे, सुधारे विरञ्जन से, "कहि मानहुँ" वीर कवीसन के,
ल नैंन अनारिन न्याउ नहीं, "खुले खून करैं दस-बीसन के"।



ाकरे पट-घूँघट-साँकरि माँहिं, तऊ "बलभद्र" फिरैं छन के,
ख, मैंन-महारत के न रहैं, ढहैं लाज दराज-दुरेग्न के।
मद-माँते मतगज-नैंन तेरे, सम झूँमैं झुकैं उमकैं घन के,
मुसकाने अरे अति खूनी खरे, "खुले खून करैं दस-बीसन के"।



ए दग याके दुरैं अन ना, न मुरैं ढिग मानी-मुनीसन के,
औचक ही उरमैं, सुरमैं, न मरैं नहिं खीस खबीसन के।
धीर निपीर नजीर नहीं, सु-मती सुभ-धीर कवीसन के,
जाँइ जहाँ हीं तहाँ हीं जुरैं, "खुले खून करैं दस-बीसन के"।



चल-चचल चातुर ए न कहूँ ?, बस हैं बरदान मुनीसन के,
करि लाग मैं चोट, चितै चित चौंकि अचानक लेति छतीसन के।
"कवि आतम" चच्छु मृगान्छु सौं सुन्दर, हैं भरे भूरि असीसन के,
पट घूँघट-ओट सपोट रहैं, "खुले खून करैं दस बीसन के"।



मृग, खजन, मीन दुरात फिरैं, अस हाल भए सब दीसन के,
बिन छूरा, छुरी, विछुआ, बरछी, किए घाइल अग थिरीसन के।
तिरछे अनियारे, कजारी भरे, लगैं छूटति ध्यान मुनीसन के,
प्रिये ? नैंन हैं थान, सहाइ तेरे, "खुले खून करैं दस-बीसन के"।

मृग से, अरु मीन से, खंजन से, दृग पाए अली ? घर ईसन के,
वरछीन सों, तीर सों, नौंकें लगैं, न कहैं कहि जात कनीसन के।
"मृगेन्द्रजू" और की कौन कहै, लगें आसन छुटति मुनीसन के,
पट-घूँघट ओट सों चोट करैं, "खुले खून करैं दस नीसन के"।



नैंन-कृपान रचे निधि सुन्दर, जान बच्यौ सुर-ईसन के,
कंज से, खंजन से, मृग से, लखि छूटति ध्यान मुनीसन के।
जासौं बच्यौ न कोऊ तिहि-लोकहिं, म्यान तैं तुच्छ जुगीसन के,
म्यान पलक मैं बन्द रहैं, "खुले खून करैं दस-बीसन के"।



बीसन के उर-सालति हैं, तन लागति नैंन तिरीछन के,
तिरीछन-नैंन लगैं जब ही, तब छूटति ध्यान मुनीसन के।
मुनीसन और रिखीन सबै, नहिं भाजि बचैं लगैं ईच्छन के,
ईच्छन "राम-अधार" खुलैं, "खुले खून करैं दस-बीसन के"।



## 'अँखियाँ-रिझवारन पैंड़ परी हैं'

आवैं घरी ज्यौं भरी ही घरी-घरी, देखति रूप रहैं उघरी हैं,
मूँदी मुँदै नहिं, रूँदै ही मारति, बावरी रीझि के रंग भरी हैं।
टारी टरैं न डरैं "नागर" ए, परैं अररानी अमाँनी खरी हैं,
जाति नहीं रखियाँ सखियाँ "अँखियाँ-रिझवारन पैंड परी हैं"।



देखति ही अटकीं उत ही, हठकीं नट-नागर सौं न टरी हैं,
ज्यौंही घरीक न देखैं हरी ? तौ खरी अँसुवाँन की पारैं झरी हैं।

मोहू की ह्वै करि मोसौं सखी ? न रहैं री अरि ह्वै कैं अरी हैं,
जात नहीं रखियाँ सखियाँ "अँखियाँ रिझवारन पैंड परी हैं"।



रूप की रीझि में भींजि गईं अति, रीझि ही रीझि में रीझि भरी हैं,
रीझि-नदी उमडी रहै डीठ में, लाजहु रीझि गरीं सगरी हैं।
आपुन रीझि, रिझाई है मोहू कौं "नागर" मो-मति रीझि ढरी हैं,
जाति नहीं रखियाँ सखियाँ "अँखियाँ रिझवारन पैंड परी हैं"।



भाँति किती समुझाइ रही पै न मानति ए उनमाद भरी हैं,
नाहीं रहैं उरैं उत जद्यपि, लाज-जँजीरन सौं जकरी हैं।
"नागर" रूप की रीझि कैं चावरी ? ह्वै लड-बावरी सी निगरी हैं,
जाति नहीं रखियाँ सखियाँ "अँखियाँ-रिझवारन पैंड परी हैं"।





# परिशिष्ट

# परिशिष्ट

## 'गणेश जी के नेत्र'

सुभग-सलौने, मन-मौहन मुनीसन के,
सोभा के सिंगार, रानि-सुघर अनन्ता के,
"बैनी द्विज" विघन विनासन, विनोद-कारी,
भारी दुख-हारी, निज दसन दिगन्ता के।
दीन-दुख-मोचन, - -सोचन दनुज गन,
ध्यावति सदाँ हीं जाहि जनक जयन्ता के,
सिव सिरताज, आले-आलम निवाज,
ऐसे बन्दौं जुग-नैंन गनराज-इकदन्ता के।

लज्जित है कैं भजैं मन ही, मृग जाति चले बन-मारि जकन्दन,
खञ्जन हु खिसियाइ गए, उडि धाम कियौ निज-पास परिन्दन।
मान मलीन है नीर गई धँसि, पंकज पंक परे बहु-फन्दन,
चारिहु चारिहु-ओर गए लुकि, देखि तेरे दृग गौरी के नन्दन।

## 'विष्णु-भगवान के नेत्र'

कैधौं लाल-रेसम के जाल मैं फँसे हैं, खज,
कलिका-सरोज मैं मलिन्द किधौं मडरानि,
कैधौं चन्द-मंडल मैं पीवत-पीयूष बैठे,
जुगल-चकोर के किसोर मन-मोद मानि।

कैधौं कामदेव जू के सपुट-नगीना धरे,
थाके वाके सम मैं "सुमेर सिंह" दै प्रमानि,
प्रेम-रस चारे मन-मोहे न का के देरि,
नैंन कमला-पति के ऐन सुरमा के खानि।

"संभु" मन भाए लागैं, सदिय सुहाए सनै,
सुन्दर-सलौने-लौंने अमित गती के हैं,
मारति, जियायति, मचावति अनेक-रंग,
भंग के करैया मान रति के पती के हैं।
कंज, खंज, मृग, चकोर, मीन वारि-वारि होवि,
"तेज" ना बखाने जात बाहर मती के हैं,
चैंन सुख पूरन, दिवैया निज-दासन कौं,
आँनद के ऐंन नैंन-कमला-पती के हैं।

## लक्ष्मी जी के नेत्र

सुनति झमाँके त्यौं छमाँ के भूरि भूखन के,
सागर-छमाके, सिद्ध चौंकति क्षमा के हैं,
जात ही छपा के, उठि पौरति छपा के अंग,
आवति छपा के जैंन छाके छत-छाके हैं।
काइल-कुजा के, बसुधा के कीर थाँके, ओठ,
चखति सुधा के ए मजा के बिम्ब पाके हैं,
"नन्द राम" ताके दृग, ताके हैं मृगा के कहाँ,
कौंन समता के, जैसे रमा के नैंन चौंके हैं।

## रामचन्द्र जी के नेत्र

लाल-लाल-डोरे कंज-दल दुति तोरैं लेति,
जग चित-चोर मनौं मैन ही के ऐंन हैं,
मीन-छवि-छीन, मृग-सावक अधीन,
खंजरीट बल-हीन लखि होति जाहि चैंन हैं।
चकित चकोर मन, मुनिन कौं भौर स्याम-
रंग ही सौं घेरि यौं "निहारी" सुख-सैंन हैं,
काटैं दुख-द्वंद फंद, आनँद के कंद वृंद,
रस के प्रबंध रामचंद जू के नैंन हैं।

❀

अजब-रसीले, समसीले हैं सुसीले कंज,
खंजन हँसीले मीन-मंजुल-मरोर के,
सुजन असीले, उर-अन्तर बसीले प्रेम-
मादक-नसीले हैं, जसीले चित-चोर के।
कविन के बैंन तें न उपमा बनैं न दैंन,
"बैजनाथ" नैंन चैंन दैंन दया-कोर के,
और हैं न नैंन, लोक हेरे निज-नैंन,
जैसे हेरे हम नैंन, नैंन कौसल-किशोर के।

❀

सील के समुद्र, सुख-मन्दिर कृपा के कुंज,
सुखमाँ की सींवाँ सम सरद-सरोज के,
कौमल अमल चारु चातुरी चटक भरे,
जोहति हरति मन मोहति मनोज के।

सुचिता, सुगन्धता बखानैं ऐसो कौन कबि,
अरुन सितासित सँवारे बिधि चोज के,
"बदत गुलाम-राम" राम-नैंन अभिराम,
चीकने, रसीले, बड़े-दौनीं महा-मोज के।



डोरे-रतनारे, बीच कारे और सारे सेत,
जिनके निहारति कुरंग-गन भूले हैं,
आनँद-अमद ऐसो मानौं बिधु-मंडल में,
सारदी के खंजन सुभाँति अनकूले हैं।
जनक-सुता के मुख चंद के चकोर किधौं,
बरने न जाति छवि उपमा अतूले हैं,
राजैं राम-लोचन, मनोज अति ओज भरे,
सोभा के सरोवर सरोज-जुग फूले हैं।



मीन धुज मीन, कंज, खंजन, मृगन-दृग–
गंजन मदै के दरसात सुठि-सौंने के,
आनँद-जनक अति, छिनक निहारति ही,
बनक-अनूप मानौं करन हैं टौंने के।
जुगल-मनोहर त्रि-देव हूँ जुगल-नैंन,
जोहति छकावैं चैंन ऐसे छबि भौंने के,
कौंने बिरचे धौं बिधि-सृष्ट में न होनहार,
लोयन-सलौंने अति कौंसला के छौंने के।

मैंन की मरोरी, चैंन चौगुनी चभोरी-भोरी,
तीच्छन-कटाच्छ-चैंन सील घर-लाज के,
ऐंन्दार, सैंनदार कोर औ मरोरदार,
कारे कजरारे, अरुन सुखमा-समाज के।
सुन्दर सलौंनदार, अगन के सरदार,
"राघौ भनें" बार-बार भाँवतै-मिजाज के,
रमा के सदन, चारु मदन मसाल जोति,
चचल चलाके नैंन-बाँके रघुराज के।



एक ही कमाँके सैंन मैंन के सनाके होति,
औचक चलावैं चोट चीकने चमा के हैं,
चायन चलाक चारु किम्मत कही न जाइ,
हिम्मत हरति हठि जाके ओर ताके हैं।
सान धरे अद्भुत, कृपान से कहे न जाँइ,
बान तें बिसेस, "राघौ" बेस बर बाँके हैं,
कोयन कनैटिन लौं थदलत बार-बार,
उघरे परत नैंन राम जू लला के हैं।



## जानकी जी के नेत्र

नैंन-अनियारे तारे पुंडरीक पान सारे,
सिय-पूलरीन पै द्विरेफ-गन वारे हैं,
कछु कजरारे, सील-सागर सुधासे धारे,
बरुनी-बिसाल धारे जोर छोर वारे।

दीन पै सनेह धारे, पीतम के प्रान-प्यारे,
उपमा न पावति बिरंचि पचि-हारे हैं,
मीन, मृग, खंजन बनाए बिधि "प्रेम-सखी",
बारि, बन, व्योम बसैं लज्जित बिचारे हैं।



मीन अति-चंचल अधीन जल हीं में रहैं,
जल तैं बिहीन तन त्यागत अचैन हैं,
खंजन तो खग मन-रंजन हैं तैसे करैं,
गंजन के जोग मद भाँरैं कवि चैन हैं।
मृग पसु जेते दृग समता न लाइक हैं,
ताही तैं सदाँ ही किए कानन मैं ऐन हैं,
रामचंद हेरिऐ तौ लहत अनंद-कंद,
मेरे जान इन्दीवर ऐसे सिय नैंन हैं।



## संयुक्त-नेत्र वर्णन

दोहुन के बाँके-नैंन, दोहुन के देरि थाके,
दोहुन के हींन उपमाँ के सोभ-साके हैं,
कंज, मीन नाँके भरैं, प्रेम के सुधा के मद–
करन मृगा के न गिरा के न उमा के हैं।
"भनैं रघुराज" अनुराग के मजा के मढे,
काके समता के एक-एक छबि-छाके हैं,
मेरे-मनसा-गुनेक हींन मृखा के बैंनु,
सील-करुना के कछु-अधिक सिया के हैं।

## कृष्ण-कमलाक्ष वर्णन

जीत भरे, जोत भरे, जोवन के जेब भरे,
भोर-भऍं होति जैसे वारिज विहान के
दया भरे, मया भरे, हीया भरे, हाँसी भरे,
सोभा के समान भरे जीवन जहाँन के।
लाज भरे, काज भरे, अति ही पुनीत चारु,
मसि हू की सील भरे, तेज भरे भान के,
सुधा भरे, रस भरे, मैन भरे, मान भरे,
ऐसे दोऊ-नैन लसे साँवरे-सुजान के।



मीन, मृग, खंजन गुमान भरे मैन-बान,
अधिक-गिलान भरे कंज दल-जाल के,
राधिका-छबीली के छैल छवि छाक भरे,
छैलता के छोर भरे, भरे छवि-जाल के।
"ग्वालकवि" आन भरे, सान भरे, स्यान भरे,
कछुक-अलसान भरे, मान भरे, माल के,
लाड भरे, लाज भरे, लाग भरे लोभ भरे,
लाली भरे, लोचन ललौंहे नंदलाल के।



खंजर, कटारी, कुंद कैबर करद नेजे,
मद करि कोरैं वला सम गन सान की,
"लच्छीराम" स्यामताई सगमी सुरंग सेत--
भौं-धनु मरोर-छोर परसनि कान की।

खजन, कुरग, कोकनद में प्रभा है कहा,
सोहैं वर-सोहैं रस मनमथ वान की,
मरम सुलारैं, कुल कॉनि-मानि चारैं आँखैं—
अजन-तिरछी स्याम-सुन्दर सुजान की।



जाके चरन बाँके, ताके छाके मुनि देव सब,
काके दुनियाँ के बीच बाँके उपमा के हैं,
लाज-परखा के कै घटा के, मघवा के, ताके,
पूरन-कला के, कहि आँनद-पता के हैं।
मीन, खज थाके, कज नाके हैं चलाकैं देखि—
लज्जित-मृगा के, विधिना के, सुखमा के हैं,
कुड है सुधा के, बसुधा के, सुख बा के बीच,
नितु सुरमा के नैंन-स्याम सुरमा के हैं।



कोऊ कहैं वान मनोभव के समान सोहैं,
कोऊ कहैं मन मोहिबे के बरजोर हैं,
कोऊ कहैं बेस हैं नरेस-नेह के दिवान,
कोऊ कहैं ब्रज-बनिता के चित-चोर हैं।
कोऊ कहैं खजन, कुरग-मन रजन हैं,
कोऊ कहैं मजु पुज कज फूले भोर हैं,
जानी हौं चकोर-चख "गोकुल" "गुविंद जू" कौ,
चितै रहे चद-मुख राधा की ओर हैं।

कैधों जुग दीनन-दयाल, वारिज बिसाल,
कैधौं राजरीट-लाल मोद के दैन हैं,
कैधौं अनुराग-लीन छबि के तडाग मीन,
जुगल-कला में परबीन चित्त चैन हैं।
कैधौं कोकनद पै समद द्वै-अलिन सोहैं,
मोहैं करि गद-गद सरूप रूप ऐन हैं,
कैधौं अनियारे-सर सरस समारे आली ?
कैधौं रतनारे बनमाली के सु नैन हैं।



लजीले, सकुचीले, सरमीले, सुरमीले से,
कटीले औ कुटीले, चटकीले, मटकीले हैं,
रूप के लुभीले, कजरीले, उनमीले,
बरछीले, तिरछीले से फँकीले औ वसीले हैं।
"ललित किशोरी" झमकीले, जरबीले मनों,
अति ही रसीले, चमकीले औ रँगीले हैं,
छबीले, बँकीले अरु नीले से नसीले आली ?
नैना-नँदलाल के नचीले औ नुकीले हैं।



मोद-बरसावनी, बिनोद सरसावनी हैं,
राधे की रिझावनी हैं नैननि चिकारी की,
चाह की भरी हैं, मानों साँचे की ढरी हैं,
नेह-मेह की जरी हैं, खरी कोर कजरारी की।

जोवन जगी हैं, प्रेम-पुजन पगी हैं जोर–
रगन-रँगी हैं, काम क्यारी फुलवारी की।
मौहन सनीकी, सुख-दैन हारी जी की नौकी,
पानिप-श्रनी की है अँखियाँ (श्री) निहारी की।



## राधिका जी के नेत्र

मैंन-मद छाके राजैं मोहन कला के ऐंन,
कज उपमा के दैंन चैंन भरता के हैं,
पट-अँचला के, चोट करन निसा के बाँके,
काम चचला के, नाँके देखति ही झाँके हैं।
सुन्दर-प्रभा के भरे, मधुर-सुधा के मीन,
मृग, भँवरा के, गुन-छीन वाके पाके हैं,
ताके, समता के हेरि या के, पै न ताके कहूँ,
ताके नैंन-बाँके वृषभाँनु की सुता के हैं।



पतिव्रतता के, मजु-मन्दिर मजा के किधौं,
लसि मृग-थाके चारु-सर सुरमा के हैं,
कैधौं छेम-छाके हैं, अमद-भौंन भाके हैं,
न ऐसे रमा, रभा के उमाके, और काके हैं।
"भनैं रघुनाथ" धाम कैधौं सीलता के प्रेम–
सागर के मीन, नैंन-बाँके राधिका के हैं,
पिय मुददा के, वसीकर वसुधा के किधौं,
सिन्धु-सुधा-मडल मैं कुड-द्वै सुधा के हैं।

खजन, चकोर, मीन, मृग सिसु सारस यौं,
बारिऐ कपोत हूँ अनूप कहि गोरी के,
तीखे-तीर, खजर, कटारी, तेग, नेजन तें,
बाँक-बिछुवा तै हैं बँकैत-बरजोरी के।
धनि "रघुनाथ" हैं लजीले, लालची हैं लाल-
पकज, गुलाब-रग रति-मद-बोरी के,
ललित-बिसाल यौं रसाल कजरारे लोल,
मृदु-रतनारे नैंन नवल-किसोरी के।



रातें रतनारे-रग भूपर उजारे, भारे,
प्रैंम-मतवारे पिय-मैंन सुख-दैंन हैं,
गजन कमल, मृग, मीन, मद-भजन हैं,
अजन लखे तें ना रहति उर-चैंन हैं।
"नदन सुकवि" नँद-नदन पै ढुरे नैंकु,
रोस भरे देखे यातें कहे कछु बैंन हैं,
ऐसे देखे मैं न, मैंन-थान से बिराजैं ऐंन,
प्यारी तेरे अजब-गुलाबी-रग नैंन हैं।



महा-कजरारे, मृग-सावक तें न्यारे,
दूरि खजन निडारे, निरखे तें जाहि चैंन हैं,
कैधौं अलि वारे, कैधौं झूमें मतवारे-
किधौं ताम-रस वारे, किधौं खजर के ऐंन हैं।

कैधौं जुग-मीन बसैं सुन्दर-सरोवर में,
कैधौं काम-सरसान चढे तीखे पैंन हैं,
औरु अग-अँगन की सोभा "मान" कहा कहौं,
देखौ स्याम ? साँवरी के कैसे नींके नैंन हैं।



जगी हैं हठीले हैं, कटीले जग जीतन कौं,
नैंकु ही निहारे तें अनग सर थाके हैं,
चचल, चलाक, चटकीले हैं रँगीले छैल,
छैल के छलैया हैं, सनेह-रस छाके हैं।
"दास कहैं" कजन के, रजन के गजन हैं,
रजन धनी के हैं, धरैया धीरता के हैं,
जाहिर जहान ऐंड़दार हैं अदाँ के झाँके,
करन निसा के ताके नैंन राधिका के हैं।



रजन रिजाने हारि कौंनन सिधारे, हेरि-
जलज लजाने, किए अलिगन चेरे हैं,
झुकि झहराने, जल-चल ही धराने रहैं,
तीच्छन अनग जी के सरगर गेरे हैं।
"दास कहैं" जेते हैं हिरन ताकि जेर किए,
लालन कौं एरी ? ए अनन्द दैंन हेरे हैं,
कारे, अनियारे, कजरारे, रतनारे राधे ?
चपल चलार, ऐंड़दार नैंन तेरे हैं।

गनन रिसाने से लजाने गए फानन री?
चचलता हेरि कैं अदाँ के चाल हारे हैं।
मुकि झट्टानी री सकानी रहीं जल-तल,
चोकनी चटक-तान हूँ अग गारे हैं,
"दास" नैंकु ताके जे छिदति नैंन ताके जे,
अनग-सरता के, तातैं ताके अनियारे हैं,
कीन्हे नद-नदन अधीन रसलीन राधे?
चचल चलाक चटकीले-नैंन थारे हैं।



नानी के, भवानी के, न रानी के सुरेस हू के,
आसुरी सुरी के हैं, न फनी-भामिनी के हैं,
रभा के, सुकेसी के, न किन्नरी तर्रान हूँ के,
मैंनका, तिलोत्तमा, न ब्रह्म-रमिनी के हैं।
"सुकवि गुलाल" मजुघोसा के, घृताची के न-
औरु उरवसी के न ससि-भगनी के हैं,
मैंन घरनी के हैं न, ऐसे हरनीके हैं न,
जैसे नैंन नीके वृषभाँनु-नदनी के हैं।



चरन नहीं पै चलते ही दरसैं हैं रोज,
ओज गुन-वारी ए खुनैया थोरी-थोरी की,
रसना नहीं पै रस लेति ही रहैं हैं सदाँ,
स्रवन बिना हीं बात सुनति हथोरी की।

"कहैं चिरजीवी" बिन हाथन हथियार करैं,
लै-लै रीति अकथ अनन्त-बरजोरी की,
धँसि रही जीमें, हीमें, आवै ना उकति एकौ,
अजब-अनौंखी-आँखैं कीरति किसोरी की।



कारे, कपकारे, रतनारे, अनियारे सोहैं,
सहज ठगारे, मनमथ मतवारे हैं,
लाज-भरे भारे, भारे-चपल अन्यारे तामैं,
साँचे केसे ढारे प्यारे रूप के उजारे हैं।
आधी-चितवन में किए तैं अधीन हरि,
टौना से बसीकर कि लौंने परिहारे हैं,
कमल, कुरग, मीन, खजन, भँवर,
बृपभाँनु की कुँवरि तेरे दगन पै वारे हैं।



आसव-पगे हैं, अनुराग सौं रँगे हैं—
किधौं सौतिन-ठगे हैं धरे गजर कतल में,
"कहै द्विज कवि" के सहाव के सरोवर मैं,
मदन के मीन-जुग पैरति नवल से।
कैधौं ससि-गरव कुरगन कौं भयौ रोस,
रेसम के जाल फँदे खजन जुगल से।
रैंन के उनींदे नैंन राधिका सुजान तेरे,
मौंति पिय-प्रेम भए राते कौल-दल से।

"रसुराज" राधिका के नैंन छके चारि निधि,
काहि सर दीजै उपमान कचिहारे हैं,
खजरीट दुज बहु-काल के रतन-मृग,
कहति कुरग, कज जड काम न्यारे हैं।
झुके से हैं लाडिले से निपट-गरूर-भरे,
महा-मर सारी उरकाम के निदारे हैं,
मद मतवारे, वय-मद-मतवारे, रूप-
मद-मतवारे, सैंन-मद-मतवारे हैं।



राधिका के नैंननि की अकथ-कथा है कोऊ-
पावति न भेद उपमान किए काहलै,
"रसुराज कहति" चकोर हैं चकोर जानैं,
मीन जानैं मीन हैं कहति सग लाइलै।
हीरा जानैं हीरा, गजमौंती, गजमौंती जानैं,
बान जानैं सैंन-बान देखि भए माइलै,
भृग जानैं मधुप, खजन, खजरीट जानैं,
कज जानैं कमल, कुरग करसाइलै।



## कूबरी के नेत्र

मानौं जाम्नी के थके सजन थकावैं एतौ,
अजन की रेखैं सुधि हरत हरी के हैं,
"कहैं राम-रसिक" रसिक-मन मोहिबे कौं,
मोहनी के जत्र ए सुढारे सुघरी के हैं।

बारि डारौं मीन, मृग, खजन की चचलाई,
ऐसे हैं नुकीले मानों ऐंन खजरी के हैं,
आसुरी सुरी के कहा पन्नगी-नगी के कहा,
ऐसे ना परी के हैं सो जैसे कूररी के हैं।

## महादेव जी के नेत्र

प्रेम-भरे पूरन प्रवीन रस नैम भरे,
सील-भरे सुन्दर सु सोहैं हाव-भाव भारी के,
तेज भरे तरुन, कृपाल-करुना के भरे,
दाया भरे दरद-हरैया जीवधारी के।
रग भरे "राम" के नसे हैं भरे भगन के,
चमकि रहे हैं भरे अनल अँगारी के,
सोभा भरे सरस, सुरग नीति गोभा भरे,
गुननि भरे हैं नैंन-तीन त्रिपुरारी के।

## काली जी के नेत्र

मान भरे सुन्दर सुजान आँन साँन भरे,
सोभा के निधान खान सुधर प्रनाली के,
तेज भरे तरुनि, तरगी, रगी दासन के,
दुष्टन सँघारिबे कौं मानिंद दुनाली के।
रौंव भरे राजति, महान-ओज मौज भरे,
"वैंनी द्विज" कमल-कुलीन कुज डाली के,
अमित खुसाली भरे, आलो जोति-ज्वाली भरे,
लाली भरे ललित ललाम-नैंन काली के।

## विंध्यवासिनी के नेत्र

आठौं-जामैं दया-रस उमग्यौ ही रहै स्याम,
धवल, सुरंग कछु, कछु अनियारे हैं,
तीनौं-देवतान के सँवारिबे के काज मानौं,
सत, रज, तम तीनौं-गुननि सुधारे हैं।
मीन, कंज, खंजन, चकोर कोरि ही सौं जीति,
जाकी उपमा कौं हेरि-हेरि हिय हारे हैं,
सत-सुखदानी, महारानी विंध-वासनी के,
लोचन-कमल, दुख-मोचन हमारे हैं।

जाकी नैंकु-दया तैं बिरंच जगती कौं रचैं,
जाकी नैंकु-दया तैं फनीस महि-धारे हैं,
जाकी नैंकु-दया तैं दिवाकर दिवा कौं करैं,
किरन-समूह सौं हरति अँधकारे हैं।
जाकी नैंकु-दया तैं काम जीतति चराचर कौं,
जाकौं "हर" जारिकैं अनंग करि डारे हैं,
सत-सुखदानी महरानी विंध-वासनी के,
लोचन कमल, दुख-मोचन हमारे हैं।

## हनूमान जी के नेत्र

तप भरे, तेह भरे, राम-पद-नेह भरे,
सन्तन-सनेह भरे, प्रेम की प्रभा भरे।
सील भरे साहस, सपूती, मजबूती भरे,
तरजें भरे, बाल-ब्रह्मचरज की प्रभा

"भनैं कविमान" दान-स्नान भरे, मान भरे,
घममान, सान दुष्ट-दलन द्रपा भरे,
सोचन के मोचन, निरोचन के त्रासन तैं,
वन्दौं पिंग-लोचन के लोचन कृपा भरे।

(सु-दृष्टि)

कोटि-काम-धेनु लौं, धुरीन कामना कौं देति-
चिन्ता हर लेत कोटि चिन्तामनी कूतकी,
बिथा चकचूरैं, कोट जीवन-लता लौं सिन्धु,
पूरैं कोटि कलप-लता लौं पुरहूत की।
"भनैं कविमान" कोटि-सुधा लौं सुधार कोटि,
सिन्धुजा लौं सुखद निदान पंच-भूत की,
गजन-बिपति, मन रंजन सु भक्त-भय-
भंजन हैं नजर प्रभंजन के सपूत की।

(कु-दृष्टि)

बाडव-बरन जम-दंड की परन, चिर्री-
मार की भरन, रिसि-भरन गिरीस की,
गाज की गिरन, प्रलै-भानु की किरन,
चक्री चक्र की फिरन, फुँफकारैं कै फनीस की।
दावानल दीसन, किरीसन मुनीसन की,
मीसन-भरी की दन्त-पीसन दबीस की,
कूट की, कला हैं काल-कोप की कैं,
कुनजर क्रुध सी नजर कौंसलेस के कपीस की।

## नेत्र और नव-ग्रह

नव-ग्रह, एकु रास, बैठे अति सोभा-भास,
"मदन" ददन देखि "सूरज" लसत हैं,
हाव"गुरु" भाव "बुध" "मगल" अरुन-डोरे,
सेत-ताई "सुक्र" जू सौं सोभा सरसत हैं।
"लाल-फुरन" "केतु" ए तौ पलक निकेत आली ?
कोयन रचति "राहु" "चन्द्रमा" प्रसत हैं,
कैसें कै बचैंगी फुल-कौंनि मन-मोहन सौं,
नजर-निगोडी मैं "सनीचर" बसत हैं।



## नेत्र और मगल-ग्रह

अरुन, अमोल-लोल लखे तैं लुभात मन,
जावक जपा से सोख रग मैं घनेरे हैं,
"बैनी द्विज" मूगा से महान-मजु आनदार,
मानिक सी चटक जनाति चारु हेरे हैं।
ईंगुर से आगर हैं, गालिब-गुलाब हू से,
भाए इहि भाँति सौं प्रभात चित मेरे हैं,
लाख लाख सौतिन सुहाग-सुख दैंन हारे,
ऐंन-मैंन "मगल" से लाल। नैंन तेरे हैं।



## विक्रम-नरेश की दृष्टि

कैसी काम-धैंनु, कामना की दैंन-ऐंन जैसी—
चिन्तामनि चारु चित चैंन कौं सुकर है

कैसी चारु-चिन्तामनि चैन की मुकर जैसी—
काम-तरु-साखा, कामना की निधि-वर है।
कैसी काम-साखा कामना की निधि-वर जैसी—
"दास" पै हमेस की हमेस दान-झर है,
कैसी है हमेस की हमेस दान-झर जैसी—
जैसी बीर विक्रम-नरेस की नजर है।



## नेत्रों के सब उपमान

सफरी से, कंज से, कुरंग, खरसाइल से,
स्याम की सी फाँकैं सब कहति सुजान हैं,
लटुवा से, नट से, तुरगम से, खंजन से,
बालक-हठीले जैसे ऐसे ठनैं ठान हैं।
देखौ टेढ़ी-कोरैं मानौं नरगैया छोर के हैं,
बान ऐसी अनी-पैनी लागैं लेत प्रान हैं,
ठग, बटवारे, मतवारे "कवि तुल्य" सब,
इतने ही नैननि के कहैं उपमान हैं।



## कवि-वृन्द, नेत्र

"पदमाकर" देखि राजाइ गए, "चिंतामनि" ही की रही मन मैं,
"मतिराम" दई यह कोविद कहँ, "ठकुराई" दई जो घटा-घन मैं।
"मिरजाज" हैं "भूषन" औं हगनैं "रस-खान" रसीले सुभायन मैं,
"धनवीर" के बीर पे नैन टरैं, घन "सेनापती" हू भगे बन मैं।

## जज्ज-वद्ध, नेत्र

नाजिर नजर, चपरासी कोर-छोर दोऊ,
दौरि धरि लावै, तकसीरिन-निलज्ज हैं,
मन-मुन्सी नैं रूवकारी करि सारी दई,
दीरघ-दिवानेदल समझै सो कज्ज हैं।
निन हक-वारे, मघ-हारे निना काजी कहूँ,
चचल-चपल चितवन चार हज्ज हैं,
बैठी बीच बँगले वहार के समान मैंच,
करति इनसाफ तेरे नैंन जोर जज्ज हैं।

## जौहरी-वद्ध, नेत्र

काजर सँवारे, निधि-पूतरी सुधारे लाल,
मानौं कारे कलित सु "नील-मनि" ढारे हैं,
ऐसे ना निहारे, सेत चमक-दमक वारे,
"हीरन" के हजूम, माल-'मौतिन' की हारे हैं।
राग भरे "विद्रुम" औ "मानिक" से रतनारे,
मानौं मैंन मौन छवि सिन्धु तैं निकारे हैं,
प्यारे स्याम जू के चारु वस के करन हारे,
जौहरी-मनोहर ए लोचन तिहारे हैं।

## पच्छी-वद्ध, नेत्र

अरुन-रग जाल मैं फँसाए "लाल" वाल तैनैं,
मजुल-"मराल" ज्यौं जवाहिर "हसराज" हैं।

अंजन दै "खंजन" कजरारे कारे "कोइल" से,
कोइल की आँखिन पै पलकन के साज हैं।
"तोते" चश्म तू है तेरे लोचन "चकोर" से हैं,
"मोर" से पुँछेरे, जोर जुर्रन के काज हैं,
"सिकरा" से सिकारी एकु झपक में झपेट करैं,
घूँघट की ओट चोट करिवे मैं "बाज" हैं।

## बिना मात्रा का नैन-निरूपण

हरत सकल, छल-पलक लगत जब,
धरत न कल, मन-डरत भरम कर,
कसर करत न, भरत जल थल-थल,
रखत अदब वह गरम सरम कर।
नरम धरम कर हरत जनन पर,
दल-दल सम हल-हलव अलम कर,
रहत सनक न, भरम तन तत-छन,
रहम करत जब चसम सनम कर।

लरजन-लरजत, लरजत नर सर धर,
धर-धर चलत करत तन थर थर,
सकत नयन, कर नजर रकत-सन,
सन-सन करत जनक जन डर-डर।
खसकत खल-दल, थल-थल हलचल,
ससकत कहर-कहर कर जर-जर,
कह तन चरस अस सखत-जगत कत,
हतत हरख कर नर-तन नर-हर।



# कवि नामावली

| कवि | भाषा |
|---|---|
| अमरुक | [ संस्कृत ] |
| अलियेली अलि | [ ब्रज-भाषा ] |
| अमरेश | ” |
| अमदास | ” |
| अनुनैन | ” |
| अजवेश | ” |
| अहमद | ” |
| अल्केश—नवीन, | ” |
| अवधेश | ” |
| | ” |
| अमीर | [ उर्दू ] |
| अकबर | ” |
| आँनदघन | [ ब्रज भाषा ] |
| आलम | ” |
| आबिल | ” |
| आतम—नवीन, | ” |
| आतिश | [ उर्दू ] |
| आरफ | ” |
| आरजू | ” |
| आसीं | ” |
| आह | ” |
| आजाद | ” |
| ईश | [ ब्रज भाषा ] |
| ईश्वर | ” |
| उदैनाथ | ” |
| उद्धवराम | ” |
| उडिराम | ” |
| पदिल | ” |
| कविन्द | ” |
| कमला पति | ” |
| कविराज | ” |
| कबीर | ” |
| कमल-नैन | ” |
| कलस | ” |
| कमनीय | ” |
| करन | ” |
| कलाधर—नवीन, | ” |
| कविदास—नवीन, | ” |
| कालिदास | [ संस्कृत ] |
| कालिदास | [ ब्रज भाषा ] |
| कान्ह | ” |
| काशीराम | ” |
| काशिम | [ उर्दू ] |

जिगर [ उर्दू ]
जीत कवि—नवीन, [ ब्रज-भाषा ]
जुरंत [ उर्दू ]
जगन्नो—नवीन [ ब्रज भाषा ]
ठाकुर ,,
तान सेन ,,
तारा कवि ,,
त्रिलोक चन्द ,,
तुलसी दास ,,
तेज—नवीन, ,,
तोष ,,
तोषनिधि ,,
दत्त ,,
दर्द [ उर्दू ]
दास [ ब्रज-भाषा ]
दास—नवीन, ,,
दामोदर ,, ,,
दाग [ उर्दू ]
दिवाकर [ ब्रज भाषा ]
दिनेश ,,
द्विज-देव ,,
द्विज-दास ,,
द्विज ,,
द्विजगग—नवीन, ,,
द्विज-बलदेव ,, ,, ,,
द्विजराज ,, ,,
दूलह [ ब्रज-भाषा ]
देव ,,
देवकीनन्दन ,,
देवीप्रसाद-( प्रीतम ) [ उर्दू ]
दौलत [ ब्रज-भाषा ]
घनेश ,,
धनीराम ,,
ध्रुवदास ,,
धुरधर ,,
नरोत्तम ,,
नवनीत ,,
नबी ,,
नवीन ,,
नज़ीर [ उर्दू ]
नसीम ,,
नारायण-भट्ट [ संस्कृत ]
नागरी दास [ ब्रज-भाषा ]
नागर ,,
नारायण स्वामी ,,
नाथ ,,
नासिख [ उर्दू ]
नियाज [ ब्रज-भाषा ]
नीलकंठ ,,
नूर ,,
नूर [ उर्दू ]
नूह ,

| | |
|---|---|
| नेह | [ ब्रजभाषा ] |
| नैन | ,, |
| नृपशम्भु | ,, |
| नंद दास | ,, |
| नंदराम | ,, |
| नदन | ,, |
| परमानन्द | ,, |
| पद्माकर | ,, |
| परम | ,, |
| परमेश | ,, |
| परमेश भट्ट | ,, |
| पजनेश | ,, |
| परबत | ,, |
| परशुराम | ,, |
| परसाद | ,, |
| परताप | ,, |
| प्रवीन | ,, |
| पुन्नी | ,, |
| पुण्डरीक | , |
| पेरी-राम—नवीन, | ,, |
| प्रेम | ,, |
| प्रेम-सखी—नवीन, | ,, |
| पजराज—नवीन, | ,, |
| पुर्नो | [ उर्दू ] |
| बलभद्र | [ब्रज भाषा] |
| बलभद्र—द्विजेश | ,, |

| | |
|---|---|
| बली | ( ब्रज भाषा ) |
| बलदेव | ,, |
| बनी ठनी, | ,, |
| बलदेव—नवीन, | ,, |
| बख्शीजी | |
| बली | ( उर्दू ) |
| बहादुर शाह, | ,, |
| ब्रजदास | [ ब्रजभाषा ] |
| ब्रज रतन | ,, |
| बाल—नवीन | ,, |
| बिस्मिल—नवीन | ( उर्दू ) |
| बीरबल | ( ब्रज भाषा ) |
| बेनी | ,, |
| बेनी द्विज | ,, |
| बेनी प्रवीन | ,, |
| बैजनाथ—नवीन, | ,, |
| भगवत रसिक | ,, |
| भरमी | ,, |
| भगवत | , |
| भारतेन्दु | ,, |
| भुवनेश | ,, |
| भूप | ,, |
| भूपति | ( ब्रजभाषा ) |
| भूधर | ,, |
| भोगनाथ | ,, |
| भौन-कवि | ,, |

| | |
|---|---|
| भजन | [ ब्रज भाषा ] |
| मतिराम | ,, |
| मधुर अली | ,, |
| मनसा-राम | ,, |
| मधुसूदन | ,, |
| महताब | ,, |
| मन निधि | ,, |
| महबूब | ,, |
| महाकवि | ,, |
| महावीर | ,, |
| मनदेव | ,, |
| मदनेश—नवीन | ,, |
| महेश | ,, |
| मजहर | (उर्दू) |
| माखन | (ब्रजभाषा) |
| माधव | ,, |
| मानिक | , |
| मान—नवीन, | ,, |
| मान निधि ,, | ,, |
| माधव ,, | ,, |
| मिश्र | ,, |
| मीरन | ,, |
| मीर | ( उर्दू ) |
| मुरारी दास | ( ब्रजभाषा ) |
| मुबारक | ,, |
| मुकुन्द-लाल | ,, |

| | |
|---|---|
| मोहन | [ ब्रज-भाषा ] |
| मोमिन | ( उर्दू ) |
| मोन कवि | ( ब्रजभाषा ) |
| मंडन | ,, |
| मंचित | ,, |
| मंसाराम | ,, |
| मंगल दीन—नवीन, | ,, |
| यकरँग | ( उर्दू ) |
| रसखान | ( ब्रजभाषा ) |
| रसिक प्रिया, | ,, |
| रसिक राय, | ,, |
| रसिक बिहारी | ,, |
| रसिक किसोरी | ,, |
| रसिक | ,, |
| रसिकेश | ,, |
| रस रंग | ,, |
| रसनिधि | , |
| रसलीन | ,, |
| रघुराज | ,, |
| रघुनाथ | ,, |
| रहीम | ,, |
| रतन | ,, |
| रत्नाकर—नवीन, | ,, |
| रसिक बिहारी | ,, |
| राज शेखर ( संस्कृत ) | ,, |
| रामसहाय (ब्रज भाषा) | ,, |

| | | | |
|---|---|---|---|
| रावराना | [ ब्रज भाषा ] | शिव | [ ब्रज भाषा ] |
| राम | ,, | शिवनाथ | ,, |
| राम—नवीन, | ,, | शिव दीन | ,, |
| रामगुलाम ,, | ,, | शिवराज | ,, |
| राघव ,, | ,, | शिवदास | ,, |
| रिपिनाथ | ,, | सदानन्द | ,, |
| रगपाल | , | सरदार | ,, |
| ललित किशोरी—नवीन ,, | | सत्यनारायण | ,, |
| ललित माधुरी ,, | ,, | सबा | ( उर्दू ) |
| ललित | ,, | सागर | ( ब्रजभाषा ) |
| लच्छीराम | ,, | सुजान | ,, |
| लखनवी | ( उर्दू ) | सुन्दर | ,, |
| लाल कवि | ( ब्रजभाषा ) | सुखदेव | ,, |
| लाल बलबीर | ,, | सुमेर | , |
| लीलाधर | ,, | सुमेरहरी | ,, |
| लेखराज | ,, | सूरदास | ,, |
| लौने फनि | , | सूरत | ,, |
| वली | ( उर्दू ) | सेख ( आलम की स्त्री ) | ,, |
| वारन | ( ब्रजभाषा ) | सेखर | ,, |
| बिहारीलाल | ,, | सेवक | ,, |
| विक्रम | ,, | सेनापति | ,, |
| विद्यापति | ( ब्रजभाषा | सोमनाथ | ,, |
| विप्र—नवीन | ,, | सोभ | ,, |
| बिहारी लाल—द्वितीय | ,, | सोजा | ( उर्दू ) |
| शम्भु | ,, | सौदा | ,, |
| श्याम सेवक—( रीवाँ ) | ,, | सकर | ( ब्रजभाषा ) |

| | | | |
|---|---|---|---|
| सकर—नवीन, | [ ब्रजभाषा ] | हरलाल | [ ब्रज-भाषा ] |
| श्रीधर | ” | हरदयाल | ” |
| श्रीपति | ” | हरी | ” |
| श्रीपति सुजान | ” | हनूमान—नवीन, | ” |
| श्रीभट्ट | ” | हरी शंकर | ” |
| श्री लाल | ” | हरदेव | ” ” |
| श्रीनिधि—नवीन, | ” | हसन | ( उर्दू ) |
| श्रीकर ” | ” | हातिम | ” |
| हरिजन | ” | हीरा सखी | ( ब्रजभाषा ) |
| हरिकेश | ” | हेम द्युति | ” |
| हनूमान | ” | हेमहंस | ” |
| हरिऔध | ” | हृदयेश | ” |

---

उक्त नामावली के अतिरिक्त जो और संस्कृत, हिन्दी, व उर्दू के कवियों के नाम हमारे प्रमाद-वश छूट गये हों उनके लिये हम क्षमा प्रार्थनीय हैं।

—सम्पादक



# सहायक-ग्रन्थ

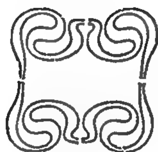
# सहायक-ग्रन्थ


अकबर और उनका उर्दू काव्य,
आलम केलि (आलम कृत)
अगादर्श (रगपाल कृत)
छन्द सागर (सस्कृत-सग्रह)
जउदाम प्रकाश (हस्त लिखित)
उस्ताद-जौक (हरीदास एण्ड को)
कविता कौमुदी (रामनरेश त्रिपाठी)
कवि हृदय विनोद (ग्वाल कवि)
काव्य संग्रह (सस्कृत)
काव्य माला (मु० देवीप्रसाद स)
गुलदस्तए बिहारी (देवीप्रसाद पीतम)
गुलदस्तए शेर, (सग्रह उर्दू)
गोपी प्रेम पीयूष प्रवाह (नवनीत)
चन्द्रावली नाटिका (भारतेन्दु)
चेत-चन्द्रिका, (गोकुल कवि)
जगत विनोद (पद्माकर)
ठाकुर-शतक, (ठाकुर कवि)
तुलसी ग्रन्थावली, (नागरी प्रचारिणी सभा)
दाग और उनका काव्य (हरीदास एण्ड को०)
देव ग्रन्थावली (नागरी प्रचारिणी सभा)
देव और विहारी गँगा पुस्तक-माला
ध्रुव ग्रन्थावली (भारत जीवन प्रे)
नवीन सग्रह (नवल किशोर प्रेस)
नख सिख (केशवदास)
नख सिख (चन्द्रशेखर)
नख सिख (बलभद्र)
नव रस तरग कृष्णविहारी मिश्र
नवरस तरग (बैनी प्रवीन कृत हस्तलिखित)
नजीर (हरीदास एन्ड को०)
नागर समुच्चय (ज्ञान सागर प्रे)
नित्यकीर्त्तन (लल्लूभाई, छगनभाई)
परमानन्द सागर (हस्तलिखित)
पजनेश प्रकाश (भारत जीवन प्रे)
ब्रजमाधुरी-सार (वियोगी हरि)
ब्रज बिहार (वेंकटेश्वर प्रेस)

निक्रम सतसई (हस्त लिखित)
मनोज मञ्जरी (अज्ञान कवि सग्रह)
मतिराम सतसई (हस्त लिखित)
मिश्रबन्धु विनोद (मिश्रबन्धु)
रघुराज विलास (नवलकिशोर प्रे )
रस कुसमाकर (म ददुआ सा स )
रसराज (मतिराम)
रतन हजारा (रसनिधिकृत)
रहिमन सतक (हस्त लिखित)
रहिमन विलास
(साहित्य सेवा सदनकाशी)
रहिमन भूषण
(कुडलिया नवनीत कृत )
रस रग
(ग्वाल कवि कृत हस्त लिखित)
रसक्रानन्द " "
रस रत्नाकर
(प्राचीन मथुरा का छपा)
रसक्रानन्द
(रगपाल कृत भारतजीवन प्रे०)
रसिक मोहन (भारत जीवन प्रे )
रस प्रबोध "
राग रत्नाकर (वेंकटेश्वर प्रे )
गाथा-सुधा शतक (हठी, कृत)
विहारी सतसई (प पद्मसिंहजी)
विहारी चन्द्रिका
(सस्कृत गयादत्तकृत)
विहारी विहार
(अम्बिकादत्त व्यास)
शम्भु शतक (भारत जीवन प्रे )
श्रृगार शतक (भर्तृहरि)
श्रृगार-सग्रह (नवलकिशोर प्र )
श्रृगार सुधाकर (प मन्नालाल स )
श्रृगार सरोज (प मन्नालाल स )
श्रृगार निर्णय ( भिखारी दास )
श्रृगार-सतसई (रामसहाय दास)
साहित्य विहार (वियोगी हरि)
सिवसिंह सरोज (नवल किशोर प्र )
सुन्दरी तिलक (मथुरा का छपा)
सुन्दरी तिलक (खड्गविलास प्रे०)
सुन्दरी सर्वस्व (प मन्नालाल स
सुभाषितरत्न भाण्डागार
(सस्कृत सग्रह नि सा प्रे०
सुजान सागर (हस्त लिखित
सुजान-सतक (भारतजीवन
सुजान-रसखान "
सुन्दर श्रृगार (दास कवि कृत
सुधानिधि (तोष कवि कृत
सूर सागर (वेंकटेश्वर प्रे
" ( नवल किशोर प्रे
" (हस्त लिखित
सूक्ति सरोवर (भगवानदीन
सस्कृत कवियों की अनोखी सू

| | |
|---|---|
| ग्रह नूर 'हस्त लिखित) | हिन्दी नवरत्न (गंगापुस्तकमाला) |
| हरिश्चन्द्रकला (खड्ग विलास प्रे ) | हिन्दी कवियों की अनोखी सूझ |
| हाफिज जुल्लाखाँ का हजारा ( नवल किशोर प्रे ) | हृदय तरंग ( सत्यनारायण कवि ) |





# शब्दार्थ

# शब्दार्थ



अंजन धार—अंजन (काजल) रूपी धार—धार, तेजी।
अंक—चिन्ह, निसान, शरीर, गोद।
अंबुज-फन—कमल के फन, बिन्दु।
अहार—खाना-पीना, भोजन,
अनियारे—तीखे, पैने, नुकीले, कटीले, धारदार।
अमित-छवि—परिमाण रहित छवि (सौन्दर्य) बेहद सौन्दर्य, असीम सौन्दर्य।
अनी घनी—विशेषपैनी, तीक्ष्ण, तेज धार।
अनन्य-गँभीरन—बहुत घना जंगल, वन।
अनंग—अंग (शरीर) रहित, अर्थात् कामदेव।
अमी—अमृत।
अलि—भ्रमर, भौरा।
अनंग रंग—काम का रंग।
अमल—नशा, निर्मल, स्वच्छ।
असा—सोटा, डंडा, वह डंडा जिसे फकीर अपनी बगल में दबाकर बैठते हैं, सहारा लेते हैं।
अम्रे-धारों—पानी से भरे हुए, उमड़े हुए, बरसने वाले बादल।
अलियारे—भ्रमर के बच्चे वा छोटे भौरा।
अलि-कुल—भ्रमर-कुल, समूह।
अरबरात—व्याकुल होते, घबराते, विचलित होते।
अगाध—अथाह, बहुत गहरा,
अहीट—घिनौना, निर्लज्ज, अनकहा।
अरीले—अड़ने वाले।
अनखात—झुंझलाते, रिसाते, क्रोधित, कुपित।

अमाँघडी—नहीं समाने वाली, उफनती।
अति-चोखी—विशेप सुन्दर, बहुत सुन्दर।
अरविंद—कमल।
अनुहारि—समान,तुल्य, सदृश, एक रूप।
अयाने—बुद्धि हीन, अजान, अज्ञानी।
अमलता—स्वच्छता, निर्मलता,
अनख—झुँझलाहट, रिस, क्रोध, नाराजी ईर्षा, अकस, कुढन।
अछेह—निरतर, लगातार, अखड, बहुत-अधिक।
अमी-कन—अमृत की बूंदें।
अनी अनियारी—पैनी धार, तीखी धार।
अगोटे—सुसज्जित किये, प्यार से सँभाले।
अघात—तृप्ति न पाते, विशेप इच्छा से इच्छित।
अहेरी—शिकारी,
अरि—दुस्मन, शत्रु, बैरी।
अलम—दुःख, रज।
अश्क—आँसू।
अर्श—आसमान, आकाश।
अतोल छबि—तुलना रहित छबि (सौन्दर्य) तुलने में न आनेवाला सौन्दर्य।
अग-कानन—शरीर रूपी वन, कानन, जगल।
अघस्रैंनी—अघश्रेणी, पापों की पंक्ति।
अजन पनच—अजन (काजल) रूपी पनच (रौदा) धनुप की डोर।
अनख भरी—झुँझलाहट भरी, रोप भरी।
अजिहि-कमान—बिलायेंदे (धनुप की डोरी) वाली कमान, धनुप।
अनत लोंच—बहुत कोमल।
अवनीस—अवनी (पृथ्वी) के ईश (मालिक) राजा।
अतूले—तुलना रहित, समानता रहित, खाली।
अमद—श्रेष्ठ, उत्तम, अच्छा,

सुन्दर, भला, धीमा न हो, तेज।

आरसी—एक प्रकार का काँच लगा आभूषण जो अँगूठे में पहना जाता है, शीशा, आइना, दर्पण।

आबे हयात—अमृत।

आतुर—व्याकुल, व्यग्र, घबड़ाया, अधीर, उद्विग्न। बेचैन।

आँधड़ी-पाघड़ी—जल्दी बावली हो जाती।

आँन मेंड़—मर्यादा की सीमा, हद।

आरस बिभावरी — आलस्य (खुमारी) की खुशी, लज्जा।

आलस-चलित—आलस्य से झुकी हुई, नमित हुई।

आनन—मुख, मूँ।

आखें दैति—लिखे देती, कहे देती।

आलम—दुनियाँ, ससार, जगत जहाँन।

आगोश—गोद।

आतिश—अग्नि, आग।

आबदीदा—पानी से तर आँखें, भींगी हुई आँखें, सजल-नेत्र।

आहू—हिरन, मृग।

आरिज—गाल, कपोल।

आफरी—शाबसी।

आले—गीले, रस से प्लावित।

आसुहि—जल्दी, शीघ्र।

इक निगाहें लुत्फ में-एक निगाह (नजर) लुफ (मजा) में।

इतराह—घमड करना, फूल उठना।

इतमाम—बन्दोबस्त, प्रबन्ध, इन्तजाम।

इन्दीवर—कमल।

इन्दु—चद्रमा।

ईच्छु—आँख, नेत्र।

ईच्छीन—आँख, नेत्र, दर्शन, विचार, जाँच।

ईठि—मन चाहा, मित्र, सखा दोस्त, मित्रता, दोस्ती। प्रिति।

उकति—उक्ति, कथन वचन, अनोखा वाक्य ।
उडुप—चन्द्रमा ।
उभै—उभय, दोनो ।
ऊभौसी—घबरायी सी, व्याकुल सी ।
उदधि—समुद्र।
उमाँडें देति-उमाड़ें देति (देती),
उसीर—उशीर, खस, काँस की जड जिसके गर्मी में पर्दे बनते हैं ।
उमगति है—हर्षित होती है, खुशी होती है ।
उघरानी—निकली पड़तीं ।
उनवै—घिरे ।
उदू—दुस्मन, शत्रु ।
उल्फत—मुहब्बत, प्रेम, प्रीति प्यार ।
उत्पल—कमल, नीले-कमल ।
ऊबर खोट—कठिन-मार्ग, अटपट रास्ता ।
ओपे—माँजे, साफ किए, जिलो चढादी, चमका दिये, पालिश किये ।
ओप—आभा, चमक, कान्ति, झलक, सुन्दरता, शोभा।
ओज—तेज, बल प्रताप, प्रकाश, उजाला कविता का वह गुण, जिसके सुनने से चित्त में आवेश हो ।
औचक—अचानक, एकाएक, सहसा, एक बारगी ।
औंडी—गहरी, गंभीर ।
ऐंन—शान्ती, घर, मकान ।
कज दल—कमल की पँखुड़ी, पखुड़ी ।
कञ्चुकी—अँगीया, चोली ।
कजन—कमल विशेष ।
कज—कमल, ब्रह्मा ।
करेरे—कठिन, कड़े, कठोर ।
कज—टेढा, तिरछा ।
कबच—जिरह बकतर, आवरण ।
करवाल—तलवार, नाखून, नख।
कयामत—सृष्टि का अंतिम दिन, लेखे का दिन ।
कजाकी—लुटेरापन, बद मासी ।

कल्लोल—आमोद, प्रमोद, क्रीड़ा खेलना, केलि।

कजरौंही-कोरैं—काजल से काली कोरें, सिरा, किनारा।

कत घतरे—कहाँ बिताई, किस जगह रहे।

कनावड़ी—कलंकित, निंदित, बदनाम।

कनौड़ी—कानों तक फैली हुई, कलंकित, बदनाम, निंदित।

कसायौ—दृढ़कर बाँधी, बाँधना, कसकर रखी।

कनौड़े—कानोंतक फैले हैं, कनौड़ी

कजाक—लुटेरा, डाकू, बट-मार।

कहर—आपत्ति, विपत्ति, संकट, गजब।

कलानिधि—चन्द्रमा।

करेरी—कड़ी, टेढ़ी, कठिन सख्त।

कसमस—कुलबुलाहट, कुछ-कुछ उभरे।

कलिका—कली, बिना खिला पुष्प विशेष।

कमलापति—लक्ष्मी का पति, विष्णु भगवान।

कलंकिन—कलंकित, कुल से च्युत।

कल ताल कामरूपी ताल सरोवर।

कपोत—कबूतर, परेवा।

कछारन—समुद्र व नदी के किनारे की ऊँची-नीची तर ( गीली ) भूमि।

काम-कैवर्त्त—काम रूपी मल्लाह, केवट।

काकुल—कनपटी पर लटकने वाले बाल, कुल्ले, जुल्फें।

कान्ति—तेज, दीप्ति, प्रकाश, आभा, सौन्दर्य, शोभा, छवि।

काचे घट—कच्चे घड़े अर्थात् मिट्टी का कच्चा घड़ा।

कातिब—लिखनेवाला, लेखक।

काछनी—कई रंगों के टुकड़ों द्वारा सिला हुआ वह कपड़ा जो कमर में

पाजामा के ऊपर पहिरा जाता है, और वह कई नाम का होता है जैसे कि मल्ल-काछनी, जामा-काछनी।

कामणगाँरी—कामकी आगरी अर्थात घर, मकान।

काँटा—एक प्रकार की तराजू जो कि तोलने में जरा भी फरक नहीं रखती।

कुस्तये निगह—निगह (कटाक्ष) से मारा हुआ जख्मी।

कुलीन भाव—श्रेष्ठ भाव।

कुमुदामल—कुमुद (कमला) का सौरभ। सुगन्ध युक्त हवा।

कुरंग—हिरन।

कुमकुम—केशर, रोली।

कुवलय—नील कमल।

कुटिल—दुष्ट, टेढा, वक्र।

कुंज—वह स्थान जिसके चारों तरफ घनी लता छाई हुई हो।

कुहु-अमावस्या की काली रात्रि।

कूए-जाना—माशूक के मकान की गली।

केलि—खेल, क्रीडा, रति, मैथुन, समागम, स्त्री-प्रसंग।

केल-कलह—प्रेम की लड़ाई, रति की कलह।

कैफियत—समाचार, हाल, विवरण।

कैफ—नशा, मद।

कैबर—तीर का फल या गाँसी।

कोयन—आँखका अन्तिम पतला भाग जहाँ कुछ सुर्खी हो।

कोकनद—लाल कमल, लाल कुमुद।

कोस—कोष, खजाना, डिब्बा सपुट, गोलक।

कौल—उत्तम-कुल में उत्पन्न, कमल।

कौल-दल—कमल-दल (पखडी)।

कृसोदरी—कृशोदरी, कृश पतले, (क्षीण) उदर (पेट) वाली।

खंजन—प्रसिद्ध पक्षी।
खता—कसूर, अपराध, तकसीर।
खराति—निभना, टिकना, ठहरना, परख में ठीक उतरना।
खरयौ—ठीक-ठीक, खरा।
खगीन—पक्षी विशेष।
खाम—कच्चा, जो पुष्ट न हो अनुभव हीन।
खिरकि—गायों के रहने का स्थान।
खुभी—घुभी, घुसी, धँसी।
खोट—दोष, ऐब, बुराई।
गञन—अनहा, तिरस्कार, मारनेवाला।
गडकी के सुत—गडकी नदी के सुत (बेटे) अर्थात् सालिग्राम।
गजागिले खजन की—गुञ्जा निगलते हुए खजन की।
गहती—पकड़ती।
गति—चाल।
गद गए हैं—हलके हो गए हैं।
गवाखैं—झरोखा, खिड़की कोई कोई आँख के अर्थ में भी इसको प्रयुक्त करते हैं।
गनीम—दुश्मन, बैरी, शत्रु, लुटेरा, डाकू।
गसिबे को—पकड़ने को, धरने को।
गन—समूह।
गहरी—ओंडी, गभीर।
गर्दिश—चक्कर।
गाडरू—सर्प के काटने का मन्त्र इलाज द्वारा करनेवाले मनुष्य जाति विशेष।
गिरा—सरस्वती।
गिलाफ—वह कपडा जो बिछौने या तकिया पर चढाया जाय, खोली, नडी रिजाई, लिहाफ, म्यान।
गिला—उराहना, शिकायत, निंदा।
गिजा—भोजन, स्वच्छ-वस्तु, खोराक।
गिलान—ग्लानि, घृणा, नफरत।
गुजारिश—निवेदन।

गैंठे—टेढे।
गैल—मार्ग, रास्ता, गली, कूचा।
गोत—कुल, वंश, खाँदान।
गोरुक—मछली पकड़ने वाले जाल के मोटे छल्ले।
गोहन—पीछा।
घने—बहुत।
घात—प्रहार, चोट, मार।
घालैं—देवें, एक प्रान्तिक बोली।
घुरी—गली, द्रवित।
घुमरैं—घुमड़ें।
घूँघट टाटी—घूँघट की टट्टी, आड़ ओट।
चचरीक—भ्रमर, भौंरा।
चसकौंहे—चसकदार।
चपल—तेज, फुर्तीला, चुलबुला, कुछ काल तक एक जगह स्थित (ठहरने) न रहने वाला।
चख—आँख,
चटकारे—चटकनेवाले, शोख, भड़कीले।
चश्मे मैं फरोश—आँख रूपी मदिरा बेचने वाला।
चकत्ता—बादशाह, दाग, धब्बा।
चपल-दराज—बड़ा चुलबुला।
चपरि—फुरती से, चपलता से तेजी से, सहसा, लगाना।
चवाव—फैली हुई बदनामी, बुराई करना, निंदा की चरचा करना।
चश्मे-तर—गीली, भीगी आँख।
चश्मे शाकी—शराब पिलाने वाले की आँख।
चभोरी—डुबोई, चभोई।
चक्री—चक्र धारण करने वाला, चक्रवाक, कुलाल, सर्प, कुम्हार, सूचक, जासूस, मुखबिर, दूत, काक आदि।
चाहल—प्रसन्न।
चायन—लालसा, उत्कंठा, प्रेम, दुलार, चाह।
चाउ—प्रबल-इच्छा, अभिलाषा, लालसा, अरमान।
चारु—सुन्दर, मनोहर।

चिंतामनि—चिन्तित (इच्छित) फल देनेवाली मनि, मणि।
चिबुक—ठोड़ी, गाल।
चित वित—चित्तरूपी वित्त धन।
चिकुर—बाल, केश।
चिलगन—ठहर-ठहर कर उठने वाली पीड़ा।
चिगुला—बच्चा, छोटा सा बच्चा।
चोखे—अच्छे, सुन्दर।
चौंप—ईर्षा, होड़।
छतना—शहद की मक्खियों का पा छत्ता।
छवि-छाकैं—छवि (सौंदर्य) की मदिरा, शराब।
छपाकर—चन्द्रमा।
छमा—क्षमा का अपभ्रंश।
छादन—आच्छादन, वस्त्र, कपड़ा।
छेम छाम—क्षीण, क्षेम, कुशल।
छौना—बच्चा।
जकि—भौचक्का होना, चकप-काना।
जलज—कमल।
जलजात—कमल।
जरब—आघात, चोट।
जख्म—जखम, घाव।
जग-जैन—जगत को जीतने वाले।
जकरे—कसकर बँधे।
जन्हुजा—गंगा।
जकन्दन—उछलते हुए, कूदते, टूट पड़ते।
जपा—जवा, अड़हुल।
जगो-जदल—लड़ाई-झगड़ा।
जाम—शराब पीने का प्याला।
जाचक—माँगने वाला, भिखारी, भिक्षुक।
जावक—पैर में लगाने का लाल रंग, महावर।
जिहि—रोदा, चिल्ला, ज्या, धनुष में लगने वाली डोरी।
जुग—दो।
जुरे—मिले, भिड़े।
जुल्फ—देखो काकुल।
जूटी—जुड़ी।

जूवौ—देखो, निरखो।
जोखति—तोलति।
झख—मछली।
झरछौसो—अग्नि की लौसी।
टाँकी—पत्थर गढने का औजार, कील।
टाटी—टट्टी, आड।
टुक—थोड़ा, जरा, तनक।
टोली—महल्ला, बस्ती का छोटा भाग।
टौना—जादू।
ठाॅन—कार्य का आयोजन, अनुष्ठान, समारंभ।
ठेलगी ही ए में पीर—धक्का देकर हृदय मे दर्द बढा गयी।
डह डहे—हरे-भरे, ताजे।
डट गए ह—ठहर गये हैं, अड़ गये हैं।
डगरी—चलदी।
ढरन—पतन, दलन,
ढहे—गिरे।
ढिंग—पास, समीप, निकट, नजदीक।
ढीट—अनुचित कार्य करने वाला, निसकोची, धृष्ट, बेअदव, शोख।
ढुरी—गिरी, पतित हुई।
ढोट—पुत्र, प्यारा बेटा।
तरौना—कान में पहरने का एक आभूषण, कर्णफूल।
तकसीरनि—कसूरवार।
तड़ाग—तालाब, सरोवर, ताल, पुष्कर, पोखर, सर।
तरनि-सुता—जमुना जी।
तलब—इच्छा, अभिलाषा, आवश्यकता, तलाश, खोज।
तरकस—तीर रखने का थोगा, भाथा, तूणीर।
तम से—अन्धकार से।
तसबी—माला, सुमरनी।
तले—नीचे।
तातर—उस के नीचे, तरे।
तायरे दिल—आत्मारूपी-पक्षी।
ताजी—घोड़ की जाति विशेष।
ताटंक—कर्णफूल, तरकी।

ताखन ते--उसी क्षण से ।
ताकैं--देखें ।
तायरे रुह--आत्मारूपी पक्षी ।
ताप—गर्मी, उष्णता, तेजी ।
तुरग—घोड़ा ।
तुरी—घोड़ा ।
तूनीर—बाण रखने का घर, स्थान, तरकश ।
तोते चश्म—बेवफाई भरी आँखों वाला ।
थिरे—शान्ति हुए, स्थिर हुए ।
थली—स्थान, जगह ।
दह-नीरन—गहरे पानी ।
दहति—जलाते ।
दई—ईश्वर, विधाता ।
दहें—जलाये ।
दरके—फटे, चिरे, विदीर्ण ए ।
दरोचन—नीचे पटक के गवना ।
दाडिम—अनार ।
दिवाँणे—पागल, सिड़ी, विक्षिप्त ।
दिपाजान—प्रकाशित ।
दिनाकर—सूर्य, भास्कर, रवि ।
द्विरेफ—भौंरा, भ्रमर ।
दीवें—आवैं ।
दुरि देखति—छिप के देखती ।
दुरे—छिपे ।
दुहुँघाँकी—दोनों ओर को ।
दुख चाइन सों—दुख की पीड़ा से ।
दुखमौंट—दुख की गठरी ।
दुआजा—जहाँ दो नदी मिलती हो वह स्थान ।
धवल—उजाला, सफेद, श्वेत, निर्मल, झकाझक, सुन्दर, मनोहर ।
धाम—घर, मकान ।
धीरन—स्थिर ।
नय—नीति ।
नखरैना—उलाँघने वाले, पार करने वाले ।
नट जाँइन—मना न कर दें ।
नए तैं—देने से, घालने से, दिए से झुकने से ।
नट गए हैं—इन्कार कर गए हैं।
नगराज—पहाड़ो का राजा, भगवान का नाम विशेष ।

नग—पहाड, स्थिर, अचल। विशेष।

नगारे—निगाड़े एक वाद्य, नाव, डोंगी।

नाशाद—रंजीदा।

नाज—ठसक, नखरा, चोंचला, हाव-भाव।

नाँधे—बाँधे।

नाल—साथ, संग।

नाजुक—कोमल, सुकुमार।

नाजनी—स्त्री, चटक-मटक वाली स्त्री, ठसक वाली स्त्री।

नाधनि—नाधना, बाँधना, जोड़ना।

नाजिर—प्रबन्ध कर्त्ता।

निमिष—पल, क्षण से भी छोटा हिस्सा।

निपट गसीले—निरे गहनेवाले, रसाली पकड़ने वाले।

निगुरे—बिना गुरु के, अदीक्षित।

निजगोंकी—अपने मतलब की।

निगोए—छिपाये, गोपन किए।

निकाई—सुन्दरता, मनोहरता, कोमलता।

नियरानि—समीप, निकट।

नीमजाँ—अधमरा, सिसकता

नीके—अच्छे, सुन्दर।

नीरज-नैनी—कमल समान नेत्र वाली।

नीम बिस्मिल—अधमरा, सिसकता।

नेरे—समीप, निकट, पास।

नेह—स्नेह, प्रेम, प्रीति, प्यार, मुहब्बत।

नौरंग—एक प्रकार की चिड़िया।

नोखे—अनोखे, अद्भुत, विचित्र, विलक्षण, अनूठे, अपूर्व।

पंकज—कीच से उत्पन्न होने वाला कमल।

पंक—कीचड़, कीच।

पगी—अनुरक्त, मग्न।

पराग—वह धूलि जो फूलों के बीच लंबे केसर पर जमी रहती है।

पटली—झूले पर बैठने की एक लकड़ी, पट्टा।

पलक-कपाट—पलक रूपी, कपाट, किवाड़।
पग पाँवड़ी—खड़ाऊँ।
परघल हरौल—प्रबल हरौल, सेना का अगला भाग ठगों व डाकूओं का सरदार।
पन्नगी—सर्पिणी, स्याँपिन।
परानी—भागी, चलदी, पिछाडी लोट चली।
परजन्य—बादल, मेघ।
परेखौ—पश्चात्ताप, पछतावा, अफसोस, खेद, विषाद।
पल-पाँवड़े—पलक रूप पाँवडे।
पल-तूनि—पलक रूपी तूणीर, बाण रखने का म्यान, तरकश।
परलैं—प्रलय।
पलक-जयन्ती—पलक रूपी पताका।
पलक निखग—पलक रूप तूणीर, तरकश।
पटोली—रेशम की साडी, धोती।
पतवार—नाव की वह लकड़ी जिससे नाव घुमाई जाती है।
पचिहारे—प्रयत्न करके भी हारे।
प्रवीन—कुशल, दक्ष, चतुर, होशियार।
प्रभाकर—सूर्य्य।
प्रभजन—तोड़, फोड, हवा,
प्रसूति विथा—प्रसव की पीडा, जनन की विथा, दुःख।
पचवान—कामदेवका एक नाम विशेष।
पानिप—ओप, द्युति, कान्ति, चमक, आब।
पाटल नयन—कुछ ललौंही लिये हुए बडे नयन, आँख।
पातुर—वेश्या, रंडी।
पाक दिल—साफ दिल, 'निर्मल-मन।
पारी—ओसरा, बारी।
पारथ—अर्जुन का नाम विशेष।

पाहन—पत्थर, पाषाण।
पिय-मुददाई—प्रिय को आनन्द देनेवाले।
पिनहाँ—छिपा हुआ।
पिंगलोचन—भूरी या तामे के रंग की आँख वाले या कुछ पिलाई लिये हुए।
पींजरी—लोहे या बाँस से बना हुआ पक्षीओं के पालने की चीज, घर।
पीर—पीड़ा, दुःख, दर्द, तकलीफ।
पीन—स्थूल, मोटी, पुष्ट, सम्पन्न, भरीपूरी।
पुज—समूह, ढेर,।
पुजन—विशेष समूह।
पुण्डरीक—स्वेत-कमल।
पुनीत—पवित्र, शुद्ध।
पेल—दबाकर भीतर घुसना, जोर से ठेलना, या धँसना।
पैमाना—जिससे कोई वस्तु नापी जाय।
पैज—प्रतिज्ञा, प्रण, टेक, हठ।
पोट—गठरी, पोटली, बुकचा।
पोखे—पाले, पोसे,।
फरियाद—विनती, प्रार्थना, शिकायत, दुखित मनुष्य का त्राण के लिये चिल्लाना।
फरके—अलग, पृथक।
फुरकत—जुदाई, विरह।
फोंफें—तीर, बाण का वह पिछला हिस्सा, जिस में पर (पख) लगे होते हैं।
बलित—जले हुए।
बकैत—तलवार आदि चलाने वाला।
बटपारे—राह में डाकेजनी करने वाले, डाकू, लुटेरा, ठग।
बहशत—पागलपन।
बज्म—महफिल।
बयाबाँ—जगल, उजाड़।
बदि—होड, बाजी लगाना।
बदर—समुद्र का वह स्थान जहाँ जहाज ठहरे।
बक—टेढा, तिरछा।
बारिचर—मछली, मत्स्य।

वारिज—कमल, मछली।
वाडव—अग्नि।
वानि—आदत, स्वभाव।
वारिद—मेघ, बादल।
वार-बगारि—बाल बिखरा कर।
वारुनी—शराब, मदिरा।
वाम—टेढ़ा, कुटिल।
वातिल—खारिज।
बिम्ब—छाया, अकस, प्रति-
मूर्ति, कुदरू नाम का
लाल फल।
बिसेख—विशेष, भेद, अतर,
फरक, तरह ढग, विचि-
त्रता सार, निचोड,
मुसकिल आदि।
बिसिख—बाण।
बिस्मिल—घाइल, विह्वल।
बिबि—दो।
बिजया—भग, भाँग।
बिकसति—फूले, खिले,
प्रस्फुटित।
बिछुवा—छोटी-छुरी, टेढ़ी-छुरी।
बिमल—विकार रहित, निर्मल,
स्वच्छ, दोष रहित।

बीर—स्त्रीयों का परस्पर प्यार-
युक्त सबोधन।
बीजी—दूसरी।
बेधति—बेधना, छेदना, धावा
करना।
बैस—उम्र, आयु।
बैनों में—शब्दों मे।
बोमे—बेवकूफ, कम अक्ल।
ब्योम—आकाश।
भमैया—प्रससा करने वाले,
भाट करथक।
भट्ट—परस्पर स्त्रीयों मे बोलने
का आदर सूचक सबो-
धन, प्रियव्यक्ति, सखी।
भञ्जन—तोडना, भग करना।
भारती—सरस्वती।
भाँवते—मन के माफिक, जो
भला लगे, प्रियतम।
भींने—गीले, भीजे, आले।
भूप—राजा।
भौंडी—भद्दी, बेहूदगी।
मन-भौ—कामदेव।
मद मोकल—मद से छूटा हुआ,
आजाद।

महबूबी—प्रेमिका, माशूक।
मनचञ्चुक—मन-रूपी भौंरा, भ्रमर।
मदन-सदन—मदन ( काम ) का घर मकान।
महा-अरबीली—बड़ी अरीली, विशेष अड़ने वाली।
मधुकर—भौंरा, भ्रमर।
मलय—पवन, समीर, वायु।
मयंक-मुख—चंद के समान मुख।
महबूब—प्रेम-पात्र, माशूक।
मजेज—दर्प, अहंकार, अभिमान।
मधुपी—मधु को उत्पन्न करने वाली मधुमक्खी।
मनोज—कामदेव।
मदन-जुडी—मदन से जुड़ी अर्थात मिली, वा मदन-देव की जड़ी, बूटी।
मतंग—हाथी।
मधुव्रत—भौंरा।
मखतूल—काला-रेशम।
ममोले—एकदम छोटे बच्चे।
मन-सेवक—

मजह का खान्दाँ—मजहब का खानदाँन, कुल।
मनकरे—वे बहे, अमाना, ढीट।
मनसा—कामना, इच्छा।
मरीची—किरणें।
मराल—हंस, इक प्रकार की बतक।
मडरानि—चारों तरफ घूमना।
मयाभरे—प्रेम से भरे, ममत से भरे, मोह भरे।
मघवा—इन्द्र, देवताओं का राजा।
मलिन्द—भौंरा।
मञ्जु—सुन्दर, मनोहर।
मार—कामदेव का नाम।
माहुर—विष, जहर।
मिहींचे—मींचे, बन्द करे।
मिलहरी—मिलाने की क्रिया।
मिजगाँ—भौंह।
मिसि—उठा।
मिस्ल—समान, तुल्य, बराबर।
मीनकेत—कामदेव।
मीन-मजीठ परी — मजीठ

अर्थात् लालरंग में पड़ी मछली ।
मीनसपच्छ—पक्ष (पख) युक्त मछली ।
मीढें—तुलना में ।
मुप—एक प्रकार की प्यार युक्त गाली ।
मुँह-जोर—तेज, उदंड, शीघ्र वश में न आनेवाले ।
मुरीद—अनुगामी, अनुयायी, आशिक ।
मुदै-भरि—प्रसन्नतायुक्त ।
मुरव्वत—शील, लिहाज ।
मुद्दई—वह मनुष्य जो किसी पर दावा दायर करे ।
मुद्दालेह—वह मनुष्य जिसके ऊपर दावा किया गया जाय ।
मूँसैं—चुरायें ।
मूक—गूंगा, चुप रहना ।
मैन—कामदेव ।
मैंड—मरियाद ।
मैनबान—काम के बाण ।
मै—शराब ।
मैखाना—शराब खाना ।
मृनाल—कमल की डंडी ।
मृदुवान—मिठी बोली, प्यारी बोली ।
मृग-छौना—मृग (हिरन) का बच्चा ।
मृग-सावक—मृग का छोटा बच्चा ।
मृगम्मद—कस्तूरी ।
यफूर—उमड़ना ।
वायज—उपदेशक ।
रतनार—सुर्ख, लाली से ललित ।
रनैल—रंगी हुई, डाली हुई उप-पत्नि ।
रए—मिले ।
रहैं—यहें, रटें ।
रसना—जिह्वा, जीभ, जबान ।
रतिनाथ—कामदेव ।
रटै—याद करे ।
रहीं—ठिहरी, स्थित ।
रद-छद—ओठ पर दन्त छद, काटने का निसान ।
रंचक—थोड़ा, अल्प, तनिक ।
रंच—थोड़ा, तनिक ।

रजन—प्रसन्न करना ।
रंक—भिखारी, गरीब, कंगाल ।
राते—रंग में रँगे, लाल, सुर्ख ।
राहत—आराम, चैन, सुख ।
राजीव—नील पद्म, नील कमल ।
रावरे—आपके, प्रिय सम्बोधन ।
रिसि—गुस्सा, क्रोध ।
रिन्देशरावी ने—शराब पीने-वाले मस्त फकीर ने ।
रूख—कपोल, गाल, मुख, इच्छा ।
रुसवा—जलील, बदनामी ।
रूप तुरंग—सौन्दर्य रूपी घोड़ा, अश्व ।
रूप-जलनिधि—सौन्दर्य सागर ।
रूप-कछार—सौन्दय की कछार ( दे० कछार ) ।
रूदें—कुचलना, मर्दित करना पददलित करना ।
ललाम—रमणीय, सुन्दर ।
लसैं—सोभित, सोभा युक्त ।
ललौंहे—सुर्खी मायल, शुद्ध लाली लिये ।
ललित—सुन्दर, मनोहर, मनचाहा, प्यारा ।
लट गये हैं—थक गये हैं ।
ललिकें—चाँह करें, ललचाएँ ।
लचकि—ललचाकर ।
लफचारे—बल खाये हुए ।
लटपट—अस्त-व्यस्त ।
लपट—कामी, विषयी ।
लगर—ढीट, शरारती ।
लाज के आँदू—लाज रूपी बेड़ा से बंधे ।
लाल—प्रिय संबोधन, प्यारा, मनचाहा ।
लुकि—छिप ।
लुत्फ—मजा, खूबी ।
लुनाई—लावण्य, सुन्दरता, सलोनापन, खूबसूरती ।
लुभी—मोहित हुई, लुभाई ।
लुकानी—छिपी ।
लुरैं—हिलती डोलती हुई लट कना ।
लोचन—आँख ।
लोक-लाज सीकर-लोक- लज्जा रूपी सीकर, जंजीर ।

लोल—चचल ।
लोचति रहति—छोडती-रहती, बर्षाती रहती ।
लौने—लुनाई युक्त, सुन्दर ।
सरस—रसयुक्त , मनोहर , सुन्दर ।
सलिल—जल, पानी ।
सफक—लालिमा ।
सव्रीडा—लज्जायुक्त, शर्मीली।
सफरी—मछली ।
सजाति—अपनी जातिवाले, अपने कुलके ।
सरसी—छोटा ताल, सरोवर, तलैया,पुस्करणी, बावली।
सरोज—कमल ।
सरशार—मग्न, डूबा हुआ । चूर, मदस्त ।
सपुट—डिब्बीया, डिब्बा ।
स्रवन—कान, कर्णेन्द्रिय।
साक़ी—शराब पिलानेवाला, माशूक ।
सागर—शराब ।
सायक—बाण, तीर, सर, खड्ग
सावक—बचा, छौना, ।
सारद—सरस्वती, शारदा ।
सॉन—शान, तडक भडक, ठाट बाट, सजावट ।
सिसुता—लडकपन ।
सितम—गजब, अनर्थ, आफत, अनीति, जुलम, आत्याचार
सिताब—जल्दी, शाघ्र ।
सितासिति—सफ़ैद काला ।
सिलीमुख—भ्रमर, भौरा ।
सिन्धुजा—लक्ष्मी ।
सिकपा—पक्षी विशेष ।
सुभाउ—स्वभाव ।
सुधा—अमृत ।
सुभाइन—स्वभाव युक्त, अच्छे स्वभाव से सयुक्त ।
सुधाकर—चन्द्रमा ।
सुरनाइक—सुरों ( देवताओं ) का नायक, राजा-इन्द्र ।
सुखमो—शोभा, छवि ।
सुचिता—स्वच्छता, धवलता, सफाई ।
सुठि—सुन्दर,बढ़िया, अच्छा।
सेह—जादू ।
स्वेद—पसीना ।

सैफन—तलवार।
सोडसी—सोलह बरस की।
स्त्रान—कान।
शर्मआलूदह—शर्मसे भींगी, गीली।
शरर—चिनगारी।
शबनम—श्रोस।
शिकेंच—सिकुडन, बल पडना।
शीशागर—काचकी चीजें बनाने वाले।
शोख—ढीट, धृष्ट, प्रगल्भ, शरीर, नटखट।
हस्ति—खासियत।
हलाहल—जहर, विष।
हनत—मारत।
हनि फोरे—पटक कर फोडे।
हल्फारे—चिट्ठी पत्री ले जाने वाला मनुष्य, चिट्ठीरसा, डाकिया।
हरोना—हरने वाले।
हरीफ—दुश्मन, शत्रु, प्रतिद्वंदी।
हमदिगर—साथी, प्यारा।

हश्र—प्रलय।
हरगोशेमें—जगह व जगह।
हठि—अडना, हठीला।
हयामरे—लज्जायुक्त, शर्मसे भरे लाज से भरे।
हर—महादेव।
हाती—आतङ्कित करना।
हिल्ग—लगाव, सबन्ध, लगन प्रेम।
हिजाब—पर्दा, शर्म, हया, लज्ज
हिज्र—जुदाई, वियोग।
हुद्दार—श्रोहदेदार, निरोपपुरु
हेम—सोना, स्वर्ण, कचन।
हैफ—खेद, अफसोस।
होशेरुबाशाकी—मदमस्त शाव शराब पिलाने वाला
त्रासै—डरायें, भयभीत करे कष्ट दें।
त्रिभुवन—तीन-भुवन, तीनलोक
त्रिविधि—तीन प्रकार, ती तरह
त्रिदेव—ब्रह्मा, विष्णु, महेश

# साहित्य-सेवा-सदन, काशी

## स्थायी ग्राहकों के लिये नियम—

(१) प्रवेश-शुल्क बारह आना मात्र देना पडता है।

(२) स्थायी ग्राहकों को इस कार्यालय के समस्त पूर्व प्रकाशित तथा आगे प्रकाशित होनेवाले ग्रन्थों की एक एक प्रति पौने मूल्य में दी जायगी।

(३) किसी भी पुस्तक का लेना अथवा न लेना ग्राहकों की इच्छा पर निर्भर है। इसके लिये कोई बन्धन नहीं है। किन्तु वर्ष भर में कम से कम ५) पांच रुपये (पूरे मूल्य) की पुस्तकें लेनी पडती हैं।

(४) पुस्तक प्रकाशित होते ही उसके मूल्यादि की सूचना भेजी जाती है। ग्राहको को उचित है कि सूचना पाने के एक सप्ताह के भीतर अपनी स्वीकृति या अस्वीकृति की सूचना देने की कृपा अवश्य करें। वी पी लौटाने से डाक-व्यय उन्हीं को देना पडेगा अन्यथा उनका नाम स्थायी ग्राहकों की श्रेणी से पृथक् कर दिया जायगा।

(५) ग्राहको के इच्छानुसार डाक-व्यय के बचाव के लिए ३ ४ पुस्तकें एक साथ भी भेजी जा सकती हैं।

(६) स्थायी ग्राहकों को अन्य पुस्तको पर भी पर्याप्त कमीशन दिया जाता है और साहित्य-संसार में नवीन प्रकाशित पुस्तकों की सूचना भी समय समय पर दी जाती है।

(७) ग्राहकों को प्रत्येक पत्र में अपना ग्राहक नम्बर, पता इत्यादि स्पष्ट लिखना चाहिये।

# केशव-कौमुदी

## ( रामचन्द्रिका सटीक )

हिंदीके महाकवि आचार्य केशवकी सर्वश्रेष्ठ पुस्तक राम चन्द्रिकाके नामसे शायद ही कोई हिन्दी प्रेमी अपरिचित हो। केशवकी यह पुस्तक जितनी ही उत्तम तथा उपयोगी है, उतनी ही कठिन भी है। अर्थ कठिनतामें केशवकी काव्य प्रतिभा उसी प्रकार छिपी पड़ी हुई है, जिस प्रकार रुईके ढेरमें हीरेकी कान्ति। केशवकी इसी काव्य प्रतिभाको प्रकाशमें लानेके लिए यह सम्मेलनादिमें पाठ्य पुस्तक नियत की गयी है। पर पुस्तककी कठिनताके आगे परीक्षार्थियोंका कोई वश नहीं चलता। उन्हें लाचार होकर हिन्दीके धुरन्धरोंके पास दौड़ना पड़ता है। किन्तु वहाँसे भी 'भाई हम इसका अर्थ बतानेमें असमर्थ हैं' का उत्तर पाकर बैरंग लौटना पड़ता है। इसी कठिनाईको दूर करनेके लिए यह पुस्तक प्रकाशित की गयी है। इस पुस्तकमें रामचन्द्रिकाके मूल छन्दोंके नीचे उनके शब्दार्थ, भावार्थ, विशेषार्थ, नोट, अलंकारादि दिये गये हैं। यथास्थान कविके चमत्कार निदर्शनके साथ ही साथ काव्य गुण-दोषोंकी पूर्ण रूपसे विवेचना भी की गयी है। छन्दोंके नाम तथा अप्रचलित छन्दोंके लक्षण भी दिये गये हैं। पाठ भी कई हस्तलिखित प्रतियोंसे मिलाकर संशोधित किया गया है। इसके टीकाकार हिंदीके सुप्रसिद्ध विद्वान् तथा हिंदू विश्व विद्यालयके प्रोफेसर लाला भगवानदीनजी हैं। यह पुस्तक दो भागोंमें समाप्त हुई है। संशोधित नया संस्करण छप रहा है। मूल्य २)।

This book is sanctioned as a reference Book for Hindi Teachers in High Schools of Central Provinces and Berar *Vide Order No 6801, Dated 28-9 26*

# रहीम-रत्नावली

यों तो रहीमकी कविताओंके संग्रह कई स्थानोंसे प्रकाशित हो चुके हैं, किन्तु इतना बड़ा और इतना अच्छा संस्करण कहींसे भी प्रकाशित नहीं हुआ है। इस संस्करणमें कई विशेषताएं हैं, इन विशेषताओंके कारण इसका महत्त्व अत्यधिक बढ़ गया है। मेरा अनुरोध है कि एक बार इसे आप अवश्य देखें। इस संस्करणकी विशेषताएँ —

(१) इसमें संग्रहीत दोहोंकी संख्या लगभग ३०० के है।

(२) नगर-शोभा' नामक १४४ दोहोंका नया ग्रन्थ खोजमें मिला।

(३) नायिकाभेदके बरवे तथा नये मिले हुए सवा सौ बरवे दोनों ही इसमें हैं।

(४) मदनाष्टकके सम्बन्धमें भी बड़ी छान-बीन की गयी है।

(५) शृंगार सोरठ, रहीम-काव्यके श्लोक तथा अन्य फुटकर प्राप्तपदोंका भी संग्रह इसमें है।

(६) अनेक हस्तलिखित प्रतियोंसे मिलाकर इसका पाठ शुद्ध किया गया है। पाठान्तर भी दिये गये हैं।

(७) समान आशयवाले (Parallel Quotations) अन्य कवियोंके छन्द भी टिप्पणीके साथ दिये गये हैं।

(८) एक रहीमका तथा एक और—दो चित्र भी दिये गये हैं।

(९) इन सबके अतिरिक्त प्रारम्भमें गवेषणापूर्ण वृहद्काय भूमिका भी इसमें जोड़ दी गयी है, जिसमें रहीमके काव्यकी आलोचनाके साथ ही साथ उनके सम्बन्धकी किंवदंतियाँ, जीवनी आदि दी गयी हैं। इसके कारण पुस्तकका महत्त्व अत्यधिक बढ़ गया है।

(१०) पुस्तकान्तमें टिप्पणियाँ भी भरपूर दे दी गयी हैं। सुपरिचित साहित्य-सेवी प० मयाशंकरजी याज्ञिकने इस संस्करण का सम्पादन किया है। पृष्ठ-संख्या २५० के ऊपर, मूल्य १)।

## गो० तुलसीदासजी कृत

# विनय-पत्रिका

टीकाकार—श्रीवियोगीहरि )

सर्वमान्य 'रामायण' के प्रणेता महात्मा तुलसीदासजीका नाम भला कौन नहीं जानता ? गोस्वामीजीकी सर्वश्रेष्ठ रचना यही विनय पत्रिका है। इसमें शिव, हनुमान, भरत लक्ष्मण आदि पार्षदों-सहित जगदीश श्रीरामचन्द्रकी स्तुतिके बहाने वेदान्तके गूढ तत्त्वोंका समावेश किया गया है। वेद, पुराण, उपनिषद, गीतादिमें वर्णित ज्ञानकी सभी बातें इसमें गागरमें सागरकी भाँति भर दी गयी हैं। इसकी टीका सम्मेलन पत्रिकाके सम्पादक तथा साहित्य विहार, भावना अन्तर्नाद, ब्रजमाधुरीसार, संक्षिप्त सूर-सागर आदि ग्रन्थोंके लेखक तथा सङ्कलनकर्ता लब्ध प्रतिष्ठ वियोगी हरिजीने की है। इस टीकामें शब्दार्थ, भावार्थ, विशेषार्थ, प्रसंग, पदच्छेद आदि सब भी कुछ दिये गये हैं। भावार्थके नीचे टिप्पणीमें अन्तरकथाएँ, अलंकार शंकासमाधान आदिके साथ ही-साथ समानार्थी हिन्दी तथा संस्कृत कवियोंके अवतरण भी दिये गये हैं। अर्थ तथा प्रसंगपुष्टिके लिए गीता, वाल्मीकि रामायण तथा भागवत आदि पुराणोंके श्लोक भी उद्धृत किये गये हैं। दार्शनिक भाव तो खूब ही समझाये गये हैं। इन सब बातोंके कारण टीका अद्वितीय हुई है। पृष्ठ संख्या लगभग ७००। मूल्य २॥) सजिल्द ३॥), बढ़िया कपडेकी जिल्द ३)।

This book is sanctioned as a reference book for Hindi Teachers in High Schools of Central Provinces and Berar —*Vide Order No 6801 Dated 28 9 26*

## 'बिहारी-सतसई' की उर्दू शेरोंमें टीका

# गुलदस्तए बिहारी

( लेखक—देवीप्रसाद 'प्रीतम' )

बिहारी-सतसईका परिचय देनेकी कोई आवश्यकता नहीं, सभी साहित्य प्रेमी उसके नामसे परिचित हैं। यह 'गुलदस्तए बिहारी' उसी बिहारी सतसईके दोहोंपर रचे हुए उर्दू शेरों का संग्रह है, अथवा यों कहिए कि बिहारी सतसईकी उर्दू पद्यमय टीका है। बिहारी-सतसईकी उर्दू शेरोंमें यह पहिली ही टीका है। ये शेर सुननेमें बड़े ही मधुर और चित्ताकर्षक हैं, इनमें, दोहोंके अनुवादमें, मूलके एकभी भाव छूटने नहीं पाये हैं, बल्कि कहीं-कहीं उनसे अधिक भाव इनमें आ गये हैं। इन शेरोंकी प० महावीरप्रसाद द्विवेदी, प० पद्मसिंह शर्मा मिश्रबन्धु, लाला भगवान दीन, वियोगीहरि आदि उद्भट विद्वानोंने मुक्त कंठसे प्रसंशा की है। दो तिरंगे भावपूर्ण चित्रों से युक्त पुस्तक का मूल्य १॥)।

दो एक नमूना देखिए

जो न जुगति पिय मिलन की, धूरि मुकुति मुख दीन।
जो लहिये सँग सजन तौ, धरक नरक हू की न॥

नहिं गर यार जिन्नत में तो वो नारे जहन्नुम है।
अगर दोजख में है प्यारा तो वो जिन्नत से सवा कम है॥

अपने तन के जानिकैं, जोबन-नृपति प्रवीन।
स्तन मन नैन नितम्ब को, बड़ो इजाफा कीन॥

तनी अपना समझ कर शाह जोबन ने अपनाया।
इज़ाफा चश्म पिस्तानों, सुरीनो दिल का फरमाया॥

## महात्मा सूरदासजी प्रणीत

# भ्रमरगीत-सार

(संपादक—प० रामचन्द्र शुक्ल)

सन्त शिरोमणि, साहित्याकाश प्रभाकर महात्मा सूरदासजी से विरले ही हिन्दी प्रेमी अपरिचित होंगे। सूरदासजी हिन्दी साहित्यकी विभूति हैं, जीवन सर्वस्व हैं। कहा भी है 'सूर सूर तुलसी ससि,उडुगण केसवदास"। यथार्थमें हिन्दीमें इनका सर्वोच्च स्थान है। इन्हीं महात्माके उत्कृष्ट पदोंका यह संग्रह है, सागरका सार अमृत है। सूरसागरका सर्वोत्कृष्ट अंश 'भ्रमर-गीत' माना जाता है। इसमें व्रज-गोपियाँ कृष्णको उपालंभ देती हैं, भ्रमरको संबोधित करके व्यङ्गके रूपमें। हिन्दी साहित्यमें व्यङ्ग काव्यका इतना सुन्दर दूसरा ग्रन्थ नहीं है। इसमें द्वैत-अद्वैत, साकार निराकार आदिकी बहुत ही अच्छी विवेचना की गयी है। उसी भ्रमरगीतके चुने हुए पदोंका यह संग्रह है। इसमें चार सौसे भी ऊपर पद आ गये हैं। इसका सम्पादन हिन्दी-साहित्य संसारके चिरपरिचित परम दिग्गज विद्वान् प० रामचन्द्र शुक्ल प्रो० हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी, ने किया है। एक तो सूरदासकी कविता, दूसरे हिन्दीके विशिष्ट विद्वान् द्वारा उसका संपादन 'सोनेमें सुगन्ध' हो गया है। सम्पादकजीकी ८० अस्सी पृष्ठकी आलोचनात्मक दीर्घकाय भूमिका ही पुस्तककी महत्ताको दुगुनी कर रही है। पदोंमें आये हुए कठिन शब्दोंके सरलार्थ भी पादटिप्पणीमें दे दिये गये हैं। यह पुस्तक बनारस, इलाहाबाद, कलकत्ता, आगरा आदि यूनिवर्सिटियों, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन आदिकी उच्चतम कक्षाओंमें पढ़ाई जाती है। द्वितीय संशोधित संस्करण। पृष्ठ संख्या लगभग २५०। मूल्य १)

## भावना

( प्रणेता—वियोगीहरिजी )

यह एक आध्यात्मिक गद्य काव्य है। इसकी रचना साहित्य मर्मज्ञ काव्य-कला-कुशल एवं मंगलाप्रसाद पारितोषिक प्राप्त वियोगीहरिजीने की है। इसमें मानव हृदयमें नित्य उठनेवाली नाना प्रकारकी भावनाओंका सजीव चित्रण है। विश्वप्रेमका विमल स्रोत है। जिस प्रकार कबीर और सूरने समस्त संसारको प्रेममय देखा, उन्हें उसीमें परमात्माकी झलक दिखाई दी उसीको उन्होंने मुक्तिका मार्ग समझा उसी प्रकार हरिजीने मनुष्यकी प्रत्येक दैनिक क्रियाको विश्वप्रेमका रूप दिया है। सचमुचमें यह काव्य बड़ा सुन्दर हुआ है। इसकी भाषा इतनी परिमार्जित ललित और भावपूर्ण है कि देखते ही बनता है। जिस समय सांसारिक झंझटोंसे आपका मन ऊब जाय, आपको सारा संसार नीरस दिखाई पड़े, आप इस पुस्तकको उठा लीजिए, फिर देखिए आपमें एक नई स्फूर्ति आजायगी, मुरझाया हुआ चेहरा खिल उठेगा। इसमें सब मिलाकर ५० निबन्ध हैं। प्रत्येक निबन्ध में मुर्देको जिलाने के लिए अमृत है। भगवद्भक्तोंके लिए बहुत काफी मसाला है। छपाई, सफाई भी पुस्तककी दर्शनीय है। मूल्य ॥=)

## आँख और कविगण

यह पुस्तक आपके हाथमें है।

## दानलीला

( लेखक० हरिरायजी उपनाम रसिक जी )

सम्पादक—जवाहरलाल चतुर्वेदी। मूल्य।—)

## कुसुम-संग्रह

सम्पादक प० रामचन्द्र शुक्ल, प्रो० हिन्दू विश्वविद्यालय तथा लेखिका हिन्दी-ससारकी चिरपरिचित श्रीमती बगमहिला। सयुक्तप्रान्तकी तथा मध्यप्रदेशकी ( Vide Order No 9704 dated 12 12 26 ) गवर्नमेंटने पुरस्कार पुस्तकों तथा पुस्तकालयों (Prize-Books and Libraries) के लिए स्वीकृत किया है। सातरग विरगे चित्रोंमें विभूषित पुस्तकका मूल्य १॥)

## मुद्राराक्षस

( सम्पादक ब्रजरत्नदास बी० ए० एल-एल० बी० )

भारत भूषण भारतेन्दु बा० हरिश्चन्द्रजी वर्तमान हिन्दी साहित्यके जन्मदाता माने जाते हैं। आपने ही महाकवि विशाखदत्तके सस्कृत नाटक मुद्राराक्षसका अनुवाद गद्य पद्यमय हिन्दी भाषामें किया है। यह नाटक इतना लोकप्रिय हुआ है कि भारत की प्राय सभी यूनिवर्सिटियों तथा साहित्य विद्यालयोंमें पाठ्य ग्रन्थ रखा गया है। हमने विद्यार्थियोंके लाभार्थ इस पुस्तकका शुद्ध तथा उपयोगी सस्करण निकाला है। इस सस्करणमें अध्येताओंके लिये ८० पृष्ठकी आलोचनात्मक भूमिका भी प्रारम्भ में दे दी गयी है, जिसमें कवि प्रतिभा, नाटकका इतिहास, लेखन शैली आदिपर गवेषणापूर्ण आलोचना की गयी है। अन्तमें करीब १५० डेढ़ सौ पृष्ठोंमें भरपूर टिप्पणी भी दी गयी है जिसमें नाटकमें आये हुए पद्यांशोंकी पूरी टीका तथा गद्यांशोंके कठिन शब्दोंके अर्थ दिये गये हैं। पृष्ठ-सख्या लगभग ३५० मूल्य १) मात्र।

This book is recommended for (1) Vernacular Middle School Libraries for boys and for (2) Libraries in Intermediate Colleges by the Director of Public Instructions United Provinces

*Vide Order Dated the 25th April 1931*